भारतीय अभिलेखों में प्रतिबिम्बित व्यवसायिक समुदायों का अध्ययन

(छठीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक)

(Study of occupational Groups as reflected in Indian Inscriptions from 600 A.D. to 1200 A.D.)

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल् उपाधि हेतु प्रस्तुत)

शोध-प्रबन्ध

निर्देशक :

प्राफेसर शिवेशचन्द्र भट्टाचार्य

बिभागाध्यक्ष, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

शोधकर्त्री :

कु० रत्ना

प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

१९९२

विषय सूची

पृष्ठ

संकेत शब्द सूची

आई० एच० क्यू	: इण्डियन हिस्ट्रोरिकल क्वार्टली
इण्डि० एपि० ग्लोस०	:: इण्डियन एपिग्राफिकल ग्लोसरीज
ई० ऐ०	: इण्डियन ऐन्टिक्वेरी
ई० एच० आर०	: इण्डियन हिस्ट्रोरिकल रिव्यू
ई० एस०	: इण्डियन स्कल्पचर
एपि० इण्डि०	: इपिग्राफिका इण्डिका
का० ई० ई०	: इंस्क्रिप्शंस आँव कल्चुरि चेदि एरा
जे० बी० आर० एस०	: जर्नल आँव दि बिहार रिसर्च सोसाइटी
जे० ए० एच० आर० एस०	: जर्नल आँव आन्ध्र हिस्ट्रोरिकल रिसर्च सोसाइटी
जे० बी० ओ० आर० एस०	: जर्नल आँव बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी
जे० ए० एस० आई	: जर्नल आँव एशियाटिक सोसाइटी
जे० एन० एस० आई०	: जर्नल आँव द न्युमिस्मैटिक सोसाइटी आँव इण्डिया
जे० ए० एस० बी०	: जर्नल आँव द एशियाटिक सोसाइटी आँव बंगाल
जे० आर० ए० एस०	: जर्नल आँव रायल एशियाटिक सोसाइटी
जे० ई० एस० एच० ओ०	: जर्नल आँव द इकनामिक ऐण्ड सोशल हिस्ट्री आँव द ओरिएण्ट
एच० आई० जी०	: हिस्ट्रोरिकल इन्स्क्रप्सन्स आँव गुजरात
एच० आई० ई० डी०	: हिस्ट्री आँव इण्डिया इलियड एण्ड डाउसन
टी० आई० एन०	: तबकाते इ नासीरी
पी० आई० एच० सी०	: प्रोसीगि आँव दि इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस
से० ई०	: सलेक्ट इन्सक्रिप्शंस
सी० आई० आई०	: कापर्स इन्सक्रिप्शंस इण्डीकेरम्
सी० बी० आई०	: कापर्स आँफ बंगाल इन्सक्रिप्शंस

प्राक्कथन

पेशेवर समुदाय भारतीय सामाजिक संरचना एवं संगठन की महत्वपूर्ण इकाई है जिनकी भूमिका को स्पष्ट करना आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य है क्योंकि पेशेवर समुदाय के समाजार्थिक स्थिति के आंकलन के बिना समाज संरचना की वास्तविक ढाँचा को नहीं समझा जा सकता है । समाजार्थिक जीवन में पेशेवर समुदायों के स्थान निर्धारण बिना सामाजिक जीवन का चित्रण एकांगी रह जायेगा अभी तक सामान्य रूप से वर्ण - जाति व्यवस्था की परिधि के अन्तर्गत ही विभिन्न पेशेवर समुदायों का आकलन प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि कि आर्थिक क्षेत्र में अनेक कार्य हुये हैं परन्तु एक स्वतन्त्र, विशद एवं पृथक ईकाई के रूप में व्यवसायिक समु - दायों का अंकलन नहीं हुआ है । इसी कारण हमने इस क्षेत्र में विनम्र प्रयास किया है । प्रस्तुत शोध विषय के अन्तर्गत सामाजिक और आर्थिक धरातल पर निहित व्यवसायिक समुदायों का अर्थपूर्ण विवेचन करने का हमने प्रयास किया है । इस प्रकार सामाजार्थिक घटक के रूप में मान्य कृषि, व्यापार, उद्योग, धर्म प्रशासन तथा अन्य विविध क्षेत्रों से सम्बधित व्यवसायिक समुदायों का गहराई के साथ अध्ययन ही हमारा केन्द्र रहा है । साथ ही साथ पेशेवर समुदायों की सामाजिक आर्थिक स्थिति का निरूपण तथा विभिन्न अभिलेखीय एवं साहित्यिक साक्ष्यों के आधार पर उनकी व्यवसायिक गतिविधियों का विश्लेषण करना ही हमारा ध्येय रहा है ।

पूर्वमध्य काल भारतीय इतिहास का एक महत्वपूर्ण संक्रमण काल माना जाता है । इस काल के दौरान केवल राजनीतिक मंच पर ही उथल - पुथल नहीं हुई अपितु सामाजिक आर्थिक क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन दृष्टिगत होते हैं । पूर्व - मध्य युगीन प्रमुख घटना सामंतवादी प्रवृत्तियों का उदय होना था । सामंतवाद ने केवल राजनीतिक जीवन को ही प्रभावित नहीं किया, साथ ही साथ तत्कालीन सामाजिक आर्थिक जीवन पर इसका व्यापक प्रभाव पड़ा । परिणामस्वरूप काल में सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था नया रूप ग्रहण करती है । प्रो० आर० एस० शर्मा आदि विद्वानों का यह मत है कि पूर्वमध्य कालीन सामाजार्थिक जीवन की प्रमुख विशेषतायें नगरों उद्योग एवं व्यापार में ह्रास तथा स्थानीयकरण, कृषि - करण, ग्रामीणीकरण थी । यद्यपि कुछ विद्वान इस मत को पूर्णरूप से स्वीकार नहीं करते हैं,[1] फिर भी यह सामान्य मान्यता रही है कि पूर्वमध्य कालीन आर्थिक परिवर्तनों के दबाव से उद्योग और पेशों के क्षेत्र में भी कुछ परिवर्तन अवश्य ही हुये होंगे । नगरों का ह्रास तथा व्यापार - उद्योग में पतन के सिद्धान्त से यह तथ्य निष्पन्न किया जा सकता है कि उद्योग तथा व्यापार से सम्बधित पेशे का क्षेत्र क्रमशः संकुचित हो रहा था । ऐसी परिस्थिति में उद्योग एवं व्यापार से सम्बधित पेशों की संख्या तथा प्रकार में भी कमी परिलक्षित होनी चाहिए एवं क्षीणमान व्यवसायों को छोड़ कर अन्य उपलब्ध व्यवसायों को अपनाने की प्रवृत्ति भी दृष्टिगत होनी चाहिए । इन महत्वपूर्ण प्रश्नों से प्रेरित होकर हमने पूर्वमध्य कालीन व्यवसायिक स्थिति का अध्ययन करने का प्रयास किया है । वर्ण और

व्यवस्था के अन्तर्गत जीविका के साधन और व्यवसायों का जो सिद्धान्तिक वर्णन शास्त्रों में प्राप्त होता है वास्तविक परिस्थिति के साथ उसका काफी अन्तर तत्कालीन साक्ष्य में परिलक्षित होता है । व्यवसायों को चुनने की वास्तविक स्वतन्त्रता शास्त्रों में उल्लिखित नियमों से अधिक प्रशस्त थी । ये स्वतन्त्रता पूर्वमध्य कालीन साक्ष्यों में पूर्व कालों की अपेक्षा कुछ अधिक प्रतीत होता है । यह असम्भव नहीं है कि ये प्रवृत्ति व्यापार-उद्योग के क्षेत्र में होने वाले परिवर्तनों की ही देन थी ।

इस प्रकार व्यवसायिक समुदायों के अध्ययन के निमित्त पूर्वमध्य काल का चयन इसलिये भी किया गया है । इस काल में पेशेवर समुदायों एवं उनकी भूमिका के प्रमाण पर्याप्त संख्या में उपलब्ध होते हैं । विशेष रूप से अभिलेखीय साक्ष्य की दृष्टि से यह काल अधिक समृद्ध है । ये साक्ष्य एवं अभिलेख राजा, महाराजा, सामंत, उच्चपदाधिकारियों, राजकर्मचारी तथा अन्य प्रकार के समुदाय एवं व्यक्तियों के हैं । इनमें अधिकांशतः धार्मिक अनुदान के रूप में प्राप्त होते हैं, फिर भी इनमें आर्थिक जीवन से सम्बधित महत्वपूर्ण सूचना प्राप्त होती है जो व्यवसायिक समुदायों के अध्ययन में सहायक है ।

इस काल के कुछ महत्वपूर्ण अभिलेखीय संग्रहों में प्रमुख उदाहरणों के रूप में निम्नलिखित कृतियों का विशेष उल्लेख किया जा सकता है ।

डी० आर भण्डारकर कृत लिस्ट ऑफ इंस्क्रिप्सन्स ऑफ नार्दन इण्डिया ऐपनडिस्क टू एपिग्राफिका इण्डिका भाग 19•23, जे० एफ० फ्लीट का कार्पस

इस्क्रिप्सन्स इण्डिकेरम् जिल्द 3, वी0 वी0 मिराशी द्वारा रचित इस्क्रिप्सन्स आँव दि कल्चुरि चेदि एरा, के0 के0 थपलियाल का इस्क्रिप्सन्स आँव द मौखरीज लेटर गुप्ताज, पूष्यभूतिज ऐण्ड यशोवर्मन आँव कन्नौज, श्रीराम गोयल कृत मौखरि पुष्यभूति-चालुक्य युगीन अभिलेख, बासुदेव उपाध्याय द्वारा विरचित गुप्त अभिलेख, के0 वी0 एस आयंगर का साउथ इण्डियन इस्क्रिप्सन्स, दो जिल्द, डी0 सी0 सरकार का सेलेक्ट इस्क्रिप्सन्स भाग 2, एन0जी0मजूमदार द्वारा संग्रहित इंस्क्रिप्सन्स आफ बंगाल जिल्द 3, आर0 एस0 मुखर्जी एवं एस0 के0 मैती का कार्पस आँव बंगाल इंस्क्रिप्सन्स, पी0 पैटसर्न का अ कलक्शंस आँव प्राकृत एण्ड संस्कृत इंस्क्रिप्सन्स भावनगर, जी0 वी0 आचार्य का हिस्टोरिकल इंस्क्रिप्सन्स आँव गुजरात, भक्त सहाय का इंस्क्रिप्सन्स आँव बिहार, ए0 सी0 मित्तल का इंस्क्रिप्सन्स आँव इम्पीरियल परमारस, एल0 डी0 सीरिज 3, आर0 बी0 पाण्डेय का हिस्टोरिकल एण्ड लिटरेरी इंस्क्रिप्सन्स, इत्यादि प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त काफी लेख पत्र पत्रिकाओं में बिखरे पड़े हैं। इन पत्रिकाओं में एपिग्राफिया इण्डिया सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।

सहायक साक्ष्यों के रूप में साहित्यिक साक्ष्यों का उल्लेख किया गया है। साहित्य साक्ष्यों में संस्कृत , प्राकृत, अपभ्रंश में रचित नाना प्रकार की कृतियाँ उपलब्ध है। साहित्यिक साक्ष्यों की दृष्टि से भी यह काल समृद्ध है, यद्यपि सजीवता, रचनात्मक प्रतिभा अथवा साहित्यिक सृजनशीलता के धरातल पर यह काल विशेष उत्कृष्ट नहीं माना जाता है फिर भी विविधता तथा सामाजिक

साक्ष्यों की प्रचुरता के दृष्टिकोण से पूर्वमध्य कालीन साहित्य ऐतिहासिकों के लिये विशेष उपादेय है ।

धर्मशास्त्र के विकास के इतिहास में यह काल निबन्ध का काल है । स्मृतियों में विष्णु स्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, नारद स्मृति, बृहस्पति स्मृति, कात्यायन स्मृति इत्यादि सामाजार्थिक इतिहास के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालते हैं । इसके अतिरिक्त पराशर, शंख, अत्रि आदि स्मृतियां उपयोगी सिद्ध हुई है । स्मृतियों की टीका और भाष्य की रचना के कारण भी यह काल महत्व - पूर्ण है । मेधातिथि और कुल्लूक ने मनुस्मृति पर तथा अपरार्क और विज्ञानेश्वर ने याज्ञवल्क्य स्मृति तथा असहाय ने नारदस्मृति पर महत्वपूर्ण भाष्य की रचना की है । निबन्ध साहित्य में लक्ष्मीधर द्वारा रचित कृत्यकल्पतरू एक प्रमुख रचना है । देवन्न भट्ट की स्मृतिचन्द्रिका, हेमाद्रि कृति चतुवर्गचिन्तामणि, बल्लालसेन के दानसागर, अदभुतसागर भी उल्लेखनीय है ।

चरितकाव्य में बाणभट्ट द्वारा विरचित हर्षचरित, श्री हर्ष की रचना नैषधीयचरित, हेमचन्द्र द्वारा रचित त्रिषष्टिशलाका पुरूषचरित, दण्डिन कृत दशकुमार चरित, द्वयाश्राय महाकाव्य इत्यादि आलोच्यकालीन सामाजार्थिक इतिहास के मूल्य वान स्त्रोत के रूप में प्राप्त होते हैं । इसके अतिरिक्त जयानक का पृथ्वीराजविजय सन्ध्याकरन्दी द्वारा विरचित रामचरित, कल्हण कृत राजतरंगिणी, सोमेश्वर द्वारा रचित कीर्तिकौमुदी, मानसोल्लास इत्यादि महत्वपूर्ण है ।

नाटकों में यशपाल द्वारा रचित मोहराज पराजय, जयसिंह द्वारा रचित हमीरमदमर्दन विशेषरूप से सहायक है । सोमदेव की कृति कथासरितसागर, बुद्धस्वामी

द्वारा रचित वृहतकथा, क्षेमेन्द्र की वृहतकथामंजरी, धनपाल की रचना तिलकमंजरी राजशेखर सूरि कृत कथाकोश प्रकरण इत्यादि ऐतिहासिक दृष्टि से मूल्यवान स्रोत है ।

क्षेमेन्द्र द्वारा रचित समय मातृका, दर्पदलन, दशावतारचरित, देशोपदेश, बोधिसत्वादानकल्पलता, हरिभद्रसूरि की समराइच्चकहा, सोमदेव द्वारा रचित यशस्तिलक सामाजिक परिवेश के दृष्टिकोण से उपयोगी ग्रन्थ है ।

हेमचन्द्र की कृतियों में देसीनाममाला, अभिधानचिन्तामणि, शब्दानुशासन तथा यादव प्रकाश की वैजयन्ती कोश, हलायुधकोश, इत्यादि सामाजिक आर्थिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं ।

प्रबन्धग्रन्थों में मेरूतुंग की प्रबन्धचिन्तामणि, राजशेखर की प्रबन्धकोष, सोमदेव की नीतिवाक्यामृतम्, क्षेमेन्द्र की नीतिकल्पतरू , कामन्दक कृत कामन्दकीय नीतिसार तथा कृषिपराशर महत्वपूर्ण है ।

विदेशी पर्यटकों के यात्रावृतान्त भी पूर्वमध्यकालीन आर्थिक तथा सामाजिक गतिविधयों के विषय में पर्याप्त प्रमाण प्रस्तुत करते हैं । इनमें ह्वेनसांग, अलबीरूनी, इब्नखुर्दाज्बा, सुलेमान, मसूदी इत्यादि प्रमुख है ।

अंत में अपने पूज्य गुरूवर्य व विभागाध्यक्ष प्रोफेसर शिवेशचन्द्र भट्टाचार्य के प्रति हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने मुझे शोध कार्य करने में मार्ग दर्शन किया तथा मुझे अपना अमूल्य समय देकर इस कार्य को अंतिमरूप देने में पूर्ण सहयोग दिया ।

मैं अपने उन सभी गुरूजनों, प्रो0 वी0 डी0 मिश्र, प्रो0 आर0 के0 द्विवेदी, प्रो0 ओम प्रकाश, प्रो0 डी0 मण्डल, डा0 गीता देवी, डा0 आर0 पी0 त्रिपाठी, श्री बी0 वी0 मिश्र, डा0 जी0 के0 राय, डा0 जे0 एन0 पाण्डेय, डा0 जे0 एन0 पाल, श्री ओम प्रकाश श्रीवास्तव, डा0 एच0 एन0 दुबे, डा0 उमेशचन्द्र चट्टोपाध्याय डा0 वनमाला मधोलकर, डा0 पुष्पा तिवारी, डा0 अनामिका राय, डा0 चन्द्र देव पाण्डेय, डा0 देवी प्रसाद दुबे, डा0 शशिकान्त राय, डा0 ए0 पी0 ओझा, डा0 हर्ष कुमार, डा0 प्रकाश सिन्हा, मित्रों एवं बन्धुओं को भी धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ जो परोक्ष और अपरोक्ष रूप में मेरे इस कार्य के प्रेरक रहे हैं ।

मैं आई0 सी0 एच0 आर0 दिल्ली के प्रति भी कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मुझे शोध कार्य हेतु आर्थिक सहायता प्रदान की ।

अंत में अपने परिवारजनों को धन्यवाद देने के लिए मेरे पास कोई शब्द नहीं है जिनके सहयोग के अभाव में इस कार्य के पूर्ण कोने की कोई सम्भावना नहीं थी ।

आशा करती हूँ कि मेरा शोध प्रबन्ध विद्वद्जनों एवं शोधार्थियों के ज्ञान - वर्धन में सहायक होगा ।

कु0 रत्ना
शोधकर्त्री
प्राचीन इतिहास , पुरातत्व एवं
संस्कृति विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

प्रथम अध्याय

सामाजिक पृष्ठभूमि

"सामाजिक पृष्ठभूमि

भारतीय सामाजिक संरचना के निर्धारण में वर्ण जातीय व्यवस्था की विशेष भूमिका है । अतः वर्णजाति व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य को बिना संदर्भित किये हुये भारतीय सामाजिक स्थिति का अध्ययन सम्भव नहीं प्रतीत होता है । यह व्यवस्था सामाजिक विभाजन के रूप में वैदिक काल से आज तक निरन्तर प्रवाहमान् है ।[1अ] पूर्वमध्य काल में भी वर्ण व्यवस्था विद्यमान थी तथा समाज वर्णगत नियमों की श्रृंखला में बंधा हुआ था । ऋग्वेद के "पुरूषसूक्त" में वर्णित पूर्ववर्ती अवधारणा के अनुरूप आलोचित काल में भी सैद्धान्तिक रूप में सम्पूर्ण समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये चार वर्णों में विभक्त था । अभिधान चिन्तामणि, वैजयन्ती कोष में सामाजिक विभाजन के उक्त विचारों का समर्थन करते हुये कोषकार ने उक्त चारों वर्णों का उल्लेख किया है[2]। कामन्दक [3] एवं आचार्य शुक्र [4] ने भी पूर्व विचारकों की भांति वर्णों का विभाजन कर उनके पृथक्-पृथक् कर्मों का विधान किया है । विदेशी साक्ष्यों में अलबीरूनी ने उक्त विचारों को स्वीकार करते हुये वर्णों का विभाजन किया है ।[5] ह्वेनसांग ने भी परम्परागत जाति विभेद के चार वर्णों का उल्लेख किया है ।[6] यह विभाजन मुख्यतयाः कर्मगत, वृत्तिगत एवं व्यवसायगत रूप में अधिक दृष्टिगत होता है ।

विवेच्य कालीन साहित्यिक और अभिलेखीय साक्ष्यों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि यद्यपि वर्ण-व्यवस्था का सैद्धान्तिक आधार पूर्ववत था तथापि उसके

वास्तविक स्वरूप एवं कार्यों में कतिपय परिवर्तन परिलक्षित होते हैं । यथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य , शूद्र अपने शास्त्रोनुमोदित परम्परागत् कार्यों एवं कर्त्तव्यों के अतिरिक्त अन्य व्यवसायों की ओर उन्मुख हो रहे थे। स्मरणीय है कि पूर्वमध्य कालीन सामाजिक धरातल पर प्रचलित यह प्रवृत्ति सम्पूर्ण नवीन प्रथा न थी । इसका प्रचलन पूर्वकालीन समाज में भी था ।[7]

ब्राह्मण वर्ण समाज का उच्च एवं प्रभावशाली वर्ण के रूप में प्रतिष्ठित था, फिर भी उनके द्वारा कृषि [8], व्यापार [9] किये जाने के प्रमाण हमें इस काल में प्राप्त होते हैं । क्षत्रियवर्ण द्वारा भी कृषि [10] एवं व्यापार [11] में रत होने के प्रमाण उपलब्ध होते हैं । इसी प्रकार वैश्य और शूद्र के व्यवसायिक तथा वृत्तिगत स्थिति में समानता की प्रवृत्ति जो पहले ही दृष्टिगत हो रही थी। वह इस काल में और भी स्पष्ट होने लगी । पूर्वमध्य काल में शूद्रों द्वारा कृषि, शिल्प और उद्योग को वृत्ति के रूप में अपनाने की प्रवृत्ति और अधिक बलवती हो रही थी और इस प्रकार वर्णों की सामाजिक स्थिति के निरूपण में व्यवसायों की भूमिका उत्तरोत्तर अधिक सक्रिय हो रही थी । ऐसा प्रतीत होता है, यह परिवर्तन मुख्य रूप से राजनैतिक एवं आर्थिक क्षेत्र में हुये परिवर्तनों के फलस्वरूप हुआ । यद्यपि वर्णव्यवस्था के कार्यान्वित स्वरूप में परिवर्तन हो रहे थे, फिर भी सैद्धान्तिक व्यवस्था के रूप में तत्कालीन समाज भी इसकी महत्ता एवं मान्यता पूर्ववत् विद्यमान थी । तथा शासक वर्ग वर्णव्यवस्था के संरक्षण में प्रयत्नशील थे ।[12] जैसा कि प्राचीन स्मृतियों, धर्मसूत्रों में भी वर्णित है कि वर्णाश्रम संरक्षण राजा का प्रधान कर्त्तव्य है ।[13] प्रस्तुत संदर्भ में बहु संख्यक साहित्यिक एवं अभिलेखीय साक्ष्य उपलब्ध होते हैं ।

हर्षचरित में उल्लिखित है कि सम्राट हर्ष एक ऐसा शासक था जो मनु की भांति वर्णाश्रम नियमों का पालन करता था ।[14] दण्डी कृत दशकुमार चरित में राजा पुण्यवर्मन को मनु द्वारा निर्देशित चर्तुवर्ण कर्त्ता कहा गया है ।[15] तिलक - मंजरी में वर्णित है, राज्य में वर्णाश्रम व्यवस्था की स्थापना एवं रक्षा का उत्तर - दायित्व राजा का होता था तथा राज्य में वर्णाश्रम धर्म को विधिवत् स्थापित करने के कारण राजा को प्रजापति का उपमान मिला ।[16] मानसोल्लास में राज्य द्वारा वर्णाधिकारी की नियुक्ति वर्णाश्रम व्यवस्था के प्रचलन को इंगित करता है ।[17]

पूर्वमध्य कालीन अभिलेखीय साक्ष्यों से भी उपरोक्त कथन की पुष्टि होती है । मौखरी वंशीय शर्व वर्मन का असीरगढ़ ताम्र मुद्रा अभिलेख (575-85 ईसवी) में महाराजाधिराज श्री शर्व वर्म्मा को वर्णाश्रम व्यवस्थापन में प्रवृत बताया गया है ।[18] हर्ष के बांसखेड़ा[19] (628 ई०) एवं मधुबन ताम्रपत्र [20] अभिलेख (631 ई०) में प्रसंगित है कि प्रभाकर-वर्धन ने वर्णव्यवस्था को स्थिर रखा था । हर्ष के सोनपत मुद्रा ताम्र लेख में इसी प्रकार का प्रसंग है ।[21] बल्लभी शासक शिलादित्य द्वितीय ताम्रपत्र (671 ईसवी) में उल्लेख मिलता हैं कि सम्राट द्वितीय मनु था जिसने वर्णाश्रम का विधान किया है ।[22]

8 वीं शताब्दी में उड़ीसा के कटक जिले से प्राप्त एक अभिलेख में वर्णित है कि राजकीय पंक्ति के प्रथम पूर्वज क्षेमंगरदेव, वर्णाश्रम व्यवस्थित करने में तत्पर थे ।[23] प्रस्तुत तथ्य के आलोक में गुर्जर नरेश जयभट्ट तृतीय के दान पत्र (736 ईसवी) में वर्णित प्रसंग उचित प्रतीत होता है, जिसमें जयभट्ट तृतीय के पितामह दद्द द्वितीय को मनु द्वारा प्रतिपादित वर्णाश्रम धर्म का पोषक अभिहित किया गया है ।[24] मदनपाल देव की मनहली ताम्र पत्र लेख में राजा महिपाल देव को 'चातुर्व्व - र्ण्य समाश्रय: ' कहा गया है ।[25]

उपरोक्त अभिलेखीय प्रमाणों एवं साहित्यिक साक्ष्यों के अनुशीन से स्पष्ट हो जाता है कि आलोच्य कालीन सामाजिक संरचना की एक मुख्य आधार शिला वर्ण जातिय व्यवस्था थी । तत्कालीन विभिन्न राजवंशों के शासकों ने इसकी महत्ता को स्वीकार करते हुये समाज में वर्ण कर्त्तव्यों को मान्यता प्रदान की । तथा प्रजा द्वारा वर्ण जाति के परिपालन की दिशा में प्रयास भी किये । इस प्रकार वर्ण जातीय के व्यवस्थापन में राज्य और राजवंशों का सहयोग ही नहीं अपितु सक्रिय भूमिका परिलक्षित होती है । वर्णानुक्रम में ब्राह्मणों की गणना चातुर्वर्ण्य में सर्वप्रथम और सर्वोच्च वर्ण के रूप में की गई है । यह परम्परा वैदिक काल से चली आ रही थी । अभिधान चिन्तामणि में ब्राह्मणों को त्रिविध नामों से अभिहित किया गया है जिससे उनकी वर्णश्रेष्ठता का ज्ञान होता है । यथा त्रयीमुखः, भूदेव, वाडवः, विप्रः, द्विजाति, द्विजन्मा, द्विजः, अग्रजाति, अग्रजन्मा, अग्रजः, वर्णज्येष्ठः, सूत्रकण्ठ, षटकर्मा इत्यादि ।[26] बाण ने हर्षचरित में ब्राह्मणों की परम्परागत प्रतिष्ठा का उल्लेख करते हुये मत प्रस्तुत किया है कि असंस्कृत बुद्धि वाला सिर्फ जन्म से ब्राह्मण होने वाला व्यक्ति भी माननीय था ।[27] क्षेमेन्द्र की कला विलास में वर्णित है कि ब्राह्मणों की स्थिति चातुर्वर्ण्य में उच्चतम थी ।[28] विदेशी साक्ष्यों से भी ब्राह्मणों की श्रेष्ठता तथा उच्चता की पुष्टि होती है । अलबीरूनी का मत है जिस प्रकार शरीर का उत्तमांग सिर है उसी प्रकार ब्राह्मण सभी जातियों में श्रेष्ठ है ।[29] ह्वेनसांग का कथन है समाज में ब्राह्मण सर्वाधिक सम्मानीय और पवित्र माने जाते थे ।[30] इस प्रकार वर्णश्रेष्ठता के आधार पर इन्हें सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, बौद्धिक सभी क्षेत्रों में अनेक विशेष अधिकार एवं सम्मान प्राप्त था ।

ब्राह्मणों का व्यवसाय :-

सामान्यत: ब्राह्मणों का कर्त्तव्य अध्ययन अध्यापन, यजन-याजन, दान प्रतिग्रह से जीवकोपार्जन करना था । प्राचीन धर्मशास्त्रों, पुराणों, स्मृतियों में उनके जीवकोपार्जन के निमित्त षड कर्मों का ही विधान किया है ।[31] पूर्व - मध्य कालीन शास्त्रकारों ने भी प्राचीन विचारकों का अनुसरण करते हुये उनके सामान्य कर्त्तव्यों की चर्चा की है । विष्णु स्मृति में यजन, अध्यापन को ब्राह्मणों का कर्म विहित किया है ।[32] इसके अतिरिक्त पराशय, अत्रि तथा शंख स्मृतियों में षड्कर्मों का विधान है ।[33] याज्ञवल्क्य के अनुसार षट्कर्मों में यजन, अध्ययन और दान का विधान अन्य द्विज वर्णों के लिये भी था परन्तु याजन, अध्यापन और प्रतिग्रह का अधिकार केवल ब्राह्मणों को प्राप्त था ।[34] कामन्दक ने यजन, अध्यापन, प्रीतग्रह को ब्राह्मण का कर्म विहित किया है[35] ।-

याजनाध्यापने शुद्धे विशुद्धाश्च प्रतिग्रह: ।
वृत्तित्रयमिदं प्रोक्तं मुनि ज्येष्ठ वर्णिन: ।। ॥ कामन्दकी नीतिसार सर्ग 2 श्लोक 19-21

आचार्य शुक्र ने ज्ञान कर्म, उपासना, अराधना में रत ब्राह्मणों का उल्लेख किया है -

ज्ञानकर्मोपासनीभर्देवताराधने रत: ।
शान्तो दान्तो दयालुश्च ब्राह्मणो कृत: ॥[36] शुक्रनीति अध्याय । श्लोक 40 ॥

अधीत कालीन ग्रन्थ कृत्य कल्पतरू में लक्ष्मीधर ने ब्राह्मण वर्ण के अध्ययन, अध्यापन जैसे कर्मों का विधान किया है ।[37] इस संदर्भ में प्राप्त अभिलेखीय साक्ष्य में कलिंग के स्वामी अनन्तवर्मन के सिरपुर ताम्र पत्र ॥छठीं शताब्दी ॥ में, अध्ययन-अध्यापन यजन, याजन, दान-प्रीतिग्रह में निरत् षटकर्मों का अनुसरण करने वाले ब्राह्मणों का उल्लेख है ।[38]

इस प्रकार बुध गुप्त कालीन एरण पाषाण स्तम्भ लेख ॥ 485 ईसवी ॥ अपने कर्म में रत ब्राह्मण, इन्द्र, विष्णु का उल्लेख है ।[39] 'स्व: कर्मा निरतस्या कर्त्ता कृतुभाजिन:' ।

इस प्रकार शास्त्रों एवं अभिलेखों में उनके सामान्य षड्कर्मों की चर्चा ती है परन्तु वास्तविक रूप में सामान्य कर्मों के अतिरिक्त ब्राह्मण वर्ण अन्य व्यवसायों को भी अपनाया करते थे । जिसके आधार पर हम उन्हें कई में विभक्त कर सकते हैं ।

व्यवसाय के आधार पर ब्राह्मणों को मुख्य रूप से तीन स्तर में वर्गीकृत जा सकता है । प्रथम स्तर में धार्मिक तथा बौद्धिक कार्यों से सम्बन्धित वर्ग ॥ पुरोहित, आचार्य, विद्वान, पंडित, अध्यापक गण ॥ । द्वितीय में प्रशासनिक सामरिक तथा अन्य उच्च पदाधिकारियों का वर्ग, । तृतीय में उत्पादन से सम्बन्धित व्यवसाय में रत यथा कृषि, व्यापार उद्योग में ब्राह्मणों का वर्ग ।

सूत्रों, स्मृतियों, पुराणों सभी स्रोतों में ब्राह्मण पुरोहित के अनेक प्रमाण हैं ।[40] हर्षचरित में राजश्री के विवाह के अवसर पर उपस्थित ब्राह्मण हितों का उल्लेख प्राप्त है ।[41] लक्ष्मीधर ने उद्धृत किया है कि ब्राह्मण हित के रूप में समस्त धार्मिक कृत्यों को सम्पादित करता था ।[42] मानसो - में संदर्भित है कि राज्य की रक्षा हेतु पुरोहित की नियुक्ति अति आवश्यक यशस्तिलक में ब्राह्मण पुरोहितों का प्रसंग है ।[44]

साहित्यिक साक्ष्यों के आलोक में पूर्वमध्य कालीन अभिलेखों में ब्राह्मण त के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं । गोविन्द चन्द्र देव के कामौली ताम्रपत्र

चन्द्र

हत

गद

किये

ता

वी॥

मे

ने

(1125 ई0) में महापुरोहित जगुशर्मन का उल्लेख है जिन्हें गोविन्द चन्द्र देव ने हलदीय पतलाया के महसोणमोज के गाँव को दान में दिया था।[45] गोविन्द चन्द्र देव ने ब[illegible]ही ताम्रपत्र (1104 ईसवी) पुरोहित जी जागूक की आज्ञा से लेख उत्कीर्ण कराये जाने का प्रसंग है।[46] परमार वंशीय अर्जुन वर्मन का सीहोर ताम्र-पत्र लेख (1215 ईसवी) में पंडित सोमदेव के पौत्र, पंडित जैतसिंह के पुत्र पुरोहित पंडित श्री गोविन्द शर्मा का वर्णन मिलता है।[47] परमारों के एक अन्य लेख शेरगढ़ का जिन प्रतिमा पादपीठ अभिलेख (1134 ई0) में पुरोहित श्री ठक्कुर जी वामन स्वामी का प्रसंग मिलता है।[48] महेन्द्र पाल देव द्वितीय का परतापगढ़ प्रस्तर अभिलेख (969 ए0 डी0) में पुरोहित त्रिविक्रमनाथ द्वारा लेख उत्कीर्ण किये जाने का उल्लेख है।[49]

ब्राह्मणों के विद्वान, आचार्य, पंडित होने के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। जयवर्मन द्वितीय का मांधाता ताम्रपत्र अभिलेख (1270 ईसवी) में स्मृति शास्त्र के ज्ञाता, व्याकरण शास्त्र में पारंगत विद्वान आचार्य का प्रसंग प्राप्त होता है।[50] परमारवंशीय वाक्पति राजदेव द्वितीय का धरमपुरी ताम्रपत्र (974 ईसवी) में धनिक पंडित का पुत्र ज्ञान विज्ञान में सम्पन्न बसन्ताचार्य को सभी आर्य समेत भूमि दान दिये जाने का उल्लेख है।[51] कलिंगराज गंग राजा अनन्तवर्मन के एक ताम्रपत्र (922 ई0) में विद्वान ब्राह्मण सोमाचार्य को शासक द्वारा भूमि भेंट किये जाने का विवरण प्राप्त होता है।[52] अनंग भीम तृतीय के नगरी ताम्र पत्र अभिलेख (1230-31 ईसवी) में प्रसंगित है कि श्री पुरूषोत्तम देव की प्रतिष्ठा के अवसर पर कास्यप गोत्र आचार्य ब्राह्मण चन्द्रशर्म्मण को शासक द्वारा [illegible] वाटी भूमि

दान में प्राप्त हुई ।[53] गाहड़वाल नरेश गोविन्द चन्द्र देव के एक दान पत्र ﴾1150 ईसवी﴿ में गोविन्द चन्द्र द्वारा दामोदर पंडित को एक गाँव दान में दिये जाने का उल्लेख है ।[54]

इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि ब्राह्मण आचार्य पंडित को दान दक्षिणा में प्राप्त धन ही जीविकोपार्जन का मुख्य साधन था । दान-दक्षिणा के अतिरिक्त इन्हें पुरूस्कार स्वरूप भी धन प्रदान किया जाता था । मानसोल्लास में वर्णित है, राजकुमार की शिक्षा समाप्त होने पर आचार्य को वस्त्र, सुवर्ण, भूमि, ग्राम इत्यादि पुरूस्कार स्वरूप दिया जाता था ।[55] स्पष्ट है कि ब्राह्मण आचार्य अध्यापक की सामाजिक स्थिति अच्छी थी। समाज में विशेष रूप से उच्च कोटि के विद्वान आचार्य को प्रतिष्ठा, सम्मान सामान्तय: अधिक प्राप्त था ।

विद्वान ब्राह्मणों का एक वर्ग राजकीय कार्यों में संलग्न दिखायी देता है । जयवर्मन देव द्वितीय का मांधाता ताम्रपत्र अभिलेख में प्रसंगित है कि श्रेष्ठतम पंडित गविश के पुत्र हर्षदेव नामक विद्वान द्वारा एक विशुद्ध राजशासन लिखा गया था ।[56] जयवर्मन देव द्वितीय के अन्य लेख मांडी प्रस्तर लेख में ब्राह्मण विद्वान वामन द्वारा प्रशस्ति उत्कीर्ण किये जाने का उल्लेख है ।[57]

विवेच्य काल में सेनापति, सैनिक, मंत्री के रूप में भी ब्राह्मणों की भूमिका महत्वपूर्ण थी । यद्यपि प्राचीन विधि ग्रन्थों में उक्त व्यवसायों को आपद धर्म के अन्तर्गत ग्रहण करने का विधान है ;[58] किन्तु अधीत कालीन ग्रन्थों में ब्राह्मणों के सामान्य धर्म के रूप में चर्चा की गई है ।[59] इस संदर्भ में अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं । हेमचन्द्र की द्वयाश्रय महाकाव्य में प्रसंगित है कि सपादलक्ष के

शासक अना की सेना का नेतृत्व राका नामक एक ब्राह्मण सेनानायक ने किया था ।[60] दश कुमार चरित में युद्ध विद्या में निपुण ब्राह्मण कुमार का प्रसंग है । [61]

ब्राह्मणों के सामरिक क्षेत्र में रत होने की पुष्टि अभिलेखीय साक्ष्यों के समावर्त में प्रस्तुत की जा सकती है । सेमरा में दानपत्र से विदित होता है कि ब्राह्मण सेनापति कल्हण पुत्र अजयपाल भी सेनापति था ।[62] इच्छावर अभिलेख के अनुसार चन्देल शासक परमर्दि का सेनापति मदनपाल शर्मन भी ब्राह्मण था ।[63] प्रस्तुत तथ्य के संदर्भ में वीलपट्टन लेख में उल्लिखित है कि शिलाहार वंश के शासक रट्टराज का सेनापति नागमैय ब्राह्मण वंशीय था ।[64]

इस प्रकार ब्राह्मणों के सैनिक होने के प्रमाण भी हमें मिलते हैं । राज - तरंगिनी में ब्राह्मणों के युद्ध क्षेत्र में सैनिक के रूप में लड़ने का प्रसंग है ।[65] इसके अतिरिक्त विरुधा विधि विधवमास में प्रसंगित है स्कन्द और उसके पौत्र स्कन्द और वामन ने सोमेश्वर और पृथ्वीराज तृतीय के मंत्री तथा साहसी सैनिक के रूप में सेवा की थी ।[66] अभिलेखीय साक्ष्य नरायणपाल कालीन गरूड़ स्तम्भ अभिलेख में वर्णित है कि ब्राह्मण मंत्री गौरवमिश्र एक उच्च कोटि के विद्वान के साथ-साथ एक साहसी योद्धा भी थे ।[67]

ब्राह्मणों के प्रशासनिक तंत्र से जुड़े होने के प्रमाण हमें पूर्वमध्य कालीन साक्ष्यों में प्राप्त होते हैं । कादम्बरी में उल्लेख है कि कुमालपाल तथा शुकनास[68] क्रमश: शुद्रक और तारापीड के ब्राह्मण मंत्री थे । प्रस्तुत कथन की सुपुष्टि अभिलेखीय प्रमाणों से भी होती है । कोनी अभिलेख में कल्चुरी शासक पृथ्वीदेव प्रथम और रत्नपुर के रत्नदेव ने ब्राह्मणों को मंत्री पद पर नियुक्त किया था ।[69]

चन्देल राजाओं ने भी पुश्तैनीय आधार पर ब्राह्मणों के मंत्री होने का समर्थन किया है ।[70]

चन्द्रगुप्त द्वितीय कालीन उदय गिरि शैव गुहा लेख में स्पष्ट रूप से वर्णन मिलता है कि कौत्स गौत्रीय सन्धिविग्रहिक के सचिव शाब जिसका कुलनाम वीरसेन था ।[71] भोजदेव कालीन यशोवर्मन का कालब्ज ताम्रपत्र अभिलेख (तिथि विहीन) में भोजदेव के अधीन सामंत यशोवर्मन ब्राह्मण वंश में उत्पन्न योगेश्वर नाम का संधिविग्रहिक था।[72] अर्जुनवर्मन प्रथम का पिपलिया नगर ताम्रपत्र अभिलेख (1210 ई0) में प्रसंगित है कि महा पण्डित विल्हण, नरेश अर्जुनवर्मन का संधिविग्रहिक सचिव था ।[73] प्रस्तुत कथन की पुष्टि अर्जुनवर्मन के सिहौर ताम्रपत्र अभिलेख से भी होती है ।[74]

तृतीय कोटि में उन ब्राह्मण वर्ग का उल्लेख किया जा सकता है जिन्होंने कृषि को वृत्ति के रूप में ग्रहण किया था । इस संदर्भ में अनेक साहित्यिक एवं अभिलेखीय प्रमाण प्राप्त होते हैं । पराशर ने कृषि को ब्राह्मणों के सामान्य व्यवसाय के रूप में स्वीकार किया है ।[75] लक्ष्मीधर ने ब्राह्मण द्वारा कृषि कार्य को अपनाये जाने का समर्थन करते हुये मत प्रस्तुत किया है कि यदि ब्राह्मण कृषक उपज का 1/6 भाग राजा को कर रूप में और 1/12 भाग भगवान को और 1/13 भाग ब्राह्मणों को देता है तो बीजवपन में कोई पाप नहीं है ।[76] आचार्य शुक्र ने ब्राह्मणों को 16 बैल, 1 हल रख कर कृषि कराने का विधान किया है ।[77] कथा कोष प्रकरण में ब्राह्मण कृषक का प्रसंग प्राप्त होता है ।[78] अलबीरूनी ने ब्राह्मणों को विशेष स्थिति में कृषि कार्य करने का विधान किया है ।[79] प्रस्तुत

तथ्य के आलोक में अभिलेखीय साक्ष्य कामन अभिलेख में प्रस्तुत साहूला और जाजा नामक ब्राह्मण द्वारा भूमि की जुताई किये जाने का प्रसंग है ।[80] कहीं - कहीं ये ब्राह्मण वर्ग स्वयं कृषि न करके दूसरों के द्वारा कृषि करवाते थे । स्पष्ट है कि अन्तत: ये कृषि से सम्बन्धित थे ।[81] चालुक्य वंशीय कुमार पाल (1202 ई0)के दान पत्र में उल्लिखित है कि राजदेव, सुरादेश और सम्भवत: नागद ब्राह्मण कृषक थे ।[82] इसके अतिरिक्त अनंगभीम तृतीय के नगरी ताम्र पत्र अभिलेख (1230-31 ईसवी) में ब्राह्मण को भूमि के साथ जौ, गेहूँ तथा ईख के खेतों (फसलों) से युक्त गाँव दान दिये जाने का प्रसंग है जिससे स्पष्ट होता है कि ये कृषि से सम्बन्धित थे ।[83]

पूर्वमध्य कालीन साहित्यिक एवं अभिलेखीय साक्ष्य इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि ब्राह्मण कृषि के अतिरिक्त व्यापार और वाणिज्य को भी वृत्ति के रूप में अपनाया करते थे । यद्यपि प्राचीन ग्रन्थों में आपत्ति काल में जीवन निर्वाह हेतु ब्राह्मणोदाय व्यापार कर्म किये जाने का वर्णन है । इसके इसी संदर्भ में प्राचीन शास्त्रकारों ने ब्राह्मणो के निषिद्ध व्यापारों की लम्बी सूची प्रस्तुत की है ।[84] जिससे यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल में ब्राह्मण द्वारा व्यापार की प्रथा सीमित परिधि में प्रचलित थी । वहीं दूसरी ओर अधीत कालीन ग्रन्थ दशवतार-चरित में प्रसंगित है कि ब्राह्मण कर्मकर, नर्तक, मद्य, मक्खन तथा नमक के विक्रेता थे ।[85] लक्ष्मीधर ने भी प्राचीन विचारकों का अनुसरण करते हुये ब्राह्मणों द्वारा व्यापार किये जाने का समर्थन किया है ।[86] श्रृंगार - मंजरी कथा में महादेव नामक ब्राह्मण द्वारा सिंहल द्वीप में व्यापार व्यवसाय द्वारा अर्थोपार्जन कर पुन: स्वदेश लौटने का उल्लेख है ।[87] अलबीरूनी ने भी अपने यात्रा विवरण में प्रतिपादित किया है कि कुछ ब्राह्मण कपड़े तथा सुपाड़ी का व्यापार

करते थे ।[88] उपरोक्त साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि आर्थिक परिस्थितियों में परिवर्तन के दबाव से ब्राह्मण सामान्य व्यवसाय ही नहीं करते थे अपितु कुछ ऐसे व्यापार में भी रत थे जिन्हें प्राचीन स्मृतियों में ब्राह्मणों के लिये निषिद्ध कहा गया है ।

प्रस्तुत तथ्य के समर्थन में अभिलेखीय प्रमाण प्रसंगित है । पेहवा अभिलेख में ﴾नवीं शताब्दी﴿ वामुक ब्राह्मण के अश्व व्यापारी होने का प्रसंग है ।[89] सियादोनी ﴾10 वीं शताब्दी﴿ के अभिलेख में उल्लिखित है कि धामक नामक ब्राह्मण तम्बौल्कि का कार्य करता था ।[90] चाहमान शासक पृथ्वीराज तृतीय ﴾वि0 सं0 1234﴿ के बाडले अभिलेख में कौशिक गोत्रीय ब्राह्मण यशोराज के पुत्र या ﴾पौत्र﴿ द्वारा वाणिज्य से उपार्जित धन से एक वापी का निर्माण का उल्लेख है।[91] है । ब्राह्मणों का वर्गः- आलोचित कालीन अभिलेखीय विवरणों एवं साहित्यिक साक्ष्यों के आधार पर ब्राह्मण द्वारा विभिन्न व्यवसाय में रत होने का कथन सिद्ध है । अतः व्यवसायिक धरातल में ब्राह्मणों का विभिन्न वर्गों में विभाजन एक स्वाभाविक क्रिया प्रतीत होती है । आचार, चारित्रिक असमिता, वृत्तिगत भिन्नता के आधार पर ब्राह्मणों के विभिन्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है । पूर्वमध्य कालीन साक्ष्यों में भी ब्राह्मण वर्ण के सम्पूर्ण सदस्यों को एक अविच्छिन्न ﴾Homogeneous﴿ समुदाय में नहीं रखा जाता था । यशस्तिलक में ब्राह्मणों के कई नामों से उनके उपवर्गों का ज्ञान होता है । यथा ब्राह्मण[92], द्विज[93], विप्र[94], भूदेव[95] श्रोत्रिय[96], षाडव[97] उपाध्याय[98], मौहूर्तिक[99], देवभोगी,[100] पुरोहित[101] इत्यादि तिलक मंजरी में ब्राह्मणों के अनेक वर्गों का उल्लेख है । यथा द्विज,

श्रोत्रिय, द्विजन्मा, विप्र, पुरोधस्, पुरोहित, देवलक, नैमित्तिक, मौहूर्तिक, वेलावित्तक, दैवज्ञ, सांवत्सर इत्यादि ।[102] इस प्रकार अक्सर ब्राह्मणों को दस विभिन्न प्रकारों के वर्गों में विभाजित किया जाता था ।[103]

§1§ देवा - इस वर्ग के अन्तर्गत उच्चकोटि के विद्वान आचार्य ब्राह्मण पठन-पाठन, वेदज्ञान, इन्द्रिय संयम, तथा संतुष्टि भाव से जीवन निर्वाह करते थे ।

§2§ द्विज - इस कोटि में साधारण ब्राह्मण थे । जिनका कार्य पूजन, पाठ, शिक्षा - दीक्षा इत्यादि था ।

§3§ मुनि - इस वर्ग के लोग साधु संयासी हुआ करते थे और भिक्षा द्वारा जीवन यापन करते थे ।

§4§ राज - इस वर्ग में ब्राह्मण शासक का कार्य करते थे ।

§5§ वैश्य - इस वर्ग के अन्तर्गत कृषि, पशुपालन, व्यापार एवं वाणिज्य से जीविको -पार्जन करते थे ।

§6§ शूद्र - इस वर्ग के ब्राह्मण अस्त्र-शस्त्र निर्माण, लेखन कार्य करते थे उन्हें शूद्र तुल्य समझा जाता था ।

§7§ पशु - इस वर्ग के ब्राह्मण को शौच-अशौच, उचित-अनुचित, स्वच्छ-अस्वच्छ का ज्ञान न था ।

§8§ म्लेच्छ - इस वर्ग के अन्तर्गत ऐसे ब्राह्मण थे जो साहसी, भयरहित तथा विभिन्न प्रकार के श्रम से जीवन निर्वाह करते थे । यथा - मंदिर तोड़ना, कुँआ खोदना, तालाब बनवाने तथा अन्य मजदूरी का कार्य करते थे ।

§9§ मार्जार - इस वर्ग में स्वार्थी, निर्दयी प्रकार के ब्राह्मण समुदाय थे जो प्रायः डाकू, लुटेरे हुआ करते थे ।

§10§ चाण्डाल - जो ब्राह्मण ब्राह्मणोचित कार्य त्रिसंधायें, वेद, धर्म शास्त्र का अध्ययन नहीं करते थे

उपरोक्त वर्गों के अतिरिक्त ब्राह्मणों के अनेक उपवर्ग और उपजातियों का उल्लेख मिलता है । ये ब्राह्मण योग्यता, विद्याज्ञान तथा प्रान्तीय क्रम[104] में पृथक-पृथक कई उपवर्गों में विभक्त थे । यथा - श्रोतरिया, पंडित, महाराज, चतुर्वेदी, शुक्ला, द्विवेदी, अग्निहोत्रि, दीक्षित, याज्ञिक, त्रिवेदी, उपाध्याय, पाठक, अवस्थी, आर्यगोत्री, सरयूपारी, उत्कल, गौड़, मैथिल, सारस्वत, नागल, प्रागवत्, दहिमा, पुष्कर, वारिद इत्यादि । ब्राह्मणों के उक्त उपवर्गों एवं विभिन्न जातियों की चर्चा अभिलेखों में भी प्राप्त होती है ।

परमार वंशीय देवपाल देव का मान्धाता ताम्रपत्र अभिलेख (1225 ईसवी) में ब्राह्मणों के नामों के साथ उनके उपनामों व उपाधि का विवरण है जो प्राय: उनके धार्मिक कृत्यों को प्रदर्शित करते हैं । यथा अग्निहोत्रिन्, आवसथिक, उपाध्याय, चतुर्वेदिन, दीक्षित, पंडित, पाठक, याग्निका, शुक्ला, श्रोत्रिय, ठक्कुर इत्यादि ।[105] जयसिंह जयवर्मन द्वितीय का एक अन्य अभिलेख (1274 ई0) मे भी दीक्षित, चतुर्वेद , द्विवेदी, अवस्थिन्, पाठक, त्रिवेद, इत्यादि ब्राह्मणों के उपवर्गों का उल्लेख है ।[106]

सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति :-

शास्त्रीय अथवा अनुष्ठानिक अनुक्रम के उच्चतम् स्थान पर स्थित ब्राह्मणों को सामाजिक एवं आर्थिक सम्मान प्राप्त था । प्राचीन ग्रन्थों से विदित है कि वे देवता के समान आदृत थे[107] तथा द्विजों में सर्वश्रेष्ठ थे ।[108] यह प्रतिष्ठा सम्मान उनके ज्ञान विज्ञान, विद्वता, शुचिता एवं त्याग तपस्या के कारण प्राप्त

थी । इस प्रकार बौद्धिक, शैक्षिक एवं धार्मिक क्षेत्र में ब्राह्मणों का स्थान अग्रणीय था जिससे उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा का संकेत मिलता है । वृहतकथा - श्लोकसंग्रह नामक ग्रन्थ में चारों वेदों के ज्ञाता ब्राह्मणों का उल्लेख है ।[109] तिलकमंजरी में उल्लिखित है कि मेघवाहन के राजकुल में ब्राह्मणों की एक विशिष्ट सभा थी जिसे द्विजावसरमंडप कहा गया है ।[110] ब्राह्मणों की विद्वता को स्वीकार करते हुये विदेशी लेखक अलमसूदी ने मत प्रस्तुत किया है कि हिन्दुस्तानियों में ब्राह्मण सर्वाधिक योग्य थे ।[111]

ब्राह्मणों की विद्वता ज्ञान के संदर्भ में प्राप्त कथनों की पुष्टि अभिलेखों में वर्णित विवरणों से भी होती है । स्कन्दगुप्त के इंदौर ताम्रपत्राभिलेख (459 ई0) में चारों वेदों के ज्ञाता (चातुर्विधा) ब्राह्मणों का उल्लेख मिलता है ।[112] कुमारगुप्त प्रथम तथा बन्धुवर्मन के मन्दसोर शिलालेख (436-473 ई0) में भी दशपुर के स्वाध्यायी, विनयी, विद्वान तथा तपस्वी ब्राह्मणों का विवरण है ।[113] परमारवंशीय नरवर्मन का देवास ताम्रपत्र अभिलेख (1094 ई0) में त्रिप्रवर वाले, वेद की आश्वलायन शाखा के अध्यायी ब्राह्मण धनपाल का पौत्र तथा महिर स्वामी के पुत्र विश्वरूप का प्रसंग प्राप्त है ।[114] अर्जुनवर्मन का सीहोर ताम्रपत्र अभिलेख में इस प्रकार के विद्वान ब्राह्मणों का विवरण है ।[115]

इस प्रकार ब्राह्मणों की सामाजिक प्रतिष्ठा उनको प्राप्त विशिष्ट धार्मिक, शैक्षिक एवं अन्य अधिकारों से स्वयं सिद्ध है ।

दण्ड विधान के क्षेत्र में भी ब्राह्मणों को विशेष छूट थी । कौटिल्य के अनुसार किसी भी प्रकार का अपराध करने पर ब्राह्मण को वध, ताड़नादि

दण्ड विहित नहीं था । अपितु अपराध की गंभीरता के अनुरूप माथे पर चिंह अंकित करते थे । यथा मद्यपान करने पर मदिरापान का चिन्ह अंकित किया जाता था ।[116] विवेच्य कालीन कतिपय ग्रन्थों से विदित होता है तत्कालीन समाज में ब्राह्मणों को प्राण दण्ड देय नहीं था । अपितु कतिपय लौकिक साहित्यिक ग्रन्थों में दण्ड विधान किया गया है । कृत्यकल्पतरू,[117] लघुवराह - नीतिसार[118] जैसी कृतियों में ब्राह्मणों के लिये प्राण दण्ड की व्यवस्था निषिद्ध की गई है । इसी पक्ष में अलबीरूनी ने भी मत प्रस्तुत किया है कि हत्यारा ब्राह्मण है और यदि मृतक व्यक्ति किसी अन्य वर्ण का है तो उसे उपवास, प्रार्थना अथवा दण्ड के रूप में केवल प्रायश्चित करना पड़ता था ।[119]

उपरोक्त विचारों के विरूद्ध आधीत कालीन कतिपय विचारकों ने अपराधी ब्राह्मण को प्राणदण्ड दिये जाने का समर्थन किया है ।[120] सुमन्त को उदधृत करते हुये विज्ञानेश्वर ने दुराचारी ब्राह्मण को प्राणदण्ड देने की व्यवस्था की है ।[121] स्मृतिचन्द्रिका में देवन्नभट्ट ने भी अपराधी ब्राह्मण को वध करने का समर्थन किया है ।[122] कल्हण ने भी ऐसी कई घटनाओं का उल्लेख किया जिसमें अपराधी ब्राह्मणों का वध किया गया था ।[123]

उपरोक्त साक्ष्यों के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि पूर्वमध्य काल में दण्ड विधान के संदर्भ में ब्राह्मण वर्ण को कुछ छूट अवश्य थी परन्तु यह स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि अपराध करने पर उन्हें किसी प्रकार दण्डित नहीं किया जाता था ।

ब्राह्मणों को प्राप्त बहुपत्नित्व का अधिकार भी उनकी सामाजिक गरिमा को व्यक्त करता है । देवल ने भी इसी प्रकार के विचारों का समर्थन किया है तथा मत प्रस्तुत किया कि ब्राह्मण चार पत्नियाँ वरण कर सकता है ।[24] अलबीरूनी ने भी वर्णानुक्रम के अनुसार एकाधिक पत्नित्व वरण के अधिकार का समर्थन किया है ।[25]

ब्राह्मणों की सामाजिक स्थिति का विश्लेषण करने के उपरान्त यह स्पष्ट होता है कि विवेच्यकाल में सामान्य एवं अनुष्ठानिक रूप में ब्राह्मणों की सामाजिक प्रतिष्ठा सर्वोच्च थी । सैद्धान्तिक स्तर पर केवल जन्म के आधार पर प्रत्येक ब्राह्मण को सर्वोच्च सामाजिक प्रतिष्ठा एवं सम्मान प्राप्त था । वास्तव में ऐसी स्थिति नहीं रही होगी । निरक्षर, मूर्ख, दुष्टचरितत्र, दरिद्र ब्राह्मणों की वास्तविक सामाजिक स्थिति हेय थी । इसमें संदेह नहीं है कि उच्चकोटि के आचार्य,विद्वान,राजपुरोहित, प्रशासनिक तंत्र से सम्बन्धित एवं उच्चराजपदाधिकारियों के पद पर आसीन ब्राह्मणों की सामाजिक प्रतिष्ठा व आदर सम्मान अधिक था ।

आर्थिक दृष्टि से भी ब्राह्मणों को अनेक विशेषाधिकार प्राप्त थे । प्राचीन विचारकों का अनुसरण करते हुये पूर्वमध्यकालीन स्मृतिकारों ने मत प्रस्तुत किया है कि दान एवं प्रतिग्रह का अधिकार केवल ब्राह्मणों को प्राप्त था ।[26] हर्षचरित में उल्लिखित है सम्राट हर्ष के दरबार में अनेक ब्राह्मण रहते थे । उनके द्वारा धार्मिक कृत्य किये जाने पर हर्ष पुरस्कार स्वरूप प्रभूत दान देता था ।[27]

तिलकमंजरी में विप्रों को नामकरण संस्कार के अवसर पर गो तथा स्वर्ण दान देने का उल्लेख आया है ।[128] इसी ग्रन्थ में एक अन्य स्थान में वर्णित है कि श्रोतियों ब्राह्मणों के दानार्थ लायी गयी गायों से कक्षा भर गयी थी ।[129] इन दान प्राप्त ग्रहिताओं में मुख्यत: पुरोहित, विद्वान,आचार्य की संख्या अधिक थी ।[130]

साहित्यिक साक्ष्यों के अतिरिक्त अभिलेखीयविवरणों में भी ब्राह्मणों द्वारा दान ग्रहण करने के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं । गुर्जर नरेश जयभट्ट द्वितीय के §706 ई0§ के नवसारि अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसने एक ब्राह्मण को गृह तथा चल और अचल सम्पत्ति के साथ 64 निर्वतन भूमि दान दी थी ।[131] बराकपुर ताम्रपत्र लेख से ज्ञात होता है कि विजयसेन की पत्नी विलासदेवी द्वारा अनुष्ठानिक तुलापुरुष दान,यज्ञ, सम्पन्न किये जाने पर उदय कर देवशर्मन को चार पातक भूमि दक्षिणा के रूप में दी थी ।[132] गाहड़वाल सम्राटों द्वारा पुरोहित जागुशर्मन और देववर को दान दिये जाने का उल्लेख प्राप्त होता है ।[133] महाराजाधिराज यशोवर्मन व महाकुमार लक्ष्मीवर्मन का उज्जैन ताम्रपत्र लेख §1143 ई0 § में ब्राह्मण द्विवेदी धनपाल को गाँव दान दिये जाने का उल्लेख है ।[134]

दान प्रतिग्रह के अधिकार के अतिरिक्त करों में विशेष छूट ब्राह्मण वर्ण के आर्थिक विशेषाधिकार को प्रकट करता है । इस संदर्भ में अनेक साहित्यिक एवं अभिलेखीय प्रमाण उपलब्ध होते हैं । अधीत कालीन ग्रन्थ कृत्यकल्पतरू में ब्राह्मणों को करों में विशेष छूट देने का निर्देश है ।[135] इसी प्रकार का तथ्य मानसोल्लास

में भी प्रसंगित है ।[136] विदेशी लेखक अलबीरूनी ने भी प्रस्तुत मत के संदर्भ में लिखा है कि ब्राह्मणों के लिये कर प्रदान करना आपेक्षित नहीं था तथा सभी प्रकार के करों से केवल ब्राह्मण वर्ण ही मुक्त था ।[137]

पूर्वमध्य कालीन अधिकांश दानपत्रों मे कई प्रकार के करों से मुक्त ग्राम, भूमिखण्ड दान दिये जाने का उल्लेख ब्राह्मणों के कर मुक्ति के विशेषाधिकार को स्पष्ट करते हैं । अर्जुनवर्मन का सीहोर ताम्रपत्र अभिलेख में {1213 ई0} गोविन्द शर्मा ब्राह्मण को हिरण्य, भागभोग उपरिकर से मुक्त, सभी आय समेत भूमिखण्ड दिये जाने का उल्लेख है ।[138] जयवर्मनदेव द्वितीय का मांधाता ताम्रपत्र अभिलेख में वर्णित है कि जयवर्मनदेव द्विीय ने हिरण्य भागभोग उपरिकर इत्यादि करों से मुक्त ग्राम 3 ब्राह्मणों को दान में दिया था ।[139] उड़ीसा से प्राप्त अनंग - भीम तृतीय के नगारी ताम्रपत्र अभिलेख में {1230-31 ईसवी} स्थायी रूप से कर मुक्त भूमि ब्राह्मण देवधर शर्म्मन को दिये जाने का उल्लेख है ।[140] गाहड़वाल वंशीय गोविन्दचन्द्र का कमौली ताम्रपत्र अभिलेख में महापुरोहित श्री जागूशर्मण को भागभोगकर, प्रवीणकर, कूटक इत्यादि सहित ग्राम दान दिये जाने का प्रसंग है ।[141] इसके अतिरिक्त बंगाल से प्राप्त लेखों में इसी प्रकार की चर्चा मिलती है ।[142]

ऐसा प्रतीत होता है कि आर्थिक धरातल पर प्राप्त विशेषाधिकार के फलस्वरूप ब्राह्मणों की आर्थिक स्थिति काफी सुदृढ़ हो गई थी । उनकी आर्थिक सम्पन्नता की संपुष्टि कतिपय अभिलेखों में प्रसंगित कथनों से होती है । परमार वंशीय जयसिंह द्वितीय का पठारी प्रस्तर अभिलेख में उल्लिखित है कि गौड़ वंश

में उत्पन्न पंडित महणसिंह के पुत्र रणसिंह ने वाटिका हेतु भूदान किया था ।[143] बंगाल के एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि बंगाल के वर्मन राजा हरिवर्मन के शांति तथा युद्ध का मंत्री भटभवदेव ने तालाब एवं सुन्दर उद्यान से युक्त अनन्त बासुदेव का एक विशाल मंदिर बनवाया था ।[144] बंगाल के एक अन्य लेख सलीमपुर में ब्राह्मण आचार्य दारा मंदिर निर्माण का वर्णन मिलता है ।[145] जयसिम्मा चेदि और विक्रमादित्य चालुक्य कालीन ब्राह्मण ... नायक केशव[145अ] और बासुदेव दण्डनायक ने एक मंदिर का निर्माण करवाया था ।[146] राजस्थान के अभिलेखों में प्राप्त तथ्य उक्त कथन की पुष्टि करते हैं । भण्डीर से प्राप्त एक अभिलेख में वर्णन है कि ब्राह्मण चणक के पुत्र माधू ने बावड़ी का निर्माण करवाया था ।[147]

ब्राह्मणों की आर्थिक स्थिति के संदर्भ में प्राप्त प्रमाणों से यह स्पष्ट होता है कि ब्राह्मणों के आर्थिक जीवन को उन्नतिशील एवं समृद्धपूर्ण बनाने में राज्य और समाज की ओर से अनेक सुविधायें प्राप्त थी । इन्हें भूमिखण्ड के अतिरिक्त अन्य वस्तुयें भी प्राप्त होती थी । इस प्रकार सामाजिक महत्ता सम्मान के साथ-साथ ब्राह्मणों की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ थी । यद्यपि कि निम्न व्यवसायरत ब्राह्मणों की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी न थी ।

क्षत्रिय :-

वर्णानुक्रम में क्षेत्रियों को द्वितीय स्थान प्राप्त है । पूर्वमध्य कालीन विविध साक्ष्यों में क्षत्रियों के शौर्य, पराक्रम, शासन कौशल, युद्धक प्रवृत्ति इत्यादि गुणों की चर्चा मिलती है । साक्ष्यों में इन्हें क्षत्रम्, क्षत्रिय, राजन्य:, बहुसम्भव:

इत्यादि संज्ञायें दी गई हैं ।[148] हेमचन्द्र ने क्षत्रियों की वरीता और शौर्य को ही पुरूषार्थ माना है ।[149] तिलकमंजरी में शौर्य, तेज, धैर्य, युद्ध में दक्षता, दान एवं ऐश्वर्य को क्षत्रिय के स्वाभाविक गुण कहे गये हैं ।[150] मध्यकालीन विधिकार लक्ष्मीधर ने क्षत्रिय शब्द क्षतात्त्राणम् से निःसृत मानते हुये प्रस्तुत शब्द की अर्थाभिव्यक्ति करते हुये मत प्रतिपादित किया है कि तीनो वर्णों को हानि और भय से त्राण देना ही क्षत्रियों का कर्त्तव्य है ।[151]

आलोच्य कालीन अभिलेखों में भी क्षत्रियों के विविध गुणों, शौर्य-पराक्रम की व्याख्या प्रस्तुत की गई है । प्रतिहार सम्राट की प्रशंसा में उल्लिखित है कि वे एक उच्च कोटि के योद्धा तथा व्याकरण, तर्कशास्त्र, ज्योतिष शास्त्र तथा दर्शन के ज्ञाता भी थे ।[152] भोजदेव कालीन तिलकवाड़ा ताम्रपत्र में राजा भोज की वीरता पराक्रम के विषय में प्रसंग मिलता है कि उनकी प्रताप - रूपी अग्निज्वाला ने शत्रुओं के वक्षस्थल को जला दिया ।[153] जयसिंहदेव प्रथम कालीन मण्डलीक का पाणाहेड़ा प्रस्तर खण्ड अभिलेख (1059 ई0) में वर्णित है कि परमारवंश में त्यागी, सत्य, पराक्रमशील गुणों का भण्डार सत्यराज सम्राट हुआ जिसने गुर्जरों के साथ युद्ध कर के श्री भोजनरेश से वैभव प्राप्त किया ।[154]

क्षत्रियवर्ण में जातियों एवं शाखायें की उत्पत्ति मुख्य रूप से राजपूत नामक नई जाति के उदय के कारण हुई थी । राजपूतों का उदय पूर्वमध्य कालीन इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है । राजपूतों की उत्पत्ति विषयक मतों में परस्पर विरोध दृष्टिगत होता है । जहाँ विद्वानों का एक वर्ग राजपूतों को

भारतीय स्वीकार करते हुये क्षत्रियों का वंशज मानता है । वहीं विद्वानों का ब दूसरा वर्ग राजपूतों को विदेशी स्वीकार करता है । इस सम्बन्ध में विद्वानों ने पृथक-पृथक मत प्रस्तुत किये हैं ।

भारतीय उत्पत्ति को स्वीकार करते हुये इतिहासकारों ने मत प्रस्तुत किया है । उत्तर भारत में राज्य करने वाले वंशों में मुख्य रूप से गुहिल, गुर्जर, प्रतिहार, चाहमान, चालुक्य, राष्ट्रकूट, चन्देल, परमार, गहलवाल अपने को राजपूत कहते थे ।[155] इन वंशों के अभिलेखों में आबू पर्वत से इनकी उत्पत्ति के संदर्भ में प्रमाण मिलते हैं । उदयदित्यदेव कालीन नीलकंठेश्वर मंदिर प्रस्तरखण्ड अभिलेख में वर्णित है कि आबू पर्वत पर विश्वामित्र द्वारा वसिष्ठ की धेनु अपहरण करने पर वसिष्ठ ने यज्ञाग्नि प्रज्जवलित की । इससे एक वीर पुरूष उत्पन्न हुआ । उसने सम्पूर्ण सैनिकों का वधकर धेनु को वापिस ले आया, तब मुनि ने उसको आशीर्वाद दिया कि तुम परमार राजा होगे ।[156] पाणाहेड़ा अभिलेख में इसी प्रकार कथा का प्रसंग मिलता है ।[157]

समकालीन साहित्यिक साक्ष्य के रूप में परिमलपद्मगुप्त रचित नवसाहसांक - चरित में भी परमारोंकी आबू पर्वत से उत्पत्ति के तथ्य की विशद चर्चा है । मजूमदार और वैद्य का कथन है कि सातवीं से 12वीं शताब्दी तक उत्तरभारत में कुछ राजपूत जातियाँ थीं ।[158] साक्ष्यों में इन जातियों की विस्तृत सूची भी प्राप्त होती है ।

कतिपय विद्वानों ने राजपूत शब्द की व्याख्या करते हुये प्राचीन संस्कृत शब्द 'राजपुत्र' का समानार्थक स्वीकार किया है । जिसका अर्थ 'राजा का पुत्र'

है । इस संदर्भ में हमें अनेक अभिलेखीय प्रमाण भी प्राप्त होते हैं । विजयसेन के बाराकपुर दान पत्र में बंगाल के सेन राजाओं को राजपुत्र अभिहित किया गया है ।[159] इसके अतिरिक्त परमारों,[160] गाहड़वालों,[161] के विवरण में यूवराज की गणना राजा, रानी के उपरान्त की गई है । जबकि पूर्वी भारत के लेखों में राजपुत्र शब्द का प्रयोग युवराज के लिये हुआ है ।[162] उक्त कथन की पुष्टि सेन राजवंश के अभिलेखों से भी होती है ।[163] उड़ीसा[164] और आसाम[165] के दान पत्रों में राजपुत्र का उल्लेख मिलता है । कल्चुरी अभिलेख में राजपुत्र और महाराजपुत्र का प्रयोग इसी अर्थ में किया गया है ।[166]

कतिपय साक्ष्यों में राजपुत्र का प्रयोग सैनिक तथा महासेनापति के लिये किया गया है । इस प्रकार ये अधिकार प्रशासनिक अधिकारी, भूमिगत कुलीन वर्ग को भी प्राप्त था । जो राजपूत प्रशासनिक परिवार, सैनिक सेननापति के रूप में थे उन्हें द्वितीय वर्ग की संतान माना गया है ।[167]

उत्तर भारत के लगभग सभी राजवंशों के अभिलेखों के अनुशीलन से ऐसा ज्ञात होता है कि राजपुत्र शब्द क्षत्रिय राजवंशों के राजकुमार और युवराज के लिये प्रयोग होता था तथा उपरोक्त साक्ष्य राजपूतों के क्षत्रिय होने के प्रमाण प्रस्तुत करते हैं ।

राजपूतों को विदेशी स्वीकार करने वाले इतिहास मनीषियों में टॉड, कूक, स्मिथ, भण्डारकर इत्यादि प्रमुख हैं । इनका कथन है कि राजपूत मध्य एशिया के सीथियन लोगों की संतान थे । और पूर्वकाल में अधिक संख्या में भारत आये[168]।

स्मिथ के अनुसार राजपूत उत्तरी पश्चिमी प्रान्त के थे तथा प्रतिहार, चौहान, परमार, चालुक्य, विदेशी आक्रमणकारी हूणों और शकों की संतान थ ।[169] भंडारकर ने भी राजपूतों को विदेशियों की संतान मानते हुये मत प्रतिपादित किया है ।[170] चार अग्नि कुलवर्ग प्रतिहार, परमार, चाहमान, सोलंकी, गुर्जरों से उत्पन्न हुये थे और उन्होंने गुर्जरों को विदेशी माना है ।

उपरोक्त मतों का खंडन करते हुये सी0 वी0 वैद्य ने मत प्रस्तुत किया है कि राजपूत विशुद्ध क्षत्रिय थे, ये अत्यधिक पराक्रमी शौर्यवान् वैदिक आर्य के वंशज थे ।[171] यू0 एन0 घोषाल ने स्मिथ के कथन का खंडन करते हुये मत प्रतिपादित किया है कि हूणों, गुर्जरों के समान परमार, चालुक्य, चाहमान, प्रतिहार को किसी भी दृष्टि से विदेशी नहीं स्वीकार किया जा सकता है ।[172]

राजपूतों की उत्पत्ति की समाजार्थिक तथा राजनैतिक संदर्भों की एक विशद समीक्षा में प्रो0 वृज दुलाल चट्टोपाध्याय ने यह दिखाया है कि राजपूतों की उत्पत्ति में देशी, विदेशी तथा जनजातियों इत्यादि कई पृथक-पृथक समुदायों की भूमिका रही है । ऐसे विभिन्न समुदाय राजनैतिक अधिकार प्राप्त करने के पश्चात् राजपूत की संज्ञा प्राप्त कर एक विशेष प्रकार के आचार एवं आचरण की विधि पालन करने लगे इसी के माध्यम से शनैः शनैः ऐसे राजनैतिक अधिकार सम्पन्न शासक परिवार में पारस्परिक वैवाहिक सम्बन्धों से वे विभिन्न समुदाय एक विशिष्ट सम्प्रदाय राजपूत ४राजपुत्र४ के नाम से परिचित हो गये ।[173]

मध्यकालीन विविध साक्ष्यों के अनुशीलन से यह स्पष्ट है कि अधीत काल में राजपूत को क्षत्रिय की मान्यता प्राप्त हो चुकी थी तथा पूर्व मध्य

कालीन सामाजिक पृष्ठभूमि में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुके थे ।

अधीत कालीन साक्ष्यों के अध्ययन से क्षत्रियों के प्रमुख दो वर्गों का ज्ञान होता है । प्रथम वर्ग के अन्तर्गत विशुद्ध राजपूत वंश से सम्बन्धित थे। द्वितीय वर्ग में साधारण राजपूत सैनिक थे । क्षेमेन्द्र की कृति बोधिसत्वावदानकल्पलता में सुक्षत्रिय शब्द का उल्लेख है ।[174] वत्सराज की कृति किरातार्जुनीय में भी सत्क्षत्रिय शब्द प्रसंगित है ।[175] इसके अतिरिक्त तिलकमंजरी में क्षत्र तथा क्षत्रिय ये दो शब्द प्रयुक्त हुए हैं[176] जिससे क्षत्रिय वर्ग का अनुमान किया जा सकता है । हेमचन्द्र के द्व्याश्रय में शुद्ध क्षत्रिय का उल्लेख मिलता है ।[178] इस संदर्भ में बी0 एन0 एस0 यादव का मत है कि पूर्वमध्य काल में सामंतवाद की उत्पत्ति के साथ - साथ शासक वर्ग में अभिजात्य एवं अभिमान की भावना की उत्पत्ति हुई, जिसके फलस्वरूप शासक वर्ग में कुछ क्षत्रिय अपने को विशुद्ध और श्रेष्ठ मानने लगे थे और ऐसे ही लोग स्वयं को सत्क्षत्रिय, शुद्ध क्षत्रिय इत्यादि विशेषणों से अभिहित करने लगे ।[178] अरब यात्री इब्न्-खुदार्दबा के अनुसार सबकुफ्रिया तथा कतरिया, क्षत्रिय के दो वर्ग थे ।[179] उक्त कथन के आलोक में अल्तेकर ने मत प्रस्तुत किया है, ये क्रमश: संस्कृत सत्क्षत्रिय और क्षत्रिय शब्द के पर्याय है । तथा सब-कुफ्रिया का तात्पर्य सत्-क्षत्रिय से है जो राजवंश से सम्बद्ध थे, जबकि कतरिया अर्थात सामान्य क्षत्रिय थे ।[180]

क्षत्रियों का व्यवसाय :- जहाँ तक क्षत्रियों के व्यवसाय का प्रश्न है।स्मृतियों से विदित होता है कि क्षत्रिय का कर्त्तव्य सामान्यत: अध्ययन, अजन, दान,

प्रजापालन तथा शस्त्रों से जीवकोपार्जन करना था ।[181] कामन्दकनीतिसार में भी इसी प्रकार के विचारों का समर्थन किया गया है ।[182] शुक्रनीतिसार में भी लोक संरक्षण एवं दुष्टों का निग्रह करना क्षत्रियों का प्रधान कर्म विहित किया गया है ।[183] इसी प्रकार के विचारों का समर्थन करते हुए शास्त्रकार लक्ष्मीधर ने राजा के रूप में क्षत्रियों के प्रधान कर्म के अन्तर्गत शस्त्र धारण, देश पर निष्पक्ष शासन करना तथा वर्ण धर्म की रक्षा का विधान किया है ।[184] हेमचन्द्र ने भी क्षत्रियों के प्रधान कर्म में प्रशासन एवं युद्ध का उल्लेख किया है ।[185] अरब यात्री अलबीरूनी ने भी वेदअध्ययन, याज्ञिक कृत्य, पुराणोचित आचरण, प्रजापरिपालन एवं परिरक्षण को क्षत्रिय का कर्म बताया है ; क्योंकि वह इसी निमित्त उत्पन्न किया गया है ।[186]

अधीतकालीन साक्ष्यों में जहाँ एक ओर क्षत्रियों के परम्परागत कर्त्तव्य एवं कार्यों का उल्लेख है वहीं दूसरी ओर वृत्यर्थक कर्म के अन्तर्गत कृषि एवं व्यापार का भी विधान किया गया है । पराशर ने क्षत्रियों के लिए कृषि विहित कर्म बताया है ।[187] वृद्धहारीत ने कृषि को सभी वर्णों का सामान्य धर्म स्वीकार किया है ।[188] माध्वाचार्य ने कृषि के साथ वाणिज्य और शिल्प को भी वर्णचतुष्टय के साधारण धर्म की संज्ञा दी है ।[189] गृहस्थरत्नाकर में भी क्षत्रियों द्वारा कृषि कर्म अपनाने की चर्चा की गई है ।[190] अपरार्क ने क्षत्रियों द्वारा कृषि कर्म करने के पक्ष में विचार प्रस्तुत किया है ।[191] कतिपय अभिलेखों में क्षत्रिय द्वारा अन्यान्य कर्म के अन्तर्गत कृषि कर्म किये जाने की सूचना मिलती है ।

भोजकालीन ग्वालियर अभिलेख ‹876 ईसवी› में क्षत्रिय देववर्मन के पुत्र मैमक द्वारा कृषि किये जाने का उल्लेख है ।[192] गुर्जर, प्रतिहार वंशीय ‹960 ई0› के एक लेख में एक सामंत राजा ने अपने वंशपोतक ‹निजी उपभोग की भूमि में से एक गाँव दान किया था जिसमें बहुत संख्या में गुर्जर कृषक रहते थे ।[193]

आपद् काल में क्षत्रिय के लिये वैश्य वृत्ति अपनाने की आज्ञा दी गई है ।[194] मेधातिथि ने क्षत्रिय को सभी वस्तुयें विक्रय करने की स्वतंत्रता दी है ।[195] अपरार्क ने आपद्काल में क्षत्रियों द्वारा वैश्य वृत्ति ग्रहण का संदर्भ प्रस्तुत किया है ।[196] गुप्त कालीन स्कन्दगुप्त के इंदौर ताम्रपत्र अभिलेख में क्षत्रिय वणिक् अचलवर्मा का उल्लेख किया गया है ।[197] दसवीं शताब्दी के प्रतिहारों के एक लेख में क्षत्रिय वणिक् का प्रसंग प्राप्त होता है ।[198] इसी प्रकार ग्वालियर अभिलेख में उल्लिखित, सार्थवाह, इक्ष्वाक तथा तैलिक जयशक्ति को लेख के विद्वान सम्पादक द्वारा क्षत्रिय वर्ण का स्वीकार किया गया है ।[199]

उपरोक्त साक्ष्यों के अनुशीलन से यह प्रमाणित होता है कि यद्यपि क्षत्रिय वर्ण अपने परम्परागत कार्य प्रशासन से प्रधानतः सम्बन्धित थे तदपि कतिपय क्षत्रिय वर्ग कृषि एवं व्यापार के द्वारा जीवकोपार्जन करते थे । ऐसा प्रतीत होता है कि सभी क्षत्रियों की प्रशासनिक कार्य से जीविका नहीं चलती थी । यह भी स्पष्ट है कि कुछ सैनिक कार्य में रत थे जिन्हें वेतन एवं दान प्राप्त होता था जो उनके जीविकोपार्जन का स्रोत था । पर साथ ही साथ क्षत्रियों का एक वर्ग कृषि एवं व्यापार पर भी निर्भर हो गया था ।

क्षत्रियों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति :- प्राचीन परम्परा के अनुरूप ब्रह्मा के बाहु से प्रादुर्भूत क्षत्रियों का समाज में महत्वपूर्ण स्थान था।[200] मध्यकालीन स्मृतिकारों ने भी इनकी गणना द्विजों की कोटि में की है।[201] ऐसा प्रतीत होता है कि आलोचित काल में भी क्षत्रियों को परम्परागत गौरव व सम्मान प्राप्त था तथा क्षत्रिय लौकिक एवं अनुष्ठानिक दोनों ही दृष्टियों से उच्च माने जाते थे। अलबीरूनी के अनुसार क्षत्रियों का स्थान ब्राह्मणों से विशेष कम न था।[202] अरब इतिहासकारों ने तो उन्हें प्रथम स्थान दिया है तथा सबकुफ्रिया नाम से सम्बोधित किया है जिनमें राजा बनते थे जब कि सामान्य क्षत्रियों का स्थान ब्राह्मण से निम्न माना है।[203]

अभिलेखों एवं साहित्यिक साक्ष्यों में उन्हें विभिन्न उपाधियों से विभूषित किये जाने के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। जिससे उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा, सम्मान का अंकन किया जा सकता है।

मान्धाता अभिलेख में परमार वंशीय सम्राट यशोवर्मन को क्षत्रियों में मुकुट रूप अभिहित किया गया है।[204] कल्चुरियों के एक लेख में एक क्षत्रिय को द्विजों के अधिप के रूप में विवृत किया है।[205] एक अन्य लेख में एक शासक को द्विजों में आभूषण कहा गया है।[206] तिलकमंजरी में सम्राट मेघवाहन को क्षत्रियों में अलंकार स्वरूप कहा गया है।[207]

उपरोक्त साक्ष्यों में वर्णित सम्मान सूचक उपाधियों से स्पष्ट होता है कि समाज में क्षत्रियों की सामाजिक स्थिति उच्च थी तथा उन्हें सम्मानीय स्थान

प्राप्त था । ऐसा भी प्रतीत होता है कि क्षत्रिय अपने द्विजत्व के विषय में सजग थे और इससे गौरव का अनुभव करते थे ।

वर्णानुक्रम के अनुसार क्षत्रियों के लिये दण्ड विधान अन्य वर्णों की अपेक्षा अल्पतम दृष्टिगत होता है । इस संदर्भ में अलबीरूनी ने क्षत्रियों को भी वधदण्ड से मुक्त मानते हुये मत प्रतिपादित किया है, चोरी का अपराध करने पर क्षत्रियों का दाहिना हाथ, बाया पैर काट दिया जाता था जबकि अन्य वर्ण के सदस्य द्वारा चोरी का अपराध करने पर प्राणदण्ड दिया जाता था ।[208] अलबीरूनी का यह कथन बहुत रोचक है । धर्मशास्त्र परम्परा के अनुसार दण्ड व्यवस्था के असम तारतम्य में क्षत्रिय का स्थान ब्राह्मण के नीचे था । अलबीरूनी का कथन क्या यह इंगित करता है कि सामन्ती व्यवस्था में शासक वर्ग का विशेष अधिकार का क्षेत्र प्रशस्थ हो रहा था ?

क्षत्रियों को प्राप्त सामाजिक विशेषाधिकार के साथ-साथ आर्थिक विशेषाधिकार के अनेक उद्धरण साक्ष्यों में निहित है । उन्हें दान एवं उपहार ग्रहण का अधिकार प्राप्त था जो उनके आर्थिक विशेषाधिकार को इंगित करता है । लक्ष्मीधर ने देवल को उद्धृत करते हुये मत प्रस्तुत किया है, क्षत्रिय को उपहार ग्रहण का अधिकार थो ।[209] शुक्रनीतिसार में वर्णित है कि अधिकारियों को शौर्य प्रदर्शन एवं श्रेष्ठ कार्यों के लिये स्थायी तौर पर भूमिखण्ड पुरूस्कार स्वरूप दिये जाते थे ।[210] बल्लाल सेन ने दानसागर में इसी प्रकार के विचारों का समर्थन किया है ।[211] अभिलेखों में भी क्षत्रियों के उक्त विशेषाधिकार की

चर्चा मिलती है । सम्राट जयचन्द्र ने वत्सगोत्र के क्षत्रिय राउतराजधर वर्मन को कुछ गाँव दान में दिये थे ।[212] चन्देलों के एक लेख में इसी प्रकार का विवरण मिलता है । त्रैलोक्य वर्मन ने एक क्षत्रिय को मृत्युक वृत्ति भूमि निर्वाह हेतु दी थी जिसका पिता युद्ध करते हुये वीरगति को प्राप्त हुआ था ।[213] एक अन्य अभिलेख में जाडिल नाम के एक योद्धा का उल्लेख है जिसे अपने स्वामी के कार्यों की देखरेख हेतु राजा की उपाधि से विभूषित किया गया था ।[214] ग्वालियर अभिलेख में क्षत्रिय सैनिक को इस प्रकार सम्मान एवं पुरस्कार दिये जाने का प्रसंग है ।[215]

उपरोक्त क्षत्रियों के आर्थिक विशेषाधिकार एवं सामाजिक स्थिति का अवलोकन करने के उपरान्त यह कह सकते हैं; यद्यपि समाज में क्षत्रियों की अनुष्ठानिक स्थिति ब्राह्मणों से निम्न स्तर पर थी परन्तु लौकिक धरातल पर उनका मान सम्मान महत्व ब्राह्मणों से कम न था । जैसा कि एस० सी० भट्टाचार्य ने मत प्रतिपादित किया है कि प्रशासन से सम्बन्धित होने के कारण क्षत्रियों के एक वर्ग की सामाजिक आर्थिक स्थिति सामान्य सैनिक वृत्ति वाले क्षत्रिय वर्ग से अच्छी थी ।[216] अधीत काल में कुछ ऐसी ही स्थिति दृष्टिगोचर होती है । किन्तु सामान्य क्षत्रियों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति सामान्यता ब्राह्मणों से अपेक्षाकृत निम्नतर रही होगी ।

वैश्य :- वर्ण व्यवस्था के अनुष्ठानिक स्तरीकरण में वैश्यों को तृतीय स्थान प्राप्त है । मध्यकालीन कोशकारों ने वैश्यों को कई नामों से अभिहित किया

है यथा अर्या, भूमिस्पर्शः वैश्यः उख्या, उरूज,विशः ।[217] देश की आर्थिक व्यवस्था के उत्कर्ष समृद्धि एवं सम्पन्नता में वैश्य वर्ग की प्रमुख भूमिका रही है । अधीत काल में भी वे अपने पारम्परिक कार्य कृषि, पशुपालन, व्यापार, वाणिज्य से जुड़े थे ।[218] साक्ष्यों में वैश्यों के लिये श्रेष्ठि[219], सार्थवाह[220], वणिक[221], वणिज[222] वणिजक[223], अर्थपति[224] तथा पण्याश्रायिन[225], कुलिक[226] आदि संज्ञायें प्रयुक्त हुई हैं ।

वैश्यों द्वारा अपनाये जाने वाले व्यवसाय के आधार पर विद्वानों ने उन्हें कई वर्गों में विभक्त किया है । हेमचन्द ने वैश्यों के कई वर्गों का उल्लेख किया है यथा वाणिज्य, वणिक्,क्रय विक्रयिक, पण्याजीवी, आपणिक, नैगम, कृषिक तथा कृषी इत्यादि ।[227] वैजयन्ती में भी वैश्यों के वर्ग पण्याजीव , सार्थवाह, नैगम, वणिजो, वणिक्,वैदेहक, प्रापणिकः,क्रय विक्रयिक इत्यादि का उल्लेख किया गया है ।[228]

उक्त वर्गों कें अतिरिक्त पूर्वमध्यकाल में ब्राह्मण और क्षत्रिय की भांति वैश्य वर्ग का भी कई उपशाखाओं में विस्तार हुआ । हेमचन्द्र की सभाश्रृंगार में इनकी एक विस्तृत सूची मिलती है ।[229] जैन प्रशस्तिसंग्रह में भी वैश्यों की कुछ उपजातियों का उल्लेख मिलता है ।[230] अभिलेखों में ओसवाल, बघेरवाल, खण्डेलवाल, धर्कट {धामड} उकेशवंश, डीडूवंश,[231] नागर, ग्रहपति वंश[232] तथा प्राग्वाट वंश का उल्लेख है ।[233]

<u>वैश्यों का व्यवसाय :-</u> प्राचीन धर्मशास्त्रों,पुराणों में वैश्यों के सामान्य कर्म के अन्तर्गत यज्ञ, अध्ययन, दान की परिगणना की गई है । परन्तु अधीत कालीन

स्मृतियों तथा अन्य ग्रन्थों में वैश्यों के सामान्य कर्म के साथ-साथ वृत्यर्थक कर्मों में कृषि, वाणिज्य, पशुपालन की गणना की है । याज्ञवल्क्य स्मृति में कृषि वाणिज्य, पशुपालन को वैश्यों का प्रधान कर्म माना है ।[234] इसके अतिरिक्त वृहस्पति[235] और विष्णु स्मृति[236] में भी इस प्रकार के विचार का समर्थन किया गया है । कामन्दकनीतिसार में भी पशुपालन, कृषि, व्यापार को ही वैश्यों की जीविका का साधन स्वीकार किया गया है ।[237] शुक्रनीतिसार में पशुरक्षा, कृषि, वाणिज्य को वैश्यों की वृत्ति बतायी गई है ।[238] वैजयन्तीकोष में भी कृषि,वाणिज्य पशुपालन को वैश्यों की वृत्ति स्वीकार की गई है ।[239]

वैश्यों के वृत्यर्थक कर्मों की समीक्षा करने से यह स्पष्ट होता है कि आलोच्यकाल में कृषि, वाणिज्य और पशुपालन समानरूप से वैश्यों की जीविका के साधन थे । परन्तु कतिपय साक्ष्यों में वैश्य वर्ण द्वारा अन्यान्य व्यवसाय अपनाये जाने के भी संकेत मिलते हैं ।

जैसा कि बोधायन धर्मसूत्र तथा गौतम धर्मसूत्र में वर्णित है कि ब्राह्मण और वर्ण रक्षा के लिये वैश्य भी शस्त्र ग्रहण कर सकता था ।[240] जबकि युद्ध कर्म, सैनिक वृत्ति तथा प्रशासन क्षत्रिय वृत्त कर्म था । मध्यकालीन व्यवस्थाकार कुल्लूक ने वैश्यों को आपद काल में क्षत्रिय वृत्ति का अधिकारी बताया है ।[241] प्रबन्धचिन्तामणि में जम्ब नामक व्यापारी के प्रधानमंत्री होने का उल्लेख है ।[242] सोमदेव ने ब्राह्मिण क्षत्रिय के बाद अर्हता संपन्न वैश्य को मंत्री बनाने की आज्ञा दी है ।[243] राज - स्थान से प्राप्त एक मध्ययुगीन लेख में ओसवाल जाति वैश्य के अमात्य होने की सूचना है ।[244] कुमारपालचरित में राजनीतिज्ञ शूरवीर महामात्य वाग्भट्ट जाति

से वणिक् थे ।[245] वैश्य जातीय वस्तुपाल और यशोवीर जालौर के शासक उदयसिंह के प्रमुख मन्त्रदाता थे ।[246] इसी प्रकार नाडोल के कटुकदेव का बलाधिप यशोदेव वैश्य जाति का था ।[247] वैश्यों का एक वर्ग सैनिक वृत्ति के अतिरिक्त शिल्प कर्म में प्रवृत्त था । विष्णु पुराण में उल्लेख है कि वैश्य व्यापार और कृषि त्याग कर शिल्प कार्य (कारू कर्म) से जीविकोपार्जन करने लगे ।[248] माधवाचार्य ने वैश्यों के लिए रत्नमणि, मुक्तादि का परीक्षण और व्यापार, गोपालन, कृषि कर्म, भूमिकर्षण, बीजवपन, धान्यादि का वाणिज्य और कुसीद कर्म कहा है ।[249] इसके अतिरिक्त अभिलेखों में उल्लिखित विभिन्न शिल्प समुदाय यथा स्वर्णकार,[250] लोहकार,[251] काष्ठकार,[252] कुम्भकार,[253] कास्यकार,[254] इत्यादि वैश्यों के शिल्प कर्म में प्रवृत्त होने के पक्ष का समर्थन करते हैं । इब्न - खुर्दाब्दा और अल-इदरीसी ने बसुरिया (वैश्य) का उल्लेख किया है तथा बसुरिया को घरेलू काम करने वाला तथा कारीगर बताया है ।[254अ]

वैश्यों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति :- सामान्य रूप से इस युग के कुछ साक्ष्यों में वैश्यों की अवनत सामाजिक, धार्मिक दशा का आभास मिलता है । इस संदर्भ में पूर्वमध्यकालीन साक्ष्यों के आलोक में कतिपय विद्वानों ने अल्तेकर, धुर्ये, आर0 एस0 शर्मा ने भी विचार व्यक्त किया है कि वैश्यों की स्थिति अपेक्षाकृत निम्न हो गई थी और वे शूद्रों के समकक्ष हो गये थे ।[255] ब्रह्मपुराण में कहा गया है कि दक्षकृत स्त्रोत पाठ सुनने से वैश्य स्त्री तथा शूद्र शूद्रलोक को प्राप्त करेंगे ।[256] हेमाद्रि ने शूद्र के समान वैश्य का भोजन भी ब्राह्मण के लिए निषिद्ध

बताया है ।[257] कुल्लूक भट्ट ने शास्त्रानुसार आचरण करने वाले द्विजाति की सेवा करने वाले शूद्र को वैश्य के समान मृतसूतक आदि कर्मों में शौच कर्मादि का अधिकार प्रदान किया है ।[258] अलबीरूनी ने भी वैश्यों और शूद्र को एक ही श्रेणी में स्वीकार करते हुये लिखा है। दोनों को वेदाध्ययन निषिद्ध था। इसका उल्लंघन करने पर उन्हें सामान्य रूप से दण्डित किया जाता था तथा उनकी जीभ काट दी जाती थी ।[259] उपरोक्त उद्धरण वैश्यों की ह्रासोन्मुख स्थिति के परिचायक है । विष्णु रहस्य में वैश्य को जघन्य कर्म करने वाला कहा गया है ।[260] हेमाद्रि ने स्वर्णकार, ध्वजी (शरपब विक्रेता व निर्माता) को अन्त्यजों में गणना की है ।[261]

इस प्रकार उपरोक्त विवरण से ज्ञात होता है कि निश्चय ही वैश्य वर्ग की शास्त्रीय स्थिति पतनोन्मुख थी । परन्तु जहाँ तक आर्थिक समृद्धि का प्रश्न है, ऐसा प्रतीत होता है कि वैश्य वर्ग विभिन्न उद्योगों एवं व्यवसाय में रत थे : और आर्थिक धरातल पर उनकी स्थिति सुदृढ़ प्रतीत होती है जिसका प्रमाण हमें अभिलेखों में वर्णित प्रसंगों से मिलता है । सियादोनी अभिलेख में बन्धुनाम के एक वणिक् द्वारा विष्णु मंदिर बनवाये जाने का उल्लेख है ।[262] इसी अभिलेख में तैलिकों द्वारा प्रत्येक तैल मिल से एक पलिका तेल दिये जाने का भी प्रसंग है ।[263] ग्वालियर अभिलेख में तैलिक एवं मालाकारों द्वारा दीप हेतु तेल और माला दिये जाने का विवरण है ।[264] 951-52 के एक अभिलेख में चतुर्थ कृष्ण के समय में धारवार जिले में 50 महाजनों की सहमति से 12 मतर जमीन, मठ और शैक्षणिक

प्रयोजन के लिये दान की गयी थी ।[265] चाहमानों के एक लेख से विदित है कि महाजन नामक एक श्रेष्ठि ने जैन तीर्थंकर के रथयात्रोत्सव पर कर दिया था ।[266] प्रस्तुत कथन की पुष्टि गिरियम मूर्तिलेख से भी होती है, प्रस्तुत लेख में मथुरा के दो व्यापारी साधुसिरिकर और साधु गोमत द्वारा क्षपणक् की मूर्ति उपहार में दी गई थी ।[267]

शुद्र वर्ण :- शुद्रों के उत्पत्ति विषयक धर्मशास्त्रीय दृष्टिकोण से स्पष्ट है कि शुद्र वर्ण भारतीय समाज का चतुर्थ और निम्नतम् अंग था । श्रम साध्य कार्यों और द्विज वर्णों की सेवा-सुश्रुषा से सम्बन्धित होने के कारण समाज में इनकी एक पृथक ईकाई थी । जिन्हें शास्त्रीय तथा अनुष्ठानिक धरातल पर अंतिम स्थान प्राप्त था । पूर्व मध्य कालीन साक्ष्यों में शुद्रों की इसी प्रकार की स्थिति का संकेत मिलता है । समराइच्चकहा में शुद्रों की गणना आर्य जातियों में चतुर्थ एवं निम्नश्रेणी में की गई है ।[268] हेमचन्द्र ने शुद्रों को कई उपनामों से अभिहित किया है यथा अन्त्यज, वृषल,पद्य, पंज तथा जघन्य जिससे उनकी निम्न स्थिति का ज्ञान होता है ।[269] यशस्तिलकमें शुद्र के लिये अन्त्यज, पामर शब्द का प्रयोग किया गया है ।[270]

उपरोक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि पूर्वमध्य कालीन सामाजिक अनुक्रम में शुद्रों की स्थिति निम्नवत् प्रतीत होती है तथा उनकी गणना निम्नवर्ग के अन्तर्गत की गई है ।

व्यवसाय :- धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों में द्विजों की सेवा-सुश्रूषा ही शूद्रों का प्रधान कर्म विहित किया है ।[271] मिताक्षरा में भी द्विजों की सेवा ही शूद्रों का प्रधान कर्म बताया गया है ।[272] मनुस्मृति के टीकाकार भारुचि ने इस प्रकार के विचारों का अनुमोदन किया है ।[273] कामन्दकीय नीतिसार में क्रमानुसार द्विजवर्गों की धर्म पूर्वक सेवा करना ही शूद्रों का कर्त्तव्य विहित है ।[274] इसी प्रकार शुक्रनीतिसार में शूद्रों को द्विजों की सेवा अर्चना में रत बताया है ।[275]

परन्तु समय के अन्तराल के साथ निश्चय ही शूद्रों की स्थिति और वृत्यर्थ कर्मों में सुधार दृष्टिगत होता है तथा वे अपने पारम्परिक कार्यों से हटकर अन्यान्य व्यवसाय द्वारा भी जीविकोपार्जन की ओर उन्मुख हो रहे थे । जिसका संकेत हमें आलोच्य कालीन साक्ष्यों में प्राप्त होता है । विवेच्य कालीन शास्त्र - कारों ने सामान्य कर्मों के साथ वृत्यर्थक कर्म के अन्तर्गत कृषि, व्यापार, शिल्प तथा अन्य कार्यों की मान्यता दी है ।[276]

अधीत काल में शूद्रों का एक वर्ग कृषक वर्ग के रूप में परिलक्षित होता है । वृद्धहारित ने शूद्रों के लिये कृषि कार्य का अनुमोदन किया है ।[277] पराशर शूद्रों के कृषक होने का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं ।[278] नारद स्मृति के भाष्यकार असहाय (आठवीं शताब्दी) ने कीनाश शब्द का तात्पर्य शूद्र बताया है । उक्त कथन से शूद्रों के कृषक होने का कथन और स्पष्ट होता है ।[279] आचार्य शुक्र ने शूद्रों द्वारा कृषि किये जाने के संदर्भ में मत प्रस्तुत किया है कि शूद्र 4 बैलों और एक हल के साथ कृषि कार्य कर सकता है ।[280] लक्ष्मीधर ने शूद्रों को प्राप्त कृषि

कर्म के अधिकार के समर्थन में नरसिंह पुराण का साक्ष्य प्रस्तुत किया है ।[281] पराशर माधवी से शूद्रों के वाणिज्य और शिल्प के साथ ही कृषि कर्म के अधिकारी होने की पुष्टि होती है ।[282] ह्वेनसांग ने शूद्रों को कृषक वर्ग के रूप में वर्णित किया; ये जोताई बोआई का कार्य करते थे ।[283] इब्नखुर्दाब्बा ने भी इसी प्रकार के विचारों का समर्थन किया है ।[284]

कृषि के अतिरिक्त शूद्रों द्वारा व्यापार, उद्योग एवं विविध प्रकार के शिल्प को वृत्ति के रूप में ग्रहण करने के प्रमाण हमें पूर्वमध्यकालीन साक्ष्यों में प्राप्त होते हैं । याज्ञवल्क्य ने मनु के प्राचीन विचारों को उद्धृत करते हुये मत दिया है, यदि शूद्र द्विजों की सेवा धर्म से अपनी जीविका चलाने में असमर्थ हो तो वह शिल्प तथा अन्य भृति का आश्रय ले सकता है ।[285] मनु - स्मृति के टीकाकार भारूचि ने भी शिल्पवृत्ति को शूद्रों की आपद् कालीन वृत्ति स्वीकार की है ।[286] विज्ञानेश्वर ने उन्हें द्विज सुश्रूषा से जीविका न चलने पर वणिक्वृत्ति तथा शिल्प कार्य करने का निर्देश दिया है ।[287] पराशर ने नमक, मधु, मद्य, मट्ठा, दही, घी, दूध आदि का विक्रय करने की स्वतन्त्रता दी है ।[288] देवल ने कृषि कर्म, पशुपालन, भारवाहन, पण्यव्यवहार तथा नृत्य, गीत, वीणा, मृदंग, वादन आदि कार्यों की आज्ञा दी है ।[289] उपरोक्त साक्ष्यों के अतिरिक्त अभिधान चिंतामणि में विभिन्न व्यवसाय और शिल्प में संलग्न शूद्रों की विस्तृत सूची प्राप्त होती है ।[290] अत्रि संहिता में शूद्र का कार्य वार्ता और कारूकर्म विहित किया गया है ।[291] शंख ने सभी

शिल्पादि कर्मों पर शूद्रों के अधिकार की पुष्टि की है ।[292]

उपरोक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि लगभग सभी मध्यकालीन शास्त्रकारों ने शूद्रों को कृषि, व्यापार, वाणिज्य तथा शिल्प कर्म की अनुज्ञा प्रदान की है जिससे शूद्रों की परिवर्तित आर्थिक स्थिति का अनुमान स्वतः लगाया जा सकता है ।

अधीत कालीन कतिपय साक्ष्यों मे शूद्रों द्वारा क्षत्रिय वृत्ति ग्रहण किये जाने के संदर्भ में उदाहरण प्राप्त होते हैं । जिससे शूद्र सैनिक वर्ग का संकेत मिलता है । नारद स्मृति में शूद्रों द्वारा सैनिक वृत्ति अपनाने का विधान किया गया है ।[293] इस युग के कई शास्त्रकारों ने नारद को उद्धृत कर इन्हीं विचारों का समर्थन किया है । कुल्लूक ने शूद्र द्वारा आपद्काल में क्षत्रिय-वृत्ति ग्रहण करने का अनुमोदन किया है ।[294] देवन्न भट्ट ने भी इस संदर्भ में नारद को उद्धृत करते हुये शूद्रों को वैश्य और क्षत्रिय वृत्ति अपनाने का निर्देश दिया है ।[295] विज्ञानेश्वर और अपरार्क ने भी उपरोक्त कथन का समर्थन करते हुये नारद को उद्धृत किया है ।[296] राजतरंगिणी में चाण्डाल द्वारा क्षत्रिय वृत्ति ग्रहण का प्रमाण मिलता है ।[297]

अभिलेखीय साक्ष्यों द्वारा भी शूद्रों के सैनिक वृत्ति में रत होने की पुष्टि होती है । दक्षिण भारत से प्राप्त बुद्धराज का सन्दावोलू अभिलेख में शूद्र वर्ण से सम्बन्धित बुद्धवर्मन नामक सैनिक का उल्लेख है जिसने 62 गाँव से युक्त पश्चिमी पर्वतीय क्षेत्र पर स्थित देश की रक्षा की थी । जिसके उपलक्ष्य में उसे

राजा द्वारा राजकीय उपधि प्राप्त हुई थी ।[298] चोल सम्राट कुलतुंग प्रथम कालीन द्रहरामा अभिलेख में शूद्र परिवार से सम्बन्धित उच्च सैन्य अधिकारी का उल्लेख है ।[299]

पूर्वमध्यकालीन साक्ष्यों में अनुमोदित शूद्रों के विभिन्न व्यवसायिक पक्षों पर समीक्षात्मक अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि इस काल में शूद्रों का एक व्यापक समुदाय समाज में विद्यमान था जिसके अन्तर्गत कृषक, शिल्पी, कारूकार, खेतिहर मजदूर तथा वणिक एवं सैनिक इत्यादि के रूप में शूद्रों ने अपनी पहचान बना ली थी । प्रस्तुत संदर्भ में बी0 एन0 एस0 यादव ने मत प्रतिपादित किया है कि शूद्र एक अभिच्छिन्न जाति के रूप में नहीं अपितु एक विभिन्नांगी जाति के रूप में सामने आये जिसमें शिल्पी, कृषक, सामान्य श्रमिक, श्रमिक, नौकर, सहायक तथा निम्नकोटि के व्यवसायरत कई वर्ग सम्मिलित हुये ।[300] यह स्पष्ट है कि इस काल में सबसे अधिक संख्या शूद्रों की थी । शूद्र वर्ण अनेक जातियों तथा उपजातियों में विभाजित थे । आर0 एस0 शर्मा ने शूद्रों के विस्तृत समुदाय का पक्ष लेते हुये मत दिया है कि पूर्वमध्यकाल में जातियों की सबसे अधिक संख्या शूद्रों में थी ।[301] ब्रह्मावर्त पुराण में शूद्रों की जातियों की संख्या सौ से अधिक मानी गई है ।[302] सभाश्रृंगार में भी इनकी संख्या सौ से अधिक स्वीकार की गई है ।[303] यादव प्रकाश की वैजयन्ती[304] और हेमचन्द्र की अभिधानचिंतामणि में शूद्र जातियों की विस्तृत सूची प्राप्त होती है जिससे उनकी संख्या में भारी वृद्धि का अनुमान लगाया जा सकता है ।[305]

<u>शूद्रों की सामाजिक आर्थिक स्थिति :-</u> जहाँ तक शूद्रों की स्थिति का प्रश्न है, ऐसा प्रतीत होता है कि आलोच्य कालीन परिवर्तित परिस्थितियों में शूद्रों की सामाजिक,आर्थिक स्थिति में सुधार दृष्टिगत होता है । विवेच्य युगीन चिन्तकों ने शूद्रों को समाज की महत्वपूर्ण इकाई मानते हुये उनके शिक्षा-ज्ञान, संस्कार, धार्मिक अधिकारों की भी विवेचना प्रस्तुत की है । जिससे उनकी उर्ध्वमुखी सामाजिक स्थिति का आभास होता है ।

<u>धार्मिक स्थिति :-</u> अधीत कालीन साक्ष्यों में शूद्रों द्वारा धार्मिक कृत्य एवं संस्कार किये जाने का प्रमाण प्राप्त होता है । व्यास के अनुसार शूद्र भी चतुर्थ वर्ण होने के कारण वेद मन्त्र, स्वधा और षटकार के बिना धर्म के योग्य होता है ।[306] विज्ञानेश्वर का यह आशय है कि बिना मन्त्रों के शूद्र भी संस्कारों का अधिकारी है ।[307] वृहस्पति स्मृति में उनके द्वारा संस्कार सम्पादन के संदर्भ में उल्लिखित है कि शूद्र बाल्यावस्था में कम से कम दो संस्कारों कर्णविध और चूड़ाकरण के अधिकारी थे ।[308] हरदत्त के गृह्यकार को उद्धृत कर शूद्रों को बिना वैदिक मंत्र के पुंसवन, सीमतोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन आदि संस्कारों का अधिकारी माना ।[309] वेद व्यास ने शूद्रों के लिए दस संस्कार बताए हैं ।[310]

संस्कारों के साथ इस काल के ग्रन्थों में शूद्रों के धार्मिक कृत्यों की चर्चा हुई है । मेधातिथि ने शूद्र को वैवाहिकाग्नि के प्रयोग और पाकयज्ञ का अधिकार प्रदान करते हुये यह कहा है कि इसमें जाति का प्रश्न नहीं है ।[311] भारुचि ने भी शूद्रों

द्वारा मंत्र विहीन पंचमहायज्ञों का विधान किया है ।[312] कुल्लूक ने याज्ञवल्क्य को उद्धृत कर शूद्र को नमस्कार मन्त्र से पंचमहायज्ञ का अधिकारी माना है ।[313] माधवाचार्य ने भी शूद्र के लिए पंचमहायज्ञ, पाकयज्ञ और पितृकर्म का विधान किया है ।[314] मेधातिथि ने शूद्रों द्वारा बिना मन्त्र, व्रत, उपवास, पूजा व दान की चर्चा की है ।[315] विज्ञानेश्वर ने भी मनु को उद्धृत कर ब्राह्मण के माध्यम से प्रायश्चित व्रत करने का अधिकार स्वीकार किया है ।[316] मेधातिथि ने जो शूद्र आचार्य से व्याकरण आदि शास्त्र पढ़ने अथवा शूद्र को व्याकरण आदि की शिक्षा देने का मत किया है।[अ] कृत्यकल्पतरु और देवी पुराण में चारों वर्णों को सुख की इच्छा से विष्णु की स्थापना का निर्देश है ।[317] भविष्य पुराण तथा स्कन्द पुराण में शूद्रों को विष्णु और शंकर की पूजा का अधिकार प्रदान किया है, परन्तु स्पर्श करने का नहीं ।[318] वृद्धहारित स्मृति में रुद्र की अर्चना, त्रिमुण्ड धारण करने का विधान शूद्रों के लिये बताया गया है ।[319] कहीं-कहीं उच्च कोटि के शूद्र मंदिर की व्यवस्था समिति के सदस्य भी थे ।[320]

धार्मिक कृत्यों के साथ शूद्रों द्वारा विद्याज्ञान प्राप्त करने को भी प्रमाण हमें मध्यकालीन साक्ष्यों में प्राप्त होते हैं । शास्त्रकार मेधातिथि ने शूद्र के आचार्य, अध्यापक होने का समर्थन किया है ।[321] अपरार्क ने एक स्थल पर कहा है कि उत्कृष्ट गुण विद्या से युक्त हीन जाति कला भी उत्कृष्ट जाति की अपेक्षा मान्य है ।[322] वृहदधर्म पुराण में वर्णित है कि शूद्र व्याकरण और दूसरे शास्त्र की शिक्षा देते थे और यहाँ कि पुराणों का अध्ययन एवं अर्थ का वर्णन भी करते थे ।[323]

परवर्ती काल के चित्तौड़ से प्राप्त एक अभिलेख में शिल्पकार लाषा को "सकल वास्तुशास्त्र विशारद" कहा गया है ।[324] इसी प्रकार माचोक नामक एक शिल्पकार को आचार्य और कलियुग का विश्वकर्मा कहा गया है ।[325] सेवाड़ी लेख (1115 ई०) में शिल्पकार बाहड़ को शिल्पशास्त्र का ज्ञाता विवृत किया गया है और उसके पुत्र शिल्पकार थल्लक को शासक कटुकराज द्वारा प्रति वर्ष 8 द्रम दिये जाने का उल्लेख है ।[326] इसके अतिरिक्त कतिपय साक्ष्यों में शूद्रों के महत्वपूर्ण उच्च प्रशासनिक पदों पर नियुक्त होने के प्रमाण मिलते हैं । चौलुक्य नरेश कुमारपाल ने सज्जन नामक कुम्हार को चित्तौड़ का प्रशासक नियुक्त किया था ।[327] उक्त कथन के संदर्भ में राजतरंगिणी में कई उदाहरण प्राप्त होते हैं । कलवार जाति के उत्पलक द्वारा बारह वर्ष और उसके बाद तक काश्मीर की राजनीति के खुले रूप से संचालन का उल्लेख है ।[328] इसी ग्रन्थ में एक अन्य स्थल पर कुछ श्वपाकों के द्वारा नीतिज्ञ मन्त्रियों की भाँति राजकार्य की सूचना दिये जाने का उल्लेख है ।[329] इसके अतिरिक्त चमक नामक एक चारण और तान्त्रिक क्रिया के ज्ञाता राजा कलश का सामीप्य प्राप्त कर मन्त्रि मंडल में स्थान और ठक्कुर की पदवी प्राप्त की थी ।[330]

इस प्रकार उपरोक्त तथ्यों से यह प्रमाणित होता है कि शूद्रों की सामाजिक स्थिति उन्नति की ओर अग्रसर हो रही थी ।

पूर्वमध्यकालीन साक्ष्यों में शूद्रों की आजीविका के सम्बन्ध में आर्थिक अधिकारों का जो विस्तार दृष्टिगत होता है उससे स्पष्ट है कि

वाणिज्य, शिल्पकर्म तथा कृषि में रत होने के कारण शूद्रों का आर्थिक धरातल सामान्य वैश्यों के समकक्ष हो रहा था । इस युग की प्रारम्भिक पराशर स्मृति में सामान्यत: वैश्य तथा शूद्र दोनों के लिये कृषि, व्यापार तथा शिल्प कार्य करने का निर्देश है ।[331] कुल्लूक भट्ट ने भी वैश्य को शूद्रों के समान मृत-सतक आदि कर्मों में शौच कर्मादि का उल्लेख किया है ।[332] विज्ञानेश्वर ने भी शूद्रों को वणिक्-वृत्ति तथा शिल्प कर्म करने का निर्देश दिया है ।[333] मेधातिथि ने माना है कि यदि शूद्र धनवान है तो उसे ब्राह्मणादि का आश्रित न हो कर स्वतन्त्र जीवन यापन का अधिकारी है ।[334] प्रस्तुत संदर्भ में अलबीरूनी ने दोनों वर्ण के लिये समान दण्ड का विधान प्रस्तुत किया है ।[335] वृहत्हारीत ने शूद्रों के लिये वैश्य वृत्ति अपनाने का अनुमोदन किया है ।[336] उपरोक्त उद्धरण से शूद्रों की उत्कर्ष आर्थिक स्थिति के चिंह परिलक्षित होते हैं तथा यह भी स्पष्ट है कि शूद्रों का एक वर्ग निश्चित रूप से सामान्य रूप से वैश्यों के समकक्ष हो गया था जिससे उनकी उर्ध्वमुखी आर्थिक स्थिति का संकेत मिलता है । यद्यपि प्राचीन ग्रन्थों में शूद्रों को धनसंचय तथा सम्पत्ति रखने के अधिकार से वंचित माना है ।[337] वहीं अधीत कालीन मनु के ही भाष्यकार मेधातिथि ने शूद्रों का सम्पत्ति संग्रह एवं धनसंचय के अधिकार का समर्थन किया है तथा यह भी विचार प्रस्तुत किया है कि शूद्र उच्च वर्णों की सेवा से स्वतन्त्र हैं और व्यक्तिगत रूप में सम्पत्ति रखने की अधिकारी हैं ।[338]

शूद्र द्वारा दान देने की अधिकांश शास्त्रकारों ने चर्चा की है ।[339] अपरार्क और लक्ष्मीधर ने नृसिंह पुराण को उद्धृत कर बिना याचना शूद्र का दान ग्रहण करने की चर्चा की है ।[340] अन्त्यजों के पात्र में जलादि ग्रहण करने पर प्रायश्चित्त स्वरूप उपवास और यथाशक्ति दान का शूद्र को पराशर ने निर्देश दिया है ।[341] पुराणों ने भी शूद्रों को दान देने का अधिकार प्रदान किया है ।[342] इस परिप्रेक्ष्य में अर्थसम्पन्न शूद्र द्वारा धार्मिक गतिविधियों में भाग लेने तथा दान देने के उदाहरण अभिलेखों में प्राप्त होते हैं । खलारी अभिलेख में देवपाल नामक एक मोची द्वारा मन्दिर निर्माण की सूचना मिलती है । प्रस्तुत अभिलेख में उसे विभिन्न धार्मिक कार्यों का अभिलाषी कहा गया है ।[343] एक अभिलेख में गड़ेरिये द्वारा मन्दिर निर्माण की सूचना मिलती है ।[344] सारणेश्वर प्रशस्ति में मिष्ठान विक्रेता {हलवाई} द्वारा मंदिर को एक घड़िया दूध दिये जाने का उल्लेख है ।[345] परमार वंशीय उदयादित्य कालीन झालरापाटन प्रस्तर अभिलेख में तैलिक वंश में उत्पन्न पटेल वाहिल के पुत्र पटेल जन्नक के द्वारा भगवान शंभु का मंदिर बनवाये जाने का प्रसंग मिलता है ।[346] इसी लेख में उसी के द्वारा कूपिका और बावड़ी बनवाने का उल्लेख है ।[347]

मिश्रित जातियाँ अथवा निम्न व्यवसाय प्रधान जातियाँ :- प्राचीन धर्म सूत्रों एवं स्मृति ग्रन्थों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि चातुर्वर्ण्य के अतिरिक्त समाज में अनेकानेक मिश्रित जातियाँ भी विद्यमान थीं ।[348] पूर्वमध्य युगीन धर्म शास्त्रों में भी सामाजिक धरातल पर निरन्तर बढ़ती वर्णसंकर जातियों का उल्लेख किया

गया है ।[349] विभिन्न मिश्रित जातियों की उत्पत्ति के संदर्भ में शास्त्रकारों का विचार है कि बहुसंख्यक विभिन्न जातियाँ अनुलोम-प्रतिलोम जैसे अन्तर्जातीय विवाह के परिणाम स्वरूप उत्पन्न हुई । वृहस्पति ने उक्त कथन का समर्थन करते हुये अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाह को ही वर्ण संकरता का कारण माना है ।[350] मेधातिथि ने भी अनुलोम प्रतिलोम जातियों के शनैः शनैः प्रगुणन से अनेक वर्णसंकर जातियों की उत्पत्ति की चर्चा की है । तथा यह भी कहा है कि इस प्रकार वर्णसंकर जातियों के परस्पर संयोग से अनन्त भेद होते हैं ।[351] माधवाचार्य ने मत प्रस्तुत किया है कि अनुलोम तथा प्रतिलोम वर्णों के परस्पर संयोग से श्वपाक, पुक्कस, पुक्कुट आदि अनेक प्रकार की जातियाँ उत्पन्न हुई ।[352]

आलोच्य कालीन साहित्यिक एवं अभिलेखीय साक्ष्यों में मिश्रित जातियों एवं निम्न व्यवसाय प्रधान जातियों का विस्तृत उल्लेख मिलता है । कुल्लूक ने वर्ण संकरता के निरन्तर प्रगुणन से 64 जातियों की चर्चा की ।[353] वैजयन्ती में वर्णसंकर जातियों की संख्या 64 कही गई है ।[354] माधवाचार्य ने प्रतिलोम और अनुलोम वर्णों से 60 जातियाँ और उनसे अनन्त जातियाँ उत्पन्न हुई । जैसे, मूर्धाविषिक्त, अम्बष्ठ, निषाद, महिष्य, उग्र,सूत, वैदेहक इत्यादि ।[355] अभिधान चिन्तामणि में वर्णसंकर जातियों की सूची प्राप्त होती है यथा मूर्धाविसिक्तः, अम्बष्ठः, पाराशवः, निषादश्च, महिष्य, उग्रः, करण, आयोगपः, क्षता, चण्डाल, मागधः, वैदेहक, सूतः तक्षा इत्यादि ।[356] आचार्य शुक्र का मत है कि वर्णसंकर जातियों की संख्या वर्णन से परे हैं ।[357] सभाश्रृंगार में इनकी संख्या 100 से अधिक वर्णित की गई है ।[358]

उपरोक्त साक्ष्यों के अनुशीलन से ऐसा ज्ञात होता है, इस काल में मिश्रित जातियाँ एवं निम्न व्यवसाय प्रधान जातियों में पर्याप्त वृद्धि दृष्टिगत होती है। कतिपय साक्ष्यों में इन्हें वर्गों में भी विभाजित कर इनकी सूची प्रस्तुत की गई है। अलबीरूनी ने इन्हें दो वर्गों में विभाजित किया है प्रथम वर्ग के अन्तर्गत चर्मकार, डलिया बनाने वाले, पाल से जहाज चलाने वाले, मछुआरे, शिकारी, बुनकर, द्वितीय वर्ग में हाड़ी डोम, चाण्डाल, बधर्तों की गणना की है।[359] इसके अतिरिक्त वृहद्धर्म पुराण में मिश्रित तथा निम्न व्यवसाय प्रधान जातियों की परिगणना उत्तम, मध्यम, अधम उक्त तीन वर्णों में प्रस्तुत की गई है। (1) उत्तम कोटि के अन्तर्गत उच्चकोटि की जातियाँ सम्मिलित थी। यथा - (1) करण (लिपिक) अम्बष्ट (वैद्य) (3) उग्र (सैनिक वृत्ति प्रधान क्षत्रिय वर्ग) (4) मागध (दूत, भाट, चारण) (5) तन्तुवाय (बुनकर) (6) गांधिक (सुगन्धित पय विक्रयी) (7) नापित (नाई) (8) गोप (लेखक) (9) लोहकार (10) तैलिक (11) कुम्भकार (12) कांस्यकार (13) शंखिका (14) दास, कृषक (15) वारजीवि (16) मोदक (मीठा सांस विक्रेता) (17) मालाकर (पुष्पविक्रेयी) (18) सूत, बढ़ई (19) राजपुत्र (राजपूत) (20) ताम्बोली। मध्यम वर्ग के अन्तर्गत जातियों एवं वर्गों का उल्लेख निम्नवत है। (1) तक्षण (बढ़ई) (2) रजक (3) सुवर्णकार (4) आभीर (गड़ेरिया) (5) तैल कारक (6) धीपर (मधुहारे) (7) शौण्डिक (मद्य विक्रेता) (3) नट (9) शावाक (10) सेखरा (11) जलिका (12) रजत कार अधम वर्ग के अन्तर्गत निम्न संस्कार युक्त जातियाँ सम्मिलित थी जिनका उल्लेख इस प्रकार है -

(1) मलेग्राही (जमादार) (2) कुड्डव (नाविक) (3) चाण्डाल (4) वरूद (5) तक्षकार (6) चर्मकार (7) धण्ड या घट्टजीवि (आधुनिक पटनी जाति) (8) डोलावाही (पालकी वाले) (9) मल्ल[360]

उपरोक्त सूची में वर्णित मिश्रित जातियों के अतिरिक्त समाज में और भी कुछ जातियाँ विद्यमान थीं उनमें कतिपय प्रमुख जातियों का विवरण इस प्रकार है - पुलिन्दा, पुक्कश, खस, यवन, सुहास, कम्बोज, शवर, खरस इत्यादि ।

इस प्रकार वृहद्धर्म पुराण में प्रतिपादित उक्त सूची का उल्लेख आर0 सी0 मजूमदार, हाजरा निहरंजन राय तथा बी0 एन0 एस0 यादव इत्यादि विद्वानों ने भी स्वीकार किया है ।

प्रस्तुत संदर्भ में साहित्यिक साक्ष्यों की श्रृंखला में अभिलेखीय प्रमाण भी विशेष रूप से प्रसंगित है । दसवीं शताब्दी के बंगाल से प्राप्त एक ताम्रपत्र लेख में "वृहत्छतिवन्ना" नामक गाँव का उल्लेख है जिसमें छत्तीस वर्ण के लोग निवास करते थे ।[361] नारायण पाल देव का भागलपुर ताम्रपत्र लेख में मेद, आन्ध्र, चाण्डाल आदि मिश्रित जातियों का उल्लेख है ।[362] महिपाल का वानगड दानपत्र अभिलेख में इसी प्रकार की विभिन्न जातियों का विवरण है ।[363] उड़ीसा से प्राप्त अनंग - भीम तृतीय का नागरी ताम्रपत्र अभिलेख में गन्धिक, शांगिक, पाटकार, स्वर्णकार, कांस्यिका, गोपाल, तन्तुवाय, तैलिक, कुम्भकार, कैवर्त, नापित, रजक इत्यादि जातियों का उल्लेख है ।[364] एक अन्य अभिलेख में भी नापित, महर, मेद, धीवर, चाडाल इत्यादि निम्न जातियों का संदर्भ है ।[365]

इस प्रकार प्रजातीय भेदों और सामाजिक अन्तरता के कारण समाज में इनकी संख्या में निरन्तर वृद्धि होती गई और एक विशाल वर्ग के रूप में संगठित हो गई जो कालान्तर में पृथक-पृथक जाति के रूप में प्रकट हुई । ऐसा प्रतीत होता है कि मिश्रित जातियां अधिकतर अछूत जातियां, पिछड़ी जनजातियां थीं। ये जातियां सामान्यतया गांव के बाहर निवास करती थीं ।[366] सामाजिक अनुक्रम में इन्हें निम्नतम श्रेणी में ही नहीं रखा गया है वरन इन्हें अस्पृश्य भी माना है ।

1- चट्टोपाध्याय, बी0 डी0 , ट्रेड एण्ड अरबन सेन्टरस इन अर्ली मीडिवल नार्थ इण्डिया, इण्डि0 हिस्टो0 रिव्यू0, जिल्द 1, न0 1974, पृ0 203-219.

1अ. वर्णजाति व्यवस्था के सामान्य इतिहास हेतु देखिये - हट्टन, कास्ट इन इण्डिया ; जी0 एस0 घुर्ये, कास्ट क्लासेज एण्ड आँक्युपेशन; दत्ता, एन0 के0, ओरिजन एण्ड ग्रोथ आफ कास्ट इन इण्डिया ।

2. हेमचन्द्र कृत अभिधान चिन्तामणि, काण्ड तृतीय श्लोक 571 ; यादव, प्रकाश कृत वैजयन्ती कोश ।

3. कामन्दक कृत कामन्दकीय नीतिसार, सर्ग - 2, श्लोक , 19 - 21

4. शुक्राचार्य कृत शुक्रनीतिसार, अध्याय - 1 , श्लोक - 40, 41, 42, 43 यद्यपि कि इस ग्रन्थ में पूर्व मध्यकालीन सामाजार्थिक तत्व पाए जाते हैं परन्तु इसके काल के विषय में विद्वानों में मतभेद है । एल0 गोपालन ने इसका प्रणयन 19 वीं शताब्दी स्वीकार किया है परन्तु अधिकांश विद्वानों ने पूर्वमध्यकालीन कृति माना है ।

5. मिश्र जयशंकर , ग्यारहवीं सदी का भारत, पृ0 98

6. वार्टर्स टी, पृ0 168

7. देखिये, भट्टाचार्य एस0 सी, समआस्पेक्ट आफ इण्डियन सोसायटी ।

8. शुक्रनीतिसार, अध्याय - 4, श्लोक - 19-20; लक्ष्मीधर कृत, कृत्यकल्पतरू, गृहस्थ काण्ड, पृ0 194-95; जिनेश्वरसूरि कृत कथाकोशप्रकरण, पृ0 120 ; पुरि, बी0 एन0 , दि गुर्जर प्रतिहार, पृ0 133

9• सम्पादन साचाओ, अल्बेरूनीज इण्डिया, भाग 2, पृ0 132; क्षेमेन्द्र कृत दशावतारचरित, पृ0 160; एपि0 इण्डि0, भाग 1, पृ0 184, एपि0 इण्डि0, भाग 1, पृ0 173 एफ0 एफ0

10• एपि0 इण्डि0, भाग 1, पृ0 154 एफ ; शुक्रनीतिसार, अध्याय 4, श्लोक 19-20•

11• वही भाग 19, पृ0 56 , पराशरमाधवीय, आचार्य काण्ड, 2•13•

12• "रक्षिताखिलक्षितितपोवनो पि त्रात चतुराश्रय:" धनपाल कृत तिलकमंजरी, पृ0 12 ; गुप्ता पुष्पा, तिलकमंजरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 203•

13• भट्टाचार्य एस0 सी0 "पालीटिकल अथोरिटी एण्ड ब्राह्मण क्षत्रिय रिलेशनशिप इन अर्ली इण्डिया" इण्डियन हिस्टोरिकल रिव्यू, भाग 10, नं0 1-2, 1984, पृ0 17 ; गौतम धर्मसूत्र, भाग 11, 9-10; आपतम्ब धर्मसूत्र, 2, 10•27•17, वही, 12, 47-48; वही, 2, 5-10• 13-16•

14• "मनाविव कर्त्तारि वर्णाश्रम व्यवस्थानां " बाण कृत हर्षचरित सर्ग 2, पृ0 36•

15• दण्डिनकृत दशकुमारचरित, पृ0 188, कार्लेएडीसन

16• तिलकमंजरी, पृ0 12, 13, 17

17• सोमेश्वर कृत मानसोल्लास, भाग 2, पृ0 104•

18• सरकार,डी0 सी0 , से0 इं0 , भाग 2, पृ0 213

19• वही, पृ0 222 "वर्णाश्रम व्यवस्थापन प्रवृत चक्र एक चक्र रथ इव प्रजानामतिर्हर परमादित्य परम भट्टाकर श्री महाराज प्रभाकर वर्धन "

20• वही, पृ0 225•

21• वही, पृ0 227•

22• *कलेक्सन्स आफ प्राकृत संस्कृत इन्सक्रिप्सन्स*, न0 5, पृ0 50 •

23• "स्वधर्मरोपित: वर्णाश्रम " *एपि0 इण्डि0*, भाग 15, पृ0 3•

24• वही, भाग 23, पृ0 150, तुलनीय सातवी आठवी शताब्दी के वर्मन राजाओं के विषय में अनुरूप विवरण मिलता है । बसाक, आर0 जी0, *हिस्ट्री आँफ नार्थ ईस्ट्रअन् इण्डिया* {1934} पृ0 314•

25• मुखर्जी, आर0 आर0, मैरी, एस0 के0, *कार्पस आँफ इन्सक्रिप्सन्स*, पृ0 213•

26• हेमचन्द्रकृत *अभिधानचिन्तामणि*, अध्याय तृतीय, पृ0 201, श्लोक 5• 475•

27• *हर्षचरित*, पृ0 18•

28• *कलाविलास*, पृ0 79•

29• मिश्र जयशंकर, *ग्यारहवीं सदी का भारत* , पृ0 102•

30• वार्टर्स, उपरोक्त भाग 1, पृ0 168•

31• भविष्यपुराण; ब्रह्मपुराण, 2•121, गौधमधर्मसूत्र , 10•2

32• "द्विजानायजनाध्ययने " विष्णुस्मृति, 2•9 तथा 5•

33• पराशरस्मृति, 1•38; अत्रिस्मृति, 13; शंखस्मृति, 1•22•

34• "प्रतिग्रहो धिके विप्रेयाजनध्यापने तथा " याज्ञ0 स्मृति0 1•118•

35• याजनाध्यापने शुद्धे विशुद्धाश्चप्रतिग्रह: ।

वृत्तित्रयमिदं प्रोक्तं मुनि ज्येष्ठ वर्णिन: ।।

कामन्दकीयनीतिसार, सर्ग 2, श्लोक 19-20•

36• ज्ञानकर्मोपसनाभिदेवताराधनेरत:

शाता दातो दयालुश्च ब्राह्मणश्च गर्णे कृत:

शुक्रनीतिसार, अध्याय 1, श्लो0 40•

37• कृत्यकल्पतरु, गृहस्थकाण्ड, पृ0 252•

38• एपि0 इण्डि0, जिल्द 14, पृ0 50-51•

39• फ्लीट, जे0 एफ0, का0 ई0 ई0, भाग 3, पृ0 89

40• वायुपुराण, 99, 244; विष्णुपुराण, 4•4•, 45-46; मत्स्यपुराण, 201 ;

राय, एस0 एन0, पौराणिक धर्म और समाज, पृ0 166; शतपथब्राह्मण,

110·42·19 ; ऐतरेय ब्राह्मण, 7·14·19·

41· अग्रवाल बासुदेव, हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 85·

42· कृत्यकल्पतरू, राजधर्म काण्ड, पृ0 176·

43· मिश्र शिवशंकर, अ कल्चरल स्टडी आफ मानसोल्लास, पृ0 160-62·

44· "द्वारे तवोत्सवमतिश्च पुरोहित्तो पि " यशस्तिलक, पृ0 361·

45· सें0 इं0, 2, पृ0 283·

46· वही, पृ0 279·

47· मित्तल, ऐ0 सी0, इन्सक्रिप्सन्स आफ इम्पीरियल परमारज, पृ0 247·

48· वही, पृ0 201·

49· "पुरोहितत्रिविक्रमताच्चलिखितमिदम् " से0 इं0 , 2, पृ0 249·

50· मित्तल, ऐ0 सी0, इन्सक्रिप्सन्स आफ इम्पीरियल परमारज, पृ0 287·

51· वही, पृ0 13·

52· जे0 ए0 एच0 आर0 एस0, 2, पृ0 27·

53· से0 इं0 भाग 2, पृ0 177·

54· एपि0 इण्डि0, भाग 8, पृ0 158-59·

55• मानसोल्लास, {गायकवाड़ ओरिएन्टल सीरिज बड़ौदा} भाग, 84, पृ0 12•

56• इन्सक्रिप्सन्स आफ इम्पीरियल परमारज, पृ0 287•

57• वही, पृ0 279•

58• गौतमधर्मसूत्र, 7, 6•25, मनु0 8, 348-49 ; आपतम्ब, 1•10•29•

59• सरकार, शुक्रनीतिसार, 4, काणे, हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, 2, भाग 1, पृ0 131•

60• द्वयाश्रयमहाकाव्य, पृ0 16•

61• दशकुमारचरित, पंचम् उच्छवास, पृ0 113•

62• एपि0 इण्डि0 , भाग 4, पृ0 158•

63• इण्डि0 ऐन्टी0, भाग 25, पृ0 205• एफ एफ, बम्बई

64• आई0 एच0 क्यू0, 1928, पृ0 35, पंक्ति 44-45•

65• राजतरंगिणी, 7, 1480, 8, 1013-1017•

66• का0 बा0 ई0 , पृ0 162•

67• कादम्बरी, पृ0 26•

68• कादम्बरी, पृ0 114•.

69• एपि0 इण्डि0, भाग 27, पृ0 278•

70• रे0 एच0 सी0, डायनिस्टिक हिस्ट्री ऑफ नार्दन इण्डिया, भाग 2, पृ0 207–17•

71• का0 ई0 ई0 भाग 3, 6•35•

72• इन्सक्रिप्सन्स आफ इम्पीरियल परमारज, पृ0 79•

73• वही, पृ0 235

74• वही,

75• पराशरमाधवीय, आचार्य काण्ड, 2•2• तुलनार्थ यादव बी0 एन0 एस0, सोसायटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इण्डिया, पृ0 10•

76• कृत्यकल्पतरू, गृहस्थ काण्ड, पृ0 194–195 , गृहस्थरत्नाकर , पृ0 430–43•

77• शुक्रनीतिसार, अध्याय 4, 3•19•20

78• कथाकोशप्रकरण, पृ0 120•

79• मिश्र जयशंकर, ग्यारहवीं सदी का भारत, पृ0 15•

80• पुरी बी0 एन0, दि गुर्जर प्रतिहार, पृ0 133•

81• दूढला अभिलेख, आई0 ऐ0 भाग 12, पृ0 193

82• आचार्य सी0 वी0, एच0 आई0 जी0, 3, पृ0 200

83• से0 इं0 , 2, पृ0 177-178

84• मनु0, 10, 86 - 116 ; गौतम, 8, 8•14; वशिष्ट, 2, 31; नारद, 61-63; याज्ञ0 स्मृति, 3, 40-42, सूची हेतु देखिये, मजूमदार वी0 पी0, सोसो इकोनामिक हिस्ट्री आॅफ नार्दन इण्डिया, पृ0

85• दशावतारचरित, पृ0 160•

86• कृत्यकल्पतरू, गृहस्थ काण्ड, पृ0 199-212•

87• व्यास श्याम प्रसाद, राजस्थान के अभिलेखों का सांस्कृतिक अध्ययन पृ0 108•

88• साचाओ, 2, 132•

89• एपि0 इण्डि0, भाग 1, पृ0 184•

90• वही, पृ0 173 जे0 जे0

91• व्यास श्याम प्रसाद, राजस्थान के अभिलेखों का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 107-108•

92. यशस्तिलक, पृ0 116, 118, 126 उत्तर खण्ड

93. वही, पृ0 105, 108.

94. वही, पृ0 457.

95. वही, पृ0 88.

96. वही, पृ0

97. वही, पृ0 135.

98. वही0 पृ0 131.

99. वही, पृ0 316 – पूर्वखण्ड – 140 – उत्तर खण्ड

100. वही, पृ0 140, उत्तर खण्ड

101 वही, पृ0 316 पूर्व खण्ड

102. गुप्ता पुष्पा, तिलकमंजरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 204.

103. मिताक्षरा, सीक्रट बुक आफ हिन्दु, पृ0 210; धर्मशास्त्र का इतिहास भाग 2, प्रथम भाग, पृ0 131; अत्रि स्मृति ‖आनन्द आश्रम संस्कृत सीरीज पूना ‖ 273-283, यही परम्परा प्राचीन ग्रन्थ दशकुमार जातक में भी प्राप्त होती है । देखिये भट्टाचार्य एस0 सी0, सम आस्पेक्ट आफ इण्डियन सोसायटी पृ0 10; तुलनार्थ यादव, बी0 एन0 एस0, सोसायटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इण्डिया, पृ0 21.

104• प्रान्तीय क्रम हेतु देखिये, विल्सन जान, इण्डियन कास्ट, पृ0 17•

महाराष्ट्र द्रविड: कर्णाटाश्चैव गुर्ज्जरा: ।

द्रविडा पंचधा प्रोक्ता विंध्यदक्षिण वासिन: ।

सारस्वत: कान्यकुब्जा गौडोत्कला मैथिला ।

गौडा पचविद्या प्रोक्ता विंध्यादुत्तर वासिन: ।।

105• मित्तल ए0 सी0, इन्सक्रिप्सन्स आफ इम्पीरियल परमारज, पृ0 253•

106• वही, पृ0 279•

107• तैत्तीय संहिता 1•7•11•

108• महाभारत, 1•28•3

109•वृहत्कथाश्लोकसंग्रह, पृ0

110•तिलकमंजरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 56•

111• ग्यारहवी सदी का भारत, पृ0 102-103•

112• फ्लीट, का0 ई0 ई0 भाग 3, पृ0 70•

113• से0 ई0, भाग प्रथम, पृ0 302•

114• मित्तल, ऐ0 सी0, इन्सक्रिप्सन्स आफ इम्पीरियल परमारज, पृ0 153•

115• वही, पृ0 239•

116• अर्थशास्त्र, 4•8

117• कृत्यकल्पतरू, राजधर्म काण्ड, पृ0 91–92•

118• लघुवराहनीति, 1•1•37•

119• मिश्र जयशंकर, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ0 118•

120• दशकुमारचरित, द्वितीय उच्छ्वास, पृ0 54•

121• विज्ञानेश्वर की टीका याज्ञवल्क्य, 2•21•

122• स्मृतिचन्द्रिका, 130•

123• राजतरंगिणी, 4•95•

124• देवल उद्धृत, गृहस्थरत्नाकर, पृ0 85•

125• ग्यारहवीं सदी का भारत, पृ0 146•

126• अर्थशास्त्र, 3•5; याज्ञ0 स्मृति, 1•118; पराशरस्मृति, 1•38; अत्रिस्मृति, 13; शंखस्मृति, 1•22•

127• हर्षचरित, पृ0 89, 111, 122•

128• "दत्वासमारोपितामरण: स वत्सा: सहस्त्रशोगासुर्वण च प्रचुर भारम्भानि स्पृहेम्यो विप्रेभ्य: ", तिलक मंजरी, पृ0 78

129• वही, पृ0 64•

130• पूर्वमध्य काल में दान के महत्व के शास्त्रीय विवेचन के पक्ष में देखिये, काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास , जिल्द 4, भाग 2, पृ0 934-938; कृत्यकल्पतरू , दान काण्ड

131• शर्मा आर0 एस0 , भारतीय सामंतवाद , हिन्दी अनु0 पृ0 58

132• इन्सक्रिप्सन्स आफ बंगाल , 3 , पृ0 63-67•

133• डायनिस्टिक हिस्ट्री आफ नार्दन इण्डिया, 1, पृ0 516-18, 521, 524-25, 536•

134• मित्तल ऐ0 सी0, इन्सक्रिप्सन्स आफ इम्पीरियल परमारज, पृ0 193•

135• कृत्यकल्पतरू , राजधर्मकाण्ड, पृ0 91-92•

136• मानसोल्लास, 1, पृ0 166• {गायकवाड़ ओरिन्टल सीरिज, बड़ौदा }

137• साचाओ, 2, पृ0 149•

138• इन्सक्रिप्सन्स ऑव इम्पीरियल परमारज, पृ0 239 {आई0 ई0 पी0}

139• वही, 291•

140• सैं0 इं0 2, पृ0 178•

141• वही, पृ0 283•

142• कार्पस आफ बंगाल इन्सक्रिप्सन्स, पृ0 215, 225•

143• इन्सक्रिपसन्स आँव इम्पीरियल परमारज, पृ0 290•

144• इन्सक्रिपसन्स आँफ बंगाल, 3, पृ0 32, एफ0 एफ0

145• एपि0 इण्डि0, 13, पृ0 283 एफ0 एफ0

145अ• एपि0 इण्डि0 2, पृ0 17-19•

146• वही, 2, पृ0 306•

147• राजस्थान के अभिलेखों का सांस्कृतिक अध्ययन , पृ0 107•

148• अभिधानचिन्तामणि, तृतीय काण्ड, श्लो0 1•527; वैजयन्तीकोश, क्षत्रिय अध्याय, श्लो0 नं0 1 •

149• "क्षत्रिय पुरूषाणां पुरूषेषु वा शूरतम् " शब्दानुशासन, 2•2, 10•9

150• तिलकमंजरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 206•

151• कृत्यकल्पतरू, गृहस्थकाण्ड, पृ0 252•

152• एपि0 इण्डि0 भाग 18, पृ0 96•

153• इन्सक्रिपसन्स आव इम्पीरियल परमारज, पृ0 75•

168• टॉड, एनाल्स एण्ड ऐन्टीक्वेरी आफ राजस्थान, भाग 1, अध्याय,2-3 और 6•

169• स्मिथ, अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया (तृतीय संस्करण), पृ0 407• जे0 जे0

170• भण्डारकर, फॉरएन् एलीमेन्टस इन हिन्दू पापुलेशन इण्डियन ऐन्टीक्यूरी भाग, 11, 1911•

171• वैद्य सी0 वी0, मीडिवल हिन्दु इण्डिया, भाग 2, अध्याय प्रथम, पृ0 5•

172• स्ट्रगल फार एम्पायर, पृ0 477•

173• चट्टोपाध्याय बी0 डी0, ओरिजन आफ दि राजपूत, दि पॉलिटिकिल इकनामिक एण्ड सोशल प्रोसेस् इन अर्ली मीडिवल राजस्थान , दि इण्डियन हिस्ट्रोरिकल रिव्यू भाग, 3, नं0 1• 1976, पृ0 59 जे0 जे0•

174• क्षेमेन्द्र कृत बोधिसप्वावदान कल्पलता , भाग 2, पृ0 223•

175• रूपक , पृ0 14•

176• तिलकमंजरी, पृ0 27, 30, 44, 51, 89; तिलकमंजरी एक सांस्कृतिक अध्ययन , पृ0 206•

177• द्वयाश्रय, 2, पृ0 548, 115•

178• यादव बी0 एन0 एस0 , सोसायटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इण्डिया, पृ0 35 - 37•

179• इलियड डाउसन , भाग 1, पृ0 16-17•

180• अल्तेकर , राष्ट्रकूट एण्ड देयर टाइमस , पृ0 318 - 19•

181• विष्णु स्मृति , 2•12, अत्रि स्मृति , 14

शास्त्रोपजीवनं भूतरक्षणं चेतिवृत्तय:।

क्षत्रियस्यादि भजनं दानमध्ययनं तप: ।। याज्ञ0 स्मृति, 1-118

182• इज्जाध्ययन दत्तानि यथा शास्त्रं सनातन: ।

ब्राह्मण क्षत्रिय विशो सामान्यो धर्म उच्यते ।। कामन्दकीय नीतिसार, 2•18

183• लोकसंरक्षण दक्षा: शूरोदान्ता पराक्रमी ।

दुष्ट निग्रह शीलोभ: सर्वे क्षत्रिय उच्यते ।। शुक्रनीतिसार, अध्याय प्रथम

श्लोक, 41

184• कृत्यकल्पतरू , गृहस्थ काण्ड, पृ0 253

185• द्वयाश्रयमहाकाव्य, 18•59

186• ग्यारहवीं सदी का भारत, पृ0 113•

187• क्षत्रियो पि कृषिकृत्वा देवान विप्राश्च पूज्यते , पराशर जिल्द 1, 2•13, पृ0 435

188• वृद्धहारीत , 7•179, पृ0 273, तथा 7•182, पृ0 273•

189• पराशरमाधवीय, जिल्द 1 , पृ0 435

190• गृहस्थरत्नाकर, पृ0 191

191• अपरार्क, 3•41 , पृ0 936-37•

192• एपि0 इण्डि0 , भाग 1, पृ0 161•

193• शर्मा, आर0 एस0 , भारतीय सामवाद, हिन्दी अनु0 , पृ0 123•

194• मिताक्षरा, 3•35, पृ0 431; बौधायन धर्मसूत्र पर हरिदत्त की टीका पृ0 69•

195• मेधातिथि, 10•95

196• अपरार्क, 3•14

197• भारतीय अभिलेख संग्रह , खण्ड 3, पृ0 89•

198• एपि0 इण्डि0 , भाग 19 , पृ0 2-4

199• वही, जिल्द 1, पृ0 161•

200• महाभारत, 12•122; कूर्मपुराण , 1•2•24, मत्स्यपुराण, 4•28; वायुपुराण 9•113•

201• ब्राह्मण क्षत्रिय वि शूद्रावर्णास्त्वाधास्तामो द्विजा ।
ब्राह्मण क्षत्रिय विशस्तस्मादेते द्विजा स्मृता: ।। याज्ञ0 स्मृति, 1•10 तथा 39•

202• साचाओ, 1, पृ0 101•

203• इलियट डाउसन, जिल्द 1, पृ0 13 तथा पृ0 49•

204• मित्तल, ऐ0 सी0 , इन्सक्रिपसन्स आव इम्पीरियल परमारज, पृ0 262•

205• एपि0 इण्डि0, भाग 1, पृ0 41•

206• वही, पृ0 24 234

207• तिलकमंजरी , पृ0 44•

208• साचाआे , 2, पृ0 162•

209• कृत्यकल्पतरू , दानकाण्ड, पृ0 37•

210• शुक्रनीतिसार , 1, पृ0 421•

211• दानसागर, पृ0 20-21•

212• इण्डियन ऐन्टीक्यूरी 18, पृ0 136 - 143•

213• एपि0 इण्डि0, जिल्द 16 , पृ0 275•

214• एपि0 इण्डि0 जिल्द 1, पृ0 245•

नाम्ना जाडल

स्वत्वा लोकि विलोकित क्षितिपति व्यापारलब्धो दया: ।।

215• आर्कलाजिकल डिपार्टमेन्ट आँफ ग्वालियर स्टेट - 1915-26, पृ0 13•4•

216• तुलनीय भट्टाचार्य एस0 सी0 , सम आस्पेक्ट्स आँफ इण्डियन सोसायटी, पृ0 75•

217• अभिधानचिन्तामणि, तृतीय काण्ड 3•864; वैजयन्ती कोश, वैश्य अध्याय, श्लोक 1•

218• वैजयन्ती कोश, वैश्य , अध्याय श्लोक 3•4•

219• सेo इंo 2, पृo 317, 181, 270 ; अभिज्ञान , पृo 240; मृच्छकटिक पृo 308; वृहत्कथाश्लोकसंग्रह, 17, 2•126•

220• अभिज्ञान शाकुन्तलम, पृo 240, मृच्छकटिक, पृo 8•38, वृहत्कथाश्लोक - संग्रह , 18, 276; वैजयन्तीकोश वैश्य अध्याय श्लोक 72; एपिo श्लो, संo पृo 302, एपिo इण्डिo जिल्द 15, पृo 1781• एपिo इण्डिo जिल्द, 15, पृo 130•

221• इण्डिo इपिo ग्लोसo, पृo 362 , मालविकाग्निमित्रम्, 17, वृहत्संहिता, 5•29, 9•31, 10•6, वृहत्कथाश्लोकसंग्रह , 18, 289, 294, 314, 321 इत्यादि ।

222• इण्डिo इपिo ग्लोo , पृo 362, वृहत्संहिता, 9•3 , 10•7, 15•11, वृहत्कथा-श्लोकसंग्रह , 21-27•

223• सेo ईo, 1, पृo 327, काo ईo इंo 3, 3•49, वृहत्संहिता, 31•4

224• वृहत्संहिता, 5•21•

225• वही, 16•16•

226• अभिधानचिन्तामणि, तृतीय काण्ड 3•149•

227• वही, तृतीय काण्ड, श्लोक , 876•

228• वैजयन्ती कोश, वैश्य अध्याय श्लोक 70

229• सभाश्रृंगार, पृo 147-48

230• जैनप्रशस्तिसंग्रह , पृo 19•

231• पाधरी राघवेन्द्र, प्राचीन भारत में सामाजिक परिवर्तन, पृ0 52

232• जैन शिलालेख संग्रह, भाग 3, पृ0 16, 101, 108•

233• एपि0 इण्डि0, जिल्द 36, भाग 1, 36

234• "कुसदि कृषिवाणिज्य पाशुपाल्ये विश : स्मृतम् " याज्ञवल्क्यस्मृति, 1•119•

235• पशूनां पालनं तथा ।
कुसदि कृषि वाणिज्यं वैय कर्माणि सातवे " वृहस्पतिस्मृति, संस्कार, 5•28

236• कृषिगोरक्षा वाणिज्य वैश्यस्य, विष्णुस्मृति , 2•13•

237• कामन्दकीय नीतिसार, सर्ग 2, श्लोक 20 "पाशु पाल्यं कृषि पण्यं वैश्यस्या "

238• शुक्रनीतिसार, अध्याय 1, श्लोक 42•

239• वैजयन्ती कोश, वैश्य अध्याय श्लोक - 3-4•

240• बौधायन धर्मसूत्र, 2, 2•80; गौतमधर्मसूत्र, 7•26•

241• कुल्लूक, 5•140•

242• मेरूतुंग कृत,प्रबंधचिन्तामणि, प्रथम अध्याय, पृ0 18•

243• सोमदेवसूरि कृत, नीतिवाक्यमृतम, 90•5•

244• पाथरी राघवेन्द्र, प्राचीन भारत में सामाजिक परिवर्तन, पृ0 52•

245• जिनविजयमुनि , कुमारपालचरितसंग्रह, काव्य पृष्ठ 28•

246• व्यास श्याम प्रसाद, राजस्थान के अभिलेखों का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 116

247• वही, पृ0 116•

248• विष्णुपुराण , 4•1•36; हजारा आर0 सी0, स्टडीज 209 पर

249• पराशर माधवीय, जिल्द 2•2 , पृ0 116•

250• इण्डि0 एपि ग्लोस, पृ0 329

251• वही, पृ0 172, सै0 ई0 2, पृ0 93–97–98

252• सै0 ई0 , पृ0 119

253• सै0 ई0 2, पृ0 93, 97, 191, 375, 742,

254• इण्डि0 एपि0 ग्लोस, पृ0 142•

254अ. इलियट जि0-1, पृष्ठ 13, 49

255• अल्तेकर, द राष्ट्रकूटज ऐण्ड देअर टाइम्स, पृ0 332–334; घुर्ये, कास्ट ऐण्ड क्लास इन इण्डिया , पृ0 57, 64,98,96 ; शर्मा, शूद्राज इन ऐंशियंट इण्डिया, 1980, 2 , संस्करण पृ0 68•

256• ब्रह्मपुराण 40•136 पृ0 253•

257• पाथरी राघवेन्द्र, प्राचीन भारत में सामाजिक परिवर्तन, पृ0 51•

258• कुल्लूक, 5•140•

259• सचाऔर उपरोक्त भाग 2, पृ0 136•

260• सागर एस0 एल0, हिन्दु कल्चर एण्ड कास्ट सिस्टम इन इण्डिया, पृ0 83 पर उद्धृत तथा वेदव्यासस्मृति , 1•11• पृ0 375•

261• हेमाद्रि, <u>चतुर्वर्ग चिन्तामणि</u>, पृ0 998•

262• <u>एपि0 इण्डि0</u>, भाग 1, 168•

263• वही, पृ0 168•

264• <u>एपि0 इण्डि0</u> भाग 1, पृ0 154•

265• एपि0 इण्डि0 , जिल्द 12, पृ0 258•

266• <u>एपि0 इण्डि0</u> जिल्द 11, पृ0 43•

267• <u>जे0 ऐ0 एस0 बी0</u> , जिल्द 19, पृ0 106•

साधु शब्द का प्रयोग बिहार और बंगाल में वैश्यों के लिये किया गया है।

268• यादव झिनकू, <u>समराइच्चकहा एक सांस्कृतिक अध्ययन</u>, पृ0 100•

269• <u>अभिधानचिन्तामणि</u>, 3•894•

270• <u>यशस्तिलक</u>, पृ0 457•

271• <u>मनु0</u> 10, 121; <u>गौ0 धर्मसूत्र</u> , 1•120; <u>पराशरस्मृति</u>, 1•69; <u>अत्रिस्मृति</u> 15; <u>वृहस्पतिस्मृति</u>, संस्कार, 5•29-30•

272• <u>मिताक्षरा</u> , 1•120•

273• <u>भारुचि की मनुस्मृति टीका</u>, 10•99-100

274• <u>कामन्दकीय नीतिसार</u>, सर्ग 2• श्लोक 21 "शूद्रस्यधर्मशुश्रूषा द्विजानामनुपूर्वश "

275• <u>शुक्रनीतिसार</u>, अध्याय 1 , श्लोक 43•

276• पराशर माधवीय 2•14, पृ0 435 तथा स्मृतिचन्द्रिका (आ0 का0) पृ0 283 पर उद्धृत पराशरस्मृति •

277• वृद्धहारीतस्मृति , 7•181–82, पृ0 273•

278• पराशरस्मृति, 11–22•

279• असहाय, नारदस्मृति , 1•181•

280• शुक्रनीतिसार, अध्याय 4, श्लोक 19–20•

281• कृत्यकल्पतरु, गृहस्थकाण्ड, पृ0 273•

282• पराशयमाधवीय, जिल्द 1, पृ0 435•

283• वार्टस, सी0 जिल्द 1, पृ0 168•

284• यादव, बी0 एन0 एस0, सोसायटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इण्डिया, पृ0 41•

285• याज्ञवल्क्य, मनुस्मृति 1•120•

286• भारुचि की टीका, मनुस्मृति, 70–100•

287• मिताक्षरा, 1•120•

288• पराशर, 1, 721, लवणं मधु तैलं च द्रधितक्रं घृतं पय: ।
दुष्टोच्छूद जातीनां कुर्यारिसर्वेषु विक्रयम् ।।

289• पराशरमाधवीय, पृ0 419; मिताक्षरा, 120 पृ0 53, अपरार्क, 1•20• पृ0 162 तथा स्मृतिचंद्रिका (आचार्य काण्ड), पृ0 285 पर उद्धृत देवल ।

290. अभिधानचिन्तामणि (तृतीय काण्ड)

291. अत्रिस्मृति, 15

292. शंखस्मृति, 1.5, पृ0 374.

293. नारदस्मृति, 4.59

उत्कृष्टं चापकृष्टं च तयो कर्म न विद्यते ।
मध्यमे कर्मणा हित्वासर्वसाधारिणी हिते ।।
मध्यमे द्वे कर्मणी शत्र वृत्ति वैश्य वृत्ति ।।

294. कुल्लूक, 7.2, पृ0 306 "वैश्यस्यापि क्षत्रिय धर्म, शूद्रस्य च क्षत्रिय वैश्य कर्मणी जीवनार्थमापदि "

295. स्मृतिचन्द्रिका, आ0 का0 पृ0 296 पर उद्धृत नारद स्मृति

296. मिताक्षरा, 3-35, पृ0 431, तथा अपरार्क, 3-34, पृ0 930.

297. राजतरंगिणी, 4.410.

298. एपि0 इण्डि0 जिल्द 6, पृ0 273.

299. एपि0 इण्डि0 , 22, पृ0 143 जे0.

300. यादव, बी0 एन0 एस0 , सोसायटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इण्डिया, पृ0 38.

301. शर्मा, आर0 एस0 , प्राचीन भारत में सामाजिक परिवर्तन, पृ0 20;

302. ब्रह्मवर्तपुराण , ब्रह्मखण्ड 10, 14.136

303. सभाश्रृंगार, पृ0 147-48.

304• वैजयन्तीकोश,॥शूद्र अध्याय॥

305• अभिधानचिन्तामणि, तृतीय काण्ड ,

306• पाथरी राघवेन्द्र, प्राचीन भारत में सामाजिक परिवर्तन, पृ0 56•

307• मिताक्षरा , 1•10, पृ0 6•

308• वृहस्पतिस्मृति संस्कार , 101 तथा 154•

309• गौतममिताक्षरा , 2•1•51, पृ0 104•

310• वेदव्यास, 1•17, पृ0 358•

311• मेधातिथि की टीका मनुस्मृति, 3•57, पृ0 267•

312• भारूचि की टीका मनु, 10•127•

313• कुल्लूक की टीका, 10•127 , पृ0 565•

314• पराशरस्मृति, जिल्द 1, पृ0 425•

315• मेधातिथिाकी टीका, 10•127•

316• मिताक्षरा, 3•262, पृ0 550•

अ। [illegible], 3. 126

317• पाथरी राघवेन्द्र, प्राचीन भारत में सामाजिक परिवर्तन, पृ0 56•

318• वही,

319• वृद्धहारीतस्मृति , 244, पृ0 239•

320• शर्मा दशरथ, राजस्थान थ्रू दि ऐजस, पृ0 436•

321• मेधातिथि का मनु पर भाष्य, 3, पृ0 156•

322• अपरार्क, 1•116• पृ0 159•

उष्कृष्ट गुण विद्यायुक्तस्तु हीन जाति रेच्युष्कृष्ट जातेर्मान्यो भवति

323• हजरा, स्टडी इन दि उपपुराणास, जिल्द 2, पृ0 446

324• पाथरी राघवेन्द्र, प्राचीन भारत में सामाजिक परिवर्तन, पृ0 57•

325• जैन शिलालेख संग्रह , भाग 3, अभिलेख संख्या 318•

326• पाथरी राघवेन्द्र, प्राचीन भारत में सामाजिक परिवर्तन, पृ0 57•

327• कुमारपालचरित, पृ0 165•

328• राजतरंगिणी, 4•687•

329• वही, 5•390•

330• वही, 7•290•

331• पराशरमाधवीय, 2•14, पृ0 435 तथा स्मृतिचन्द्रिका, आ0 का0 पृ0 283 पर उद्धृत पराशरस्मृति

332• कुल्लूक का टीका, 5•140• , मनुस्मृति ,

333• मिताक्षरा, 1•120•

334• मेधातिथि की टीका, मनुस्मृति , 8•415, पृ0 878•

335• वार्टस, भाग 1, पृ0 168•

336• वृद्धहारीतस्मृति, 7•181-2, पृ0 273•

337• मनुस्मृति , 10•129•

338• मेधातिथि का मनु पर भाष्य (सम्पादक जी0 एन0 झा0 , पृ0 337•

339• वही, 10•123•

340• अपरार्क, 1•120 पृ00 162 तथा कृत्यकल्पतरु गृहस्थकाण्ड, पृ0 273•

341• पराशरमाधवीय, जिल्द 2-3, पृ0 86•

342• ब्रह्मपुराण , 222, 14, पृ0 1178, बृहन्नादयिपुराण , 22•26, पृ0 296•

343• सी0 आई0 आई0, जिल्द 4, भाग 2, पृ0 579•

344• जैन शिलालेख संग्रह , भाग 2, पृ0 129•

345• भावनगर इंस्क्रिप्शन्स, 2, पृ0 67-68•

346• मित्तल ऐ0 सी0 , परमार अभिलेख पृ0 135, पंक्ति - 4•

347• वही, पंक्ति 4, वात्रघोषकूपिका बुवासक्यो: अन्तरलेवापी च ।

348• मनुस्मृति 10•24; बोधायन धर्मसूत्र 1•915; महाभारत वनपर्व , 31-33•

349• मिताक्षरा, 1•95, पृ0 42 ; कुल्लूक, 10•31, पृ0 543•

350• वृहस्पति स्मृति , लक्ष्मीधर द्वारा कृत्यकल्पतरु में उद्धृत, हिस्ट्री आॅफ धर्मशास्त्र, भाग 2, पृ0 59•

351• "परस्पर सप कीन्ति गामन्येऽनन्तभेदाभवन्ति " मेधातिथि की टीका , मनुस्मृति पर 10•31, पृ0 992•

352• परनशर माधवीय , जिल्द 1 , पृ0 511-16,

353• कुल्लूक की टीका मनुस्मृति पर 10-31, पृ0 543•

354• वैजयन्तीकोश, पृ0 136-47•

355• पराशरमाधवीय जिल्द 1, पृ0 511-16•

356• अभिधान चिन्तामणि , पृ0 224•

357• सरकार बी0 के0 , शुक्रनीतिसार, अनुवाद पृ0 150•

358• सभाश्रृंगार , पृ0 147 द्वारा मिश्र जयशंकर, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ0 192, पा0 टि0 289•

359• साचाओ भाग 1, पृ0 101•

360• वृहद्धर्म पुराण, 3-13, हजारा आर0 सी0, स्टडीज इन दि उपपुराणाय भाग 2, पृ0 2•137•

361• नियोगी पुष्पा, ब्राहिण्कि सेटलमेन्टस इन डिफरेन्ट सबडिविजन ऑफ बंगाल पृ0 55•

362• "महत्तमोत्तमपुरोगभेन्द्रान्ध्रत्न्ध्रा चाण्डाल दर्य्यन्तात् । " मुखर्जी आर0 आर0, मैटी एस0 के0, सी0 बी0 आई0 पृ0 168•

363• वही, पृ0 202, पृ0 215•

364• सरकार डी0 सी0, सै0 ई0 , 2, पृ0 191,

365• एपि0 इण्डि0 भाग 20, पृ0 136•

366• धर्मशास्त्र का इतिहास भाग 2, पृ0 121 ; राजतरंगिणी भाग 4, पृ0 55•

द्वितीय अध्याय

आर्थिक संदर्भ एवं व्यवसायिक समुदायों का वर्गीकरण

आर्थिक सन्दर्भ

मानव जीवन की सम्पन्नता, उन्नति, उत्कर्ष तथा सामाजिक प्रतिष्ठा आर्थिक पक्ष पर निर्भर है क्योंकि अर्थव्यवस्था के विकास से ही मानवीय सम्बन्ध एवं सामाजिक विकास सम्भव है। मैक्सवेबर का कथन है कि आर्थिककार्यक्रम व्यक्ति का मानवीय ही नहीं अपितु सामाजिक सम्बन्ध को भी व्यक्त करते हैं।[1] मार्शल महोदय ने मत प्रतिपादित किया है कि आर्थिक जीवन को उत्प्रेरित करने वाली प्रवृत्तियाँ प्रत्येक युग में सहजरूप से स्वभावत: उद्भूत होती रही है जो समाज को पुष्ट एवं स्वस्थ बनाने में सक्रिय सहयोग प्रदान करती रही है। तथा इनके कारण व्यक्ति और समाज का विकास स्वाभाविक गति से होता है।[2]

जैसा कि विदित है कि अर्थव्यवस्था देशकाल, परिस्थिति एवं आवश्यकता के अनुकूल परिवर्तित भी होती रहती है। आधीत कालीन अर्थ - व्यवस्था भी उपरोक्त कथन से वंचित न थी। आर्थिक जीवन के प्रमुख घटक कृषि, व्यवसाय, व्यापार-उद्योग इत्यादि में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। तथा इनका एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध है। दूसरे शब्दों में ये एक दूसरे के पूरक हैं और उसी में अन्तर्निहित होते हैं। इस प्रकार आर्थिक जीवन में इनका विशेष महत्व है।

भारतीय आर्थिक जीवन में प्राचीन काल से ही कृषि का विशेष महत्व रहा है। यह जीविकोपार्जन का साधन रहा तथा साथ ही साथ

अर्थव्यवस्था के प्रत्येक घटक भी कृषि से प्रभावित रहा है । इस प्रकार कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था के युग में व्यवसायिक समुदायों के आर्थिक संदर्भों को प्रस्तुत करने के लिए कृषि के विभिन्न पक्षों का विश्लेषण आवश्यक है ।

पूर्वमध्य काल में भूमि विषयक अधिकार में प्राचीन काल की तुलना में परिवर्तन दृष्टिगत होते हैं । प्राचीन भारत में भूस्वामित्व विषयक अधिकार के विषय में इतिहासकारों के मध्य अत्यन्त विवाद है । उपलब्ध साक्ष्यों की समीक्षा से प्राप्त निष्कर्ष परस्पर विरोधी है । इतिहासकारों का एक वर्ग भूमि पर राजकीय अर्थात राजा के स्वामित्व को स्वीकार करता है । इस वर्ग के प्रमुख विद्वानों में व्युहलर, हापकिन्स, कीथ, मैकडानल, स्मिथ इत्यादि हैं ।[3] विद्वानों का दूसरा वर्ग भूमि पर व्यक्तिगत अधिकार को सिद्ध करने का प्रयास करता है । इनमें पी0 एन0 बनर्जी, काशी प्रसाद जायसवाल इत्यादि प्रमुख हैं ।[4] कतिपय विद्वानों ने भूमि पर सामूहिक अधिकार का समर्थन किया है । भूस्वामित्व के विकास में सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक दोनों ही पक्षों का योग रहा है । अतः इस विषय पर पृथक-पृथक धरातल पर समीक्षा करना आवश्यक है ।

सैद्धान्तिक धरातल पर भूमि पर राजकीय अधिकार परम्परा की अक्षुण्णता की पुष्टि पूर्वमध्यकालीन ग्रन्थों से होती है । आपस्तम्ब धर्मसूत्र में वर्णित है कि भूमि से निकली हुई सम्पत्ति पर राजा का अधिकार था न कि खोदने वाले का ।[5] बौद्ध साक्ष्य दीर्घ निकाय में उल्लिखित है, सम्राट निखेत

निधि और खनिज के आधे अंश का स्वत्वधारी होता है, क्योंकि वह भूमि का रक्षक और स्वामी होता है ।[6] कौटिल्य भी कृषि पर राजकीय नियंत्रण आपेक्षित मानते हैं, किन्तु कहीं भी भूमि पर राजा के स्वामित्व के सिद्धान्त का स्पष्ट प्रतिपादन नहीं किया है ।[7] जबकि 12वीं शता० के अर्थशास्त्र के भाष्यकार भट्टस्वामी ने भूमि और जल दोनों पर राजा का स्वामित्व स्वीकार किया है । उनके कथानुसार इन दोनों को छोड़कर लोग अन्य किसी भी वस्तु पर अपना अधिकार प्रदर्शित कर सकते हैं ।[8] मनुस्मृति के भाष्यकार मेधातिथि ने भी राजा के भूमि स्वत्व को स्वीकार किया है ।[9] स्मृतिकार कात्यायन ने भी राजकीय स्वामित्व के सिद्धान्त का स्पष्ट शब्दों में समर्थन किया है ।[10] सोमेश्वर ने अपनी कृति मानसोल्लास में मनु के विचारों के आधार पर राजा के भूमि स्वामित्व का समर्थन किया है ।[11] मिश्र मिश्र ने अपने ग्रन्थ राजनीति - प्रकाश[12] में और लक्ष्मीधर ने अपने ग्रन्थ कृत्यकल्पतरू[13] में राजा को स्वामित्व के सिद्धान्त का अनुमोदन किया है । राजतरंगिणी से भी राजा के भूमि स्वामित्व की पुष्टि होती है ।[14] विदेशी साक्ष्य में भी राजकीय सिद्धान्त का विधान मिलता है ।[15]

राजकीय भू-स्वामित्व की पुष्टि आलोचित कालीन अभिलेखों से भी होती है । तथा विभिन्न राजवंशों के राजाओं द्वारा बहुत अधिक संख्या में ग्राम तथा भूमि-खंड दान किये जाने की प्रक्रिया के पीछे राजकीय स्वत्व की प्रधानता रही होगी । यह दान मुख्यतया पुरोहितों, ब्राह्मणों, मठों, शैक्षिक तथा धार्मिक

संस्थाओं को दिया जाता था । मैती, लल्लन जी गोपाल, पुष्पा नियोगी इत्यादि विद्वानों ने भी राजकीय स्वत्व निर्धारिक तथ्यों के रूप में भूमि दान के महत्व को स्वीकार किया है ।[16] यद्यपि पूर्वमध्य कालीन अग्रहारी अनुदानों की संख्या अत्यधिक है फिर भी राजकीय स्वत्व के समर्थन में कतिपय अभिलेखीय साक्ष्यों का उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा । जयनाथ का खोहताम्र पत्र अभिलेख §496-97 ईसवी सन्§ में महाराज जयनाथ द्वारा भगवान विष्णु के मंदिर के प्रति धवषण्डिका ग्राम दान दिये जाने का उल्लेख है ।[17] हर्ष का बासखेड़ा ताम्र पत्र अभिलेख 628 ईसवी § में राजा हर्ष द्वारा मरक्त सागर ग्राम दान किये जाने का प्रसंग है ।[18] उज्जैन का भोजदेव कालीन ताम्रपत्र अभिलेख §1078-1021 ईसवी § के अनुसार भोजदेव ने नागद्रह पश्चिम पथक के अनभिव विराणक ग्राम दान किया था । दान प्राप्त कर्त्ता ब्राह्मण भट्टगोविन्द का पुत्र धनषतिभट्ट था ।[19] गोविन्द चन्द्रदेव के सेहत मेहत ताम्रपत्र अभिलेख §1186 ईसवी § में सम्राट गोविन्द चन्द ने बुद्धभट्टारक, बौद्धबिहार को उपलउण्डा ग्राम दान दिया था ।[20] परताप गढ़ प्रस्तर अभिलेख §946 ईसवी§ में महेन्द्रपाल द्वितीय द्वारा ग्राम दान दिये जाने का उल्लेख है ।[21]

उपरोक्त राजाओं द्वारा ग्राम एवं भूमि दान दिये जाने के प्रमाण पूर्वमध्यकालीन राजकीय भू-स्वामित्व के अधिकार की अवधारणा को स्पष्ट करते हैं । तथा राजकीय अधिकार का सैद्धान्तिक पक्ष प्रबल प्रतीत होता है ।

व्यक्तिगत भू-स्वामित्व में भूमि पर पृथक-पृथक व्यक्तियों का अधिकार होता है । वे स्वेच्छापुर्वक भूमि का आदान-प्रदान, क्रय-विक्रय कर सकते हैं । भूमि पर व्यक्तिगत अधिकार की अवधारणा वैदिक काल से ही प्रचलित थी । ऋग्वेद में वर्णित उर्वरासा, उर्वरापति, उर्वराजित, क्षेत्रसा, क्षेत्रपति इत्यादि शब्द भूमि पर व्यक्ति के स्वामित्व को इंगित करते हैं ।[22] बौद्धग्रन्थ दीर्घनिकाय से स्पष्ट होता है, अनाथपिण्डक नामक वैश्य ने राजकुमार जेत से उद्यान क्रय करके बौद्ध भिक्षुओं को दान किया था ।[23] जैमिनीमीमांसा में प्रसंगित है, कि भूमि खण्ड किसी व्यक्ति को दान दिया जा सकता है । किन्तु सम्पूर्ण भूमि दान नहीं की जा सकती है ।[24] इस प्रकार प्राचीनकाल की भांति पूर्वमध्य - कालीन ग्रन्थों में भी व्यक्तिगत अधिकार की चर्चा की गई है । मनु के एक श्लोक पर भाष्य करते हुये मेधातिथि ने व्यक्तिगत भूमि स्वामित्व का समर्थन किया है ।[25] यद्यपि कि इन्होंने राजकीय अधिकार का भी समर्थन किया है जिसकी चर्चा पहले की जा चुकी है । देशोपदेश में वर्णित एक रूपक में एक कृपण की सम्पत्ति का दूसरों के द्वारा उपभोग किये जाने का जो विवरण प्राप्त होता है । इससे ऐसा प्रतीत होता है कि भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व होता था ।[26]

इसके अतिरिक्त पूर्वमध्य कालीन स्मृतिकारों एवं शास्त्रकारों ने भूमि के विभाजन, विक्री, गिरवी रखना और भूमि अनुदानों के आधार भूमि पर व्यक्तिगत अवधारणा को स्पष्ट करने का प्रयास किया है । नारद तथा वृहस्पति ने मत प्रस्तुत किया है कि जिस भूमि खण्ड पर किसी व्यक्ति का तीस वर्ष तक अधिकार

रहा हो वह उसका स्वामी हो जाता है ।[27] देवल ने दायदो के मध्य सम्पत्ति विभाजन के आधार पर व्यक्तिगत अधिकार की पुष्टि की है ।[28] स्मृतिकार कात्यायन ने बँटवारे के आधार पर व्यक्तिगत स्वामित्व की समीक्षा की है ।[29] लक्ष्मीधर ने ग्राम, खेत, स्थावर सम्पत्ति की विक्री का वर्णन किया है ।[30] देवन्न - भट्ट ने इस आशय का एक श्लोक उद्धृत किया है, सीमा जल और वीथियो के साथ कोई ग्राम विक्रय किया जाये तो वहाँ के पुरोहित, ग्रामदेवता को नष्ट नहीं करना चाहिये ।[31] अधीत कालीन कृतियों में ब्याज के बदले भूमि बन्धक रखने का विधान मिलता है । नारद द्वारा उल्लिखित दो प्रकार की प्रतिभूतियों की टीका करते हुये असहाय ने खेत और मकान को ऐसे बन्धकों की कोटि में रखा है, जिसका उपयोग महाजन कर सकता है ।[32] मेधातिथि ने भी आधि के रूप में खेत बगीचा के उपभोग करने का विधान किया है ।[33]

विवेच्य कालीन अभिलेखीय साक्ष्यों में व्यक्तिगत रूप में अनुदान दिये जाने के अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं । जिनके आधार पर भूमि पर व्यक्ति के अधिकार की पुष्टि की जा सकती है । कुमारगुप्त के धनैदह लेख से ज्ञात होता है, एक राजकीय कर्मचारी ने एक सामवेदी ब्राह्मण को भूमि दान की थी ।[34] भुवनेश्वर अभिलेख में वर्णित है कि मडमदेवी ने एक वणिक् {साधुप्रधान} से देवधर ग्राम में एक भूमिखण्ड क्रय किया था । और उसे लिंगराज मंदिर में शिवपूजन की व्यवस्था के निमित्त दान किया है ।[35] अजयपाल के एक चाहमान सामन्त द्वारा 50 ब्राह्मणों के भरण पोषण हेतु ।।75 में गाँव दान किये जाने का उल्लेख है ।[36] कालवन से

प्राप्त भोजदेव कालीन यशोवर्मन का ताम्रपत्र अभिलेख में भोजराजदेव के अधीनस्थ माडलिक यशोवर्मन के अधीन सामन्त गंगकुलीय की अभ्भयराणक की चालुक्य वंशीय धर्मपत्नी वच्चाई राज्ञी व अन्य व्यक्तियों द्वारा भूमि, भवन, व अन्य वस्तुयें श्वेतपद के जिन मंदिर में पूजा अभिषेक नैवेद्य हेतु दान करने का उल्लेख है ।[37]

इस प्रकार पूर्वमध्य कालीन साहित्यिक साक्ष्यों एवं शास्त्रकारों द्वारा अनुमोदित भूमि विषयक नियमों एवं व्यक्तिगत रूप में दिये गये अनुदानों से यह स्पष्ट होता है कि इस काल में व्यक्तिगत स्वामित्व के सिद्धान्त की जड़ें पूरी तरह जम चुकी थी ।

भूमि पर सामूहिक अधिकार का संकेत प्राचीन काल से निरन्तर प्राप्त है । ऐतरेय ब्राह्मण में वर्णित है कि जब विश्वकर्मन् भौवन ने पुरोहितों को यज्ञार्थ भूमि दान की तो, पृथ्वी ने विरोध किया है ।[38] धर्मशास्त्रों से भूमि पर सामूहिक अधिकार का आभास मिलता है ।[39] पुरातन परम्परा के अनुसार भूमि सम्पूर्ण समुदाय की सम्पत्ति है जिसे हस्तांतरित नहीं किया जा सकता है ।[40] जैमिनी मीमांसासूत्र में उद्धृत है, कोई सम्राट अपने साम्राज्य की सम्पूर्ण भूमि दान नहीं कर सकता है क्योंकि धरती सबकी है ।[41] शबरस्वामी ने अपने भाष्य में मत व्यक्त किया है, धरती पर दूसरों का भी उतना अधिकार है जितना कि राजा का है ।[42] वृहस्पति स्मृति में उल्लिखित है जब राजा भूमि दान करे, उसे चारों वेदों के ज्ञाताओं, व्यापारियों, महत्तरों, तमाम ग्राम वासियों तथा उस भूमि के स्वामियों, राज्याधिकारियों को सूचित कर देना चाहिए ।[43] शास्त्र - कार देवन्नभट्ट ने भूमि विभाजन के संदर्भ में मत प्रस्तुत किया है, भूमि विभाजन

समस्त कुटुम्बियों की अनुमति से हो सकता है । देवन्नभट्ट के कथन से सामुदायिक अधिकार का संकेत मिलता है ।[44]

साहित्यिक साक्ष्यों के अतिरिक्त अतीत कालीन अभिलेखों में भूस्वामित्व के सामूहिक अधिकार के संकेत मिलते हैं । यद्यपि सामूहिक अधिकार के प्रसंग अल्प-मात्रा में प्राप्त होते हैं, तथापि प्राप्त साक्ष्यों के आलोक में सामूहिक भूमि स्वामित्व का उल्लेख इस प्रकार है । 9 वीं शता0 के ग्वालियर अभिलेख से ज्ञात है, ग्वालियर नगर के निकट एक मंदिर को दान में कुछ ऐसी भूमि दी गई थी जिस पर सभी नगरवासियों का संयुक्त अधिकार था ।[45] सियादोनी अभिलेख में नगर के समस्त लोगों द्वारा मिलकर भूमिदान किये जाने का प्रसंग है ।[46] प्रथम अमोघवर्ष के शासन काल में§865 ईसवी§ में वर्तमान धारवार जिला में स्थित एलपुणुस के चालीस महाजनों ने एक पण्डित को 85 मत्तर भूमि दान की थी ।[47] सौनदत्ति में प्राप्त एक अभिलेख में एक जैन मंदिर को 50 कृषकों की सहमति से दिये गये अनुदान का उल्लेख मिलता है ।[48] इस प्रकार का एक अन्य उदाहरण प्राप्त है § (951-52 ई0)में चतुर्थकृष्ण के समय धारवार जिले से प्राप्त अनुदान में 50 महाजनों की सहमति से 12 मत्तर जमीन मठ तथा शैक्षणिक प्रयोजन हेतु दान की गई थी ।[49] उपरोक्त प्रमाणों के अतिरिक्त अतीतकालीन अभिलेखों के अध्ययन से स्पष्ट होता है, दानकर्त्ता अनुदान की सूचना केवल अपने राज्या-धिकारियों और सामन्तों को ही नहीं अपितु समस्त ग्रामवासियों को भी देता था । यह प्रथा सामूहिक अधिकार को इंगित करती है ।[50]

इस प्रकार प्राचीन साक्ष्यों में उल्लिखित प्रसंगों एवं पूर्वमध्यकालीन भाष्यों, स्मृतियों एवं अभिलेखों में भू-स्वामित्व पर प्रकाश डालने वाली जो भी सामग्री प्राप्त होती है उसमें सामुदायिक सिद्धान्त की चर्चा केवल आभास मात्र ही है परन्तु राजकीय और व्यक्तिगत भू-स्वामित्व के संदर्भ में प्रचुर साक्ष्य उपलब्ध होते हैं ।

ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन भारत में प्रारम्भ से ही राजकीय व्यक्तिगत तथा सामूहिक भू-स्वामित्व की अवधारणायें एक ही साथ समाविष्ट रही है ; और ये अवधारणायें एक दूसरे की विरोधी नहीं थी । अंतिम रूप से राज्य के संरक्षण का उत्तरदायित्व सम्राट पर था और उसी उत्तरदायित्व के निर्वाह के ऊपर राजा द्वारा कर ग्रहण कर अधिकार प्रतिष्ठित था । इसी धरातल पर राजा को भूस्वामी की संज्ञा दी गई है । परन्तु इस वृहत्तर अवधारणा के अन्तर्गत व्यक्तिगत भूस्वामित्व के अवस्थान के लिये पर्याप्त स्थान उपलब्ध था ।

भूमि का वर्गीकरण :-

अधीत कालीन शास्त्रकारों ने भूमि के महत्व को स्वीकार करते हुये विभिन्न प्रकार की भूमि का उल्लेख किया है । आचार्य कामन्द ने भूमि को अत्यधिक महत्व प्रदान किया है।उनका मत है कि यदि भूमि अच्छी है तो राष्ट्र भी अच्छा होगा क्यों कि भूमि के विकास पर राष्ट्र का विकास निर्भर करता है । भूमि के द्वारा फसलें,खानें, रत्नादि धातुओं की प्राप्ति होती है ।[51]

अमरकोश में बारह प्रकार की भूमि की चर्चा की गई है यथा - §1§ उर्वरा, §2§ बंजर, §3§ मरू, §4§ परती, §5§ शादुल §घास के मैदान§, §6§ पंकिल §कीचड़§, §7§ जलयुक्त §8§ कच्छ §जल के निकट की भूमि§, §9§ शर्करा §कंकरीली§, §10§ शर्कावती §रेतीली§, §11§ नदी मातृक §नदी से सींची जाने वाली§, §12§ देव मातृक §वर्षा से सिंचित§ इत्यादि ।[52] वृहस्पतिस्मृति में वर्णित है कि भूमि के अनुसार राजा को राजस्व ग्रहण करना चाहिये यथा परती भूमि से 1/10 भाग, वर्षा से सिंचित भूमि पर 1/8 भाग,[53] आचार्य शुक्र ने भी वर्षा से सिंचित भूमि से 1/4 और नदी से सिंचित भूमि से 1/2 तथा बंजर व पथरीली भूमि से 1/6 अंश कर ग्रहण का विधान किया है ।[54] इस प्रकार स्मृतिकारों के राजस्व विधान से भी विभिन्न प्रकार की भूमि की पुष्टि होती है । अन्य ग्रन्थों में उर्वरा, हरिण §बंजर§, खिल, §परती§ मरू §रेतीली§, मृत्सा §अत्युत्तम§ शाद्वल §घासयुक्त§ नडवल §सरकेंडे वाली§, काली पीली इत्यादि भूमि का उल्लेख है ।[55] अभिधान चिन्तामणि में उर्वरा, ऊसर, अकृत्रिम §स्थली§ अर्थात प्राकृतिक भूमि, मरूभूमि का उल्लेख मिलता है ।[56]

कतिपय साक्ष्यों में भूमि की उर्वरता के अतिरिक्त जल की मात्रा एवं रंगों के आधार पर भूमि का वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है । भूमि तीन प्रकार की होती थी। प्रथम जलयुक्त, द्वितीय जलहीन, तृतीय न अधिक जलयुक्त और न अधिक सूखी । रंगों के आधार पर सीलेटी, सफेद, काली, लाल, पीली इत्यादि का उल्लेख है ।[57]

अभिलेखीय प्रमाणों में भी विभिन्न प्रकार की भूमि का संदर्भ प्राप्त होता है । यथा - तृणयूति[58], {घास युक्त} गोचर,[59] ऊषर,[60] खिल,[61] कच्छ,[62] इत्यादि । गुप्त कालीन दामोदर ताम्रपत्र लेख में संदर्भित है कि परती भूमि की उपज में राजा कम राजस्व ग्रहण करता था ।[63] लेख पद्धति के अनुसार उर्ध्व खिल भूमि की उपज में प्रति विशोपक में 16 द्रम्म, खिल भूमि की उपज में 10 द्रम्म प्रति विशोपक और चिरखिल भूमि से राजा को कोई राजस्व नहीं ग्रहण करना चाहिये ।[64] इसके अतिरिक्त दामोदर देव का मेहर ताम्रपत्र में नाल भूमि {कृषि योग्य भूमि} व्याभू {मिश्रित भूमि}, {टीले युक्त भूमि} चटी, इत्यादि भूमि का उल्लेख है ।[65] वल्लासेन का नैहाटी दान पत्र में कई प्रकार की भूमि का प्रसंग मिलता है ।[66]

उपरोक्त साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि पूर्वमध्य काल में विभिन्न प्रकार की भूमि का वर्णन मिलता है तथा भूमि के वर्गीकरण का आधार केवल भूमि की उर्वरता ही नहीं अपितु जल की मात्रा, मिट्टी के रंगों के अनुसार भी किया जाता था । प्रत्येक भूमि की पृथक-पृथक विशेषतायें हुआ करती थी जिनके आधार पर भूमि का चयन किया जाता था ।

कृषि पद्धति :-

कृषि योग्य भूमि को क्षेत्र कहा गया है ।[67] अभिधानचिन्तामणि में खेत को क्षेत्रम्, वप्रः, केदार इत्यादि नामों से अभिहित किया गया है ।[68] खेत जोतने की क्रिया को कर्षण कहते थे तथा कभी-कभी दो तीन -तीन बार खेतों की जुताई की जाती थी ।[69] खेत जोतने का कार्य हल से किया जाता था तथा इसमें

लगे लोहफल हल को शम्ब कहते थे जिससे गहरी जोताई होती थी ।[70] दो बार जोते गये खेत को द्विहलम् तथा तीन बार जोते गये खेत को त्रिहलम् की संज्ञा दी गई है ।[71] साक्ष्यों में उल्लिखित है कई बार जुताई करने से क्षेत्रों की उर्वरता शक्ति में वृद्धि होती है ।[72] हल से जोते गये खेत को सीत्यम्, हुल्यम्[73] कहा जाता था । हल में जोता हुआ बैल को हीलक या सारिक की संज्ञा दी गई है ।[73अ] । बीज बोने की क्रिया को {वाप} वापन कहते थे । बीज प्राय: छीट कर बोया जाता था ।[74] कृषि पराशय में उल्लिखित है, वैशाख में बीज वपन उत्तम श्रेणी का होता है,जेष्ठ में मध्यम कोटि तथा आषाढ़ में निम्न श्रेणी और श्रावन में अत्यधिक खराब होता है ।[75] बीज को जमीन में गहराई के साथ वपन करना चाहिए[76] तथा बीज की देख रेख उचित ढंग से करना चाहिए क्योंकि फसल की उन्नति बीज पर निर्भर करती है ।[77] माघ, फाल्गुन में बीजों को इकट्ठा कर उसे सूर्य की रोशनी में अच्छी तरह सुखा कर रख लेना चाहिए ।[78] तत्पश्चात छोटे-छोटे थैलों में रख कर बन्द करना चाहिए तथा उसमें उगी घासों को काट देना चाहिए क्योंकि यदि घासों को नहीं काटा जायेगा तो फसल घास युक्त हो जायेगी ।[79] बीज बोने के बाद जोते गये खेत को बीजाकृतम् कहा गया है ।[80] फसल पक जाने के पश्चात कटनी करते थे फसल काटने वाले को लूनक कहते थे तथा खलिहान में लाने के बाद फसल की मडनी {मड़ाई} करते थे उसके उपरान्त निवार करते थे ।[81] अभिधानचिन्तामणि धान आदि से भूस अलग करने की क्रिया को निष्पाव:, पवनम्,पव: इत्यादि नाम दिया गया है ।[82] तथा ओसाए हुये

अर्थात भूसा से अलग किये हुये धान्य को पूतम् कहा गया है ।[83] अन्न रखने के स्थान को खलधानम्, खलम कहते थे ।[83ब] कलचुरि कालीन लक्ष्मण राज द्वितीय के कारीतलाई प्रस्तर अभिलेख में खलभिक्षा शब्द का उल्लेख है जिसका प्रयोग खलिहान के अर्थ में हुआ है । जहाँ फसलों को काटने के उपरान्त अनाज एकत्र किया जाता था ।[83अ] फसलें वर्ष में चार बार बोई जाती थी । शारदा जो शरद ऋतु में, हेमन्त जो हेमन्त ऋतु में में तथा ग्रैष्मक जो आश्विन् में बोयी जाती थी और अगहन में पकने वाली फसल को आग्रहायणिक कहते थे ।[84]

खेती में लोहे के उपकरणों का प्रयोग अधिक किया जाता था ।[85] उपकरणों में हसिया,[86], कुदाल,[87] खन्ती [88] इत्यादि प्रमुख है।प्राप्तकथन से स्पष्ट है कि वैश्यों को इस बात की जानकारी होनी चाहिए कि कौन बीज पास-पास बोना चाहिए और कौन दूर-दूर, किस प्रकार की फसल के लिये कौन सी भूमि अच्छी रहेगी और किस किस्म की बीज से कितनी उपज होगी ।[89] इसके अतिरिक्त पूर्व - मध्यकालीन कृति कृपि पराशय में कृषि के विषय में हमें विस्तार से चर्चा मिलती है ।

फसल :-
======

मेधातिथि ने सत्रह प्रकार के अन्न का उल्लेख किया है ।[90] अभिधान - चिन्तामणि में भी सत्रह प्रकार के अन्नों की सूची प्रस्तुत की गई है यथा लाल धान, जौ, मसूर, गेहूँ, हरा मूँग, उड़द, तिल, चना, चीना, टाँगुन, कोदो, राजमूँग, शालि, अरहर, मटर, कुलथी , सन् ।[91] तिलकमंजरी में भी विविध प्रकार के अन्न का प्रसंग मिलता है यवस, जौ, व्रीहि, तिल, तण्डुल आदि ।[92] अभिधानरत्नमाला में प्रसंगित है कि अनेक प्रकार के चावल, कोदो, सरसों, प्रियंगु, जार्तिल , निवार

इत्यादि की खेती होती थी ।[93] विभिन्न प्रकार के अन्नों की चर्चा अभिलेखों में भी प्राप्त होती है । (1067-1011 ई0) के भोजदेव कालीन ताम्रपत्र अभिलेख में विवरण प्राप्त होता है कि शयनपाट ग्राम में कोद्रद्रव (अनाज) तिल, मूंग, चावल, गेहूँ आदि के खेत थे ।[94] राजपूताना के अभिलेख में जौ की खेती के प्रमाण मिलते हैं ।[95] नागरी ताम्रपत्र अभिलेख में यव, गोधूम, इक्षु, की फसलों से युक्त ग्राम का उल्लेख है ।[96] इसके अतिरिक्त आसाम, बंगाल, मालवा तथा उत्तर प्रदेश, पश्चिमी भारत के अभिलेख मे अन्नों का उल्लेख अधिक मिलता है ।[97] ग्वालियर क्षेत्र में गेहूँ उत्पन्न होने का प्रमाण मिलता है ।[98]

विभिन्न अन्नों की फसलों के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के फलो एवं सब्जियों का भी विवरण प्राप्त होता है । अभिधानचिन्तामणि में आम, केला, बेर, नारंगी, इमिली, नीबू, नारियल, सुपारी, कद्दू, लौकी, पान, कपास इत्यादि का उल्लेख है ।[99] तिलकमंजरी में भी आम्र, कपित्थ (कैथ), नारियल, कटहल, खर्जूर, नीबू, गन्ना इत्यादि का प्रसंग है ।[100] साहित्यिक साक्ष्यों के साथ समकालीन अभिलेख में प्रचुर मात्रा में पान,[101] सूपारी,[102] की खेती के प्रमाण मिलते हैं । इसके अतिरिक्त नारियल,[103] ताड़,[104] आम,[105] अनार,[106] अंजीर,[107] केला [108] इत्यादि का भी उल्लेख है ।

सिंचाई :-
========

आलोचित काल में कृषि हेतु सिंचाई की व्यवस्था थी। यह सिंचाई कृत्रिम तथा अकृत्रिम साधनों से की जाती थी । सिवाई के अनेक साधनों का

उल्लेख साक्ष्यों में प्राप्त होता है। अपराजित पृच्छा में कहा गया है कि साधारणतया सिचाई के मुख्य साधन झील, नदी, कुआँ, तालाब, नहर, बाँध इत्यादि थे।[109] आचार्य शुक्र का कथन है कि जल की वृद्धि से राष्ट्र समृद्धशाली होता है। अत: राजा को चाहिये कि वह कूप, वापी, तड़ाग, नदियों के बाँध इत्यादि का निर्माण कराये।[110] राजतरंगिणी तथा द्वयाश्रय महाकाव्य में नहर निर्माण के विषय में प्रसंग मिलता है।[111] इसके अतिरिक्त कीर्ति कौमुदी, मोहराज - पराजय, हमीर मदमर्दन में भी सिचाई के साधनों का उल्लेख किया गया है।[112]

उपरोक्त साहित्यिक साक्ष्यों की श्रृंखला के साथ अभिलेखीय प्रमाणों में कूप, वापी,[113] तालाब,[114] नहर, बाध, रहट इत्यादि का प्रसंग प्राप्त है।

नादूल चाहमान शासक केहलदेव और उसके सामंत पुत्र अजयसिंह द्वारा कूप निर्माण कराये जाने का प्रसंग उल्लेखनीय है।[115] कूप निर्माण के कई उल्लेख कल्चुरी अभिलेखों में प्राप्त होते हैं।[116] लक्ष्मणराज द्वितीय के कारीतलाई प्रस्तर अभिलेख में सीढीयुक्त तथा बिना सीढी के कूपों का उल्लेख है।[117] सीढी युक्त कूपों को वापी भी कहा गया है।[118] टूटे हुये कूपों का पुन: निर्माण भी किया जाता था जिसका उल्लेख प्रबोधशिव के चंद्रेह प्रस्तर अभिलेख में मिलता है।[119]

भवदेव के भुवनेश्वर प्रस्तर अभिलेख से ज्ञात होता है कि भवदेव ने राधा ग्राम में एक तालाब का निर्माण कराया था।[120] एक अन्य लेख में वर्णित है कि सामंत मालसिंह ने एक तालाब का निर्माण कराया था जो सम्भवत: रीवा में था।[121] कल्चुरि राजा विजयसिंह के रीवा प्रस्तर अभिलेख वर्ष 944 से ज्ञात

है कि एक बड़े जलाशय के निर्माण के साथ ही कलयसिंह ने 1500 टंकक में एक बांध का निर्माण कराया था ।[122] रत्नदेव द्वितीय के अकलतरा प्रस्तर अभिलेख में बल्लभ राज द्वारा बल्लभ सागर बनाये जाने का प्रसंग है ।[123] एक अन्य उद्धरण से ज्ञात होता है कि बिहार के गया जिले में राजा रूद्रमन के गंगाधर नाम के मंत्री ने एक तालाब बनवाया था ।[124]

कल्चुरि राजा नरसिंह के लाल प्रस्तर अभिलेख में राजकुमार बल्लाकदेव द्वारा नहर निर्माण का उल्लेख है ।[125] एक अन्य उद्धरण से ज्ञात है कि नरसिंहदेव के सामंत राउत ने एक नहर का निर्माण करवाया था ।[126] सरोवरों, झीलों के निर्माण का भी उल्लेख कल्चुरि अभिलेखों में प्राप्त होता है ।[127]

सिचाई के साधों के साथ यहाँ अरहट्टों या अरघट्टों का उल्लेख किया जा सकता है ।[128] यह पानी निकालने का एक चक्र था जिसमे कई बाल्टियाँ लगी होती थी और बैलों की सहायता से उसके जरिये कुएँ से पानी निकाला जाता था ।[129] रहट को घन्टीयन्त्र कहा जाता था ।[130] हर्षचरित में घन्टीयन्त्र का उल्लेख आया है ।[131] महेन्द्र पाल द्वितीय के परतापगढ़ प्रस्तर अभिलेख (946 ईसवी) में अरघट्ट द्वारा सिचाई किये जाने का प्रसंग मिलता है ।[132]

इस प्रकार उपरोक्त साहित्यिक एवं विभिन्न अभिलेखीय साक्ष्यों की श्रृंखला में निहित प्रसंगों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि विवेच्यकाल में राजकीय प्रयत्नों के साथ-साथ व्यक्तिगत आधार पर सिचाई की व्यवस्था हेतु महत्वपूर्ण प्रयास किये गये ।

व्यापार :-

देश के आर्थिक उत्कर्ष एवं प्रगति में व्यापार का बहुत योगदान रहा है। यह परम्परा पूर्वकाल से निरन्तर स्वीकृत है। पूर्वकाल की भांति आलोच्य कालीन समाज में भी विभिन्न प्रकार के व्यापारों का प्रचलन था तथा देश की आर्थिक अर्थव्यवस्था में व्यापारीवर्ग की सक्रिय भूमिका दृष्टिगत होती है।[133] समाज में उन्हें उच्चस्थान और मान-सम्मान,प्रतिष्ठा प्राप्त थी। साक्ष्यों में व्यापारी एवं व्यापारिक गतिविधियों के विषय में पर्याप्त साक्ष्य उपलब्ध होते हैं, जिससे तत्कालीन व्यापारिक स्थिति का निरूपण किया जा सकता है।

प्राप्त अभिलेखीय एवं साहित्यिक साक्ष्यों से आन्तरिक (अन्तः-प्रदेशीय व्यापार) तथा विदेशी व्यापार पर प्रकाश पड़ता है।

आन्तरिक व्यापार :-

इस व्यापार के अन्तर्गत अन्तःप्रदेशीय व्यापार होता था तथा व्यापारी गण देश के विभिन्न भागों से आवश्यक वस्तुओं का आयात निर्यात करते थे। अभिलेखों में उल्लिखित हट्ट[134] तथा मण्डपिका [135] शब्द व्यापार को इंगित करते हैं। दामोदर ताम्रपत्र अभिलेख में उल्लेख मिलता है कि बाजार के निमित्त भूमि का क्रय किया जाता था।[136] अहार अभिलेख में वर्णन मिलता है कि मेवाड़ के सम्पन्न बाजार में दूर-दूर के व्यापारी यथा कर्नाट, मध्य प्रदेश, लाट, टक्क आदि स्थानों से व्यापार के निमित्त आते थे।[137] प्रतिहारों

के एक अभिलेख में प्रसंगित है कि बंका नामक वैश्य भिन्न-भिन्न स्थानों की हाटों से क्रय विक्रय की सामग्री खरीद कर लाता था ।[138] अन्तरप्रदेशीय व्यापार का एक अन्य उदाहरण पेहोआ अभिलेख है । प्रस्तुत लेख में वर्णित है कि देश के विभिन्न स्थानों से अश्वों के व्यापारी वहाँ एकत्र होते थे ।[139] कामन अभिलेख कम्मबली हट्ट का प्रसंग है जहाँ पशुओं की बाजार लगती थी ।[140] सोमनाथ मंदिर अभिलेख में वर्णित है कि शेरगढ़ व्यापार और उद्योग का प्रसिद्ध केन्द्र था ।[141] स्पष्ट है कि इन हाटों में व्यापारीगण व्यापार के निमित्त आते होंगे ।[142]

मनु पर भाष्य करते हुये मेधातिथि ने लिखा है कि वैश्य लोग अन्तर - प्रदेशीय व्यापार में संलग्न रहते थे जो दूसरे प्रदेश की विशिष्ट वस्तुयें क्रय करके तथा अपने राज्य में {अर्थात जहाँ वे निवास करते थे} विक्रय हेतु लाते थे ।[143] समराइच्चकहा में प्रसंगित है धरण नामक व्यापारी जो माकन्दी का रहने वाला था, वह क्रय - विक्रय हेतु अचलपुर जाता था । और अपने नगर{माकन्दी} के लिये उपयुक्त वस्तुयें क्रय करके ले आता था ।[144]

कथासरितसागर में ऐसे व्यापारी का प्रसंग मिलता है जिसने अपने पुत्र को व्यापारिक लाभ हेतु दूसरे देश जाने की आज्ञा दी थी ।[145] इसी ग्रंथ में प्राप्त अन्य विवरण से ज्ञात होता है कि पाटलीपुत्र का व्यापारी व्यापार हेतु वल्लभी जाता था ।[146] कुवलमाला से विदित है कि उत्तर और दक्षिण के विभिन्न प्रान्तों के व्यापारी एक साथ मिल जाया करते थे ।[147]

उपरोक्त उद्धरण अतीत कालीन आन्तरिक व्यापार को इंगित करते हैं ।

विदेशी व्यापार :-

अन्तर्प्रदेशीय व्यापार के अतिरिक्त अधीत काल में विदेशों से भारतीय व्यापारिक सम्बन्ध होने के अनेक साक्ष्य उपलब्ध हैं। सारणेश्वर प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि नगरों में बाजारोंकी व्यवस्था थी। इन नगरों में वाणिज्य व्यवसाय हेतु व्यापारी वर्ग सुदूर देशों, क्षेत्रों से आते थे।[148] जालौर अभिलेख में ऐसे बाजार का प्रसंग प्राप्त है जहाँ से बाहर भेजने के लिये वस्तुयें एकत्र की जाती थी।[149] यह व्यापार मुख्य रूप से चीन, अरब, दक्षिण पूर्व एशिया तथा अन्य द्वीपों से होता था।

इस प्रकार भारत और चीन के व्यापारिक सम्बन्धों की प्रगाढ़ता को स्पष्ट करते हुये बाण ने लिखा है, तत्कालीन समाज में चीनांशुक नामक वस्त्र अत्यधिक लोकप्रिय था।[150] दूसरे ग्रन्थ कुट्टनीमतम् तथा नैषधीयचरित में चीनांशुक प्रयोग किये जाने का उल्लेख है।[151] मार्कोपोलो ने लिखा है कि भारत चीन से सिल्क के कपड़े, सोना, तथा सन्दल प्राप्त करता था।[152] वैजयन्ती में चीनपट्ट शब्द टिन के लिये तथा चिन शब्द लोहे के अर्थ में प्रयुक्त हुआ जिससे स्पष्ट होता है कि भारत चीन से कुछ मात्रा में इन धातुओं को प्राप्त करता था।[153] ।। वीं शताब्दी के एक तमिल अभिलेख से संकेत मिलता है कि दक्षिण भारत चीनी सोना प्राप्त करता था।[154] तंजोर से प्राप्त राजेन्द्र कालीन (1019 ईसवी) के एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि किसी व्यापारी ने चीन का काफी सोना दान में दिया था।[155]

प्रबन्धचिन्तामणि में अरब के शक्तिशाली व्यापारी सैय्यद का प्रसंग है ।[156] अरब के साथ व्यापारिक सम्बंध का उल्लेख करते हुये हेमचन्द्र ने लिखा है कि अरब से घोड़ों का आयात भारत के लिये किया जाता था ।[157] तथा भारत से जाने वाली वस्तुओं का उल्लेख इब्बन् खुरदब्बा ने भी किया है जिससे भारत तथा अरब के व्यापारिक सम्बन्ध की पुष्टि होती है ।[158]

अधीत कालीन साहित्यिक साक्ष्यों में प्रसंगित विवरणों से दक्षिण पूर्व एशिया से भारतीय व्यापारिक संबन्ध की पुष्टि होती है । यशस्तिलक में उल्लिखित है पद्मिनीखेटपट्टन का निवासी भद्रमित्र अपने समान धन और चरित्र वाले वणिक् पुत्रों के साथ सुवर्णद्वीप व्यापार करने के लिये गया था ।[159] इसी संदर्भ में तिलकमंजरी में सुवर्णद्वीप के मणिपुर नगर के वासी वैश्रवण नामक सांयात्रियों (व्यापारियों) के साथ नाव पर विपुल सामग्री लादकर द्वीपान्तरों से व्यापार करता हुआ सिंहलद्वीप की रंगशाला नगरी में आया था ।[160] समराइच्चकहा में वर्णित है, भारतीय व्यापारी महाकटाह जाते थे ।[161] व्यापारियों द्वारा सुवर्णद्वीप जाने की कथा का उल्लेख वृहत्कथाश्लोकसंग्रह और कथाकोश में भी है ।[162] हरिषेण द्वारा रचित वृहत्कथाकोष में भारतीय व्यापारियों द्वारा सुवर्ण द्वीप तथा रत्नद्वीप जाने का उल्लेख है ।[163]

विशाल देशों के अतिरिक्त लघुद्वीप समूह यथा सुमात्रा, जावा, बोर्नियो इत्यादि द्वीपों से व्यापारिक सम्बन्धों का संकेत हमें विवेच्य कालीन ग्रन्थों में मिलता है ।[164]

व्यापार में मार्गों की महत्वपूर्ण भूमिका थी । इन मार्गों से व्यापारी सुदूर देशों में जाकर अपना व्यापार करते तथा विभिन्न मार्गों से होते हुये व्यापारीगण व्यापार हेतु दूसरे प्रान्तों से सम्पर्क स्थापित करते थे । मार्गों में स्थल तथा जल दोनों ही प्रकार के थे ।

स्थल मार्ग :-
==========

प्राचीन ग्रन्थों में मार्गों की समुचित व्यवस्था का संकेत मिलता है । पाणिनी ने ऐसे अनेक वाणिज्य पथों का उल्लेख किया है जो एक नगर को दूसरे से मिलाते थे ।[165] मैगस्थनीज ने भी मार्गों की व्यवस्था के विषय में चर्चा की है कि सड़कों पर दूरदर्शक या मार्ग निर्देशक पत्थर लगे रहते थे ।[166] जिससे ज्ञात है कि मौर्य तथा मौर्योत्तर काल में मार्ग व्यवस्था अच्छी थी । चीनी यात्री फाहियान ने लिखा है पश्चिमी भारत से पूर्वी भारत तक विभिन्न नगरों एवं स्थानों का भ्रमण किया किन्तु उसने अपने को कहीं भी असुरक्षित नहीं महसूस किया ।[167] अतः गुप्त काल में मार्गों का विकास हुआ तथा यात्रा मार्ग सुरक्षित थे । व्यक्ति अपनी सुविधानुसार यात्रा करते थे । जबकि सातवीं शताब्दी में आने वाले चीनी यात्री ह्वेनसांग[168] ने अपने यात्रा विवरण में लिखा है कि उसे मार्ग में अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ा तथा मार्ग में मिलने वाले लुटेरों का उल्लेख कम से कम दो बार किया है । ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल में राजनीतिक विशृंखलता थी । देश अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो चुका था । जिसने केवल सामाजिक परिवेश को ही

पाँचवा मार्ग कन्नौज से बेजान या नारायण तक और तत्पश्चात् गुजरात की राजधानी को जाता था। छठाँ मार्ग मथुरा से धार ﴾ मालवा की राजधानी ﴿ तक पहुँचता था। साँतवाँ मार्ग धार से उज्जैन को संयुक्त करता था। आठवाँ मार्ग धार से होकर मन्दगिरि ﴾ गोदावरी ﴿ तक जाता था। नवाँ मार्ग धार से पश्चिम की ओर सागरतटीय तान ﴾ आधुनिक थान ﴿ को जोड़ता था। दसवाँ मार्ग बंजान से काठियावाड़ के दक्षिण तटीय सोमनाथ तक फैला था। ग्यारहवाँ मार्ग अनहिलवार ﴾ अनहिलवाटन ﴿ से बम्बई के पश्चिमी तट तान तक जाता था। बारहवाँ मार्ग बजान से भाटी ﴾ भटिण्डा ﴿ होते हुए सिन्धु नदी के मुहाने पर स्थित लोहरानी ﴾ सम्भवतः वर्तमान कराँची ﴿ तक पहुँचता था। तेरहवाँ मार्ग कन्नौज से काश्मीर तक जाता था। चौदहवाँ मार्ग कन्नौज से पानीपत, अटक, काबुल और गजन तक पहुँचता था। पन्द्रहवाँ मार्ग ब्रहान से अधिष्ठान ﴾ काश्मीर की राजधानी ﴿ तक जाता था।[172] बारहवीं सदी के लेखक हेमचन्द्र ने अनेक वाणिज्य पथों का उल्लेख किया, उत्तरपथ ऐसा विस्तृत मार्ग था जो राजगृह से गांधार तक जाता था। इस मार्ग का पूर्वी मार्ग तक्ष - शिला होता हुआ हस्तिनापुर, कान्यकुब्ज, प्रयाग और पाटलिपुत्र को संयुक्त करता हुआ ताम्रलिप्त तक जाता था।[173] इसके अतिरिक्त पूर्वमध्य काल में कामरूप से उत्तरी बर्मा होकर चीन जाने वाला मार्ग का बहुत अधिक प्रयोग होता था। कियातान ﴾ 785 - 805 ﴿ ने अपने मार्ग विवरण में टोनकिन से कामरूप तक का विस्तृत विवरण दिया है।[174] स्पष्ट है कि काफी यात्री

भारत से चीन इस मार्ग से जाते थे। एक अन्य मार्ग बिहार से तिब्बत होकर चीन जाता था। तबकातर-ए-नासिरी में लिखा है कि अनेक व्यापारी इस मार्ग के द्वारा घोड़े लाते थे।[175]

जल मार्ग :-
=========

आन्तरिक तथा बाह्य व्यापार हेतु जल मार्ग का भी उपयोग किया जाता था।देश के अन्दर विभिन्न नदियों एवं समुद्री मार्ग द्वारा यात्रा किये जाने के अनेक प्रसंग मिलते हैं जिससे तत्कालीन जलमार्ग की पुष्टि होती है। उक्ति - व्यक्ति प्रकरण से ज्ञात होता है कि पूर्वी उत्तर प्रदेश में बहुत लोग नदियों द्वारा यात्रा करते थे।[176] राजतरंगिणी में भी नदियों द्वारा यात्रा करने का अनेक स्थानों पर उल्लेख है।[177] गाहड़वाल शासकों के अभिलेखों से ऐसा प्रतीत होता है कि सरकार की अपनी नावें होती थी जिन्हें नाविकों और व्यापारियों को किराये पर दिया जाता था।[178] स्पष्ट है इस काल में जलमार्ग द्वारा यात्रा की जाती थी। नदियों के साथ-साथ समुद्र मार्ग द्वारा यात्रा किये जाने की साक्ष्य उपलब्ध होते हैं। समराइच्चकहा में उल्लिखित है ताम्रलिप्त से चला जहाज दो महीने में सुवर्णभूमि पहुँचा था।[179] कभी-कभी सायांत्रिकों को प्राकृतिक विपदा एवं कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। तिलकमंजरी वर्णित है, प्रियदर्शना ऐसे ही एक व्यापारी की पुत्री थी जिसका जहाज टूट जाने पर कैवर्त्तों ने उसे बचा लिया था।[180] दशकुमारचरित में समुद्र की लहरों की चोट से नाव डूब जाने का प्रसंग मिलता है।[181] कतिपय साक्ष्यों से इस तथ्य की

पुष्टि होती है कि समुद्र तटीय कुछ शासक तो स्वयं व्यापारिक जहाज को लूट लेते थे । समुद्री डाकू बहुधा कच्छ की खाड़ी से श्री लंका के तट तक, दजला नदी के डेल्टे में, लाल सागर के दक्षिणी भाग में और जंजीबार तक, व्यापारियों के जहाजों को लूट लेते थे ।[182] उधर अंडमान टापू[183] के निकट और इंडोनेशिया[184] तक ये समुद्री डाकू लूट पाट करते थे । इस काल के धर्मशास्त्रों ने समुद्र यात्रा न करने पर बल दिया है । ऐसा प्रतीत होता है समुद्री डाकुओं के भय के कारण भारतीय व्यापारी दूर के देशों की यात्रा नहीं करते होंगे । परन्तु कुछ ऐसे तथ्य प्राप्त होते हैं जिससे ज्ञात होता है कि नवी शताब्दी के द्वितीय चरण में स्थल मार्ग की साथ समुद्र मार्ग का प्रयोग यात्रा में पर्याप्त किया जाता था । इत्सिग के विवरण से ज्ञात होता है कि भारत आये 60 चीनी यात्रियों में 36 समुद्र द्वारा गये थे ।[185] अलमसूदी ने लिखा है कि भारत के पोत बसरा, सिरफ आमन, जावा, और चम्पा से होकर कैन्टन तक जाते थे ।[186]

इस प्रकार स्पष्ट होता है इन मार्गों से अन्तर्वैदेशिक व्यापार होता था । तत्कालीन युग में भारत का सम्बंध पूरब और पश्चिम दोनों ओर के देशों से अत्यन्त सुखद था तथा सुविधानुसार व्यापारिक समुदाय का पारस्परिक आदान-प्रदान हुआ करता था ।

बन्दरगाह :-

अधीत कालीन साक्ष्यों से अनेक भारतीय बन्दरगाह की सूचना मिलती है । यथा बंगाल में ताम्रलिप्त भारत के बड़े बन्दरगाह में एक था । जहाँ से

दक्षिण पूर्व एशिया को जहाज जाते थे ।[187] इसके साथ सप्तग्राम भी एक प्रमुख बन्दरगाह के रूप में था ।[188] दक्षिण भारत के पूर्वी तट पर स्थित बन्दरगाहों में कलिंगपट्टम, चिकाकुली , बानपुर और रामेश्वर इत्यादि हैं ।[189] अरब लेखकों ने अनेक बन्दरगाह का उल्लेख किया है । यथा - कावेरीपट्टनम्, नाग - पटटनम्, अधीरामपट्टनम्, टंडण ( ) देवीपट्टनम् इत्यादि ।[190] अभिलेख से ज्ञात है कि इनमें नागपट्टनम मुख्य बन्दरगाह था ।[191]

अरब लेखकों ने पश्चिमी समुद्री तट पर स्थित बन्दरगाहों की विस्तृत सूची प्रस्तुत की है ।[192] गुजरात के बन्दरगाहों का अन्तर्राष्ट्रीय समुद्रिक व्यापार में विशेष भूमिका थी । अलइदरिसी से ज्ञात है कि भृगुकच्छ (बड़ौच) ऐसा प्रमुख बन्दरगाह था जहाँ चीन और सिन्ध के व्यापारिक जहाज आते थे ।[193] मार्कोपोलो ने भी इसकी व्यापारिक महत्ता पर प्रकाश डाला है ।[194]

उपरोक्त विवरणों से स्पष्ट होता है भारतीय पूर्वी तथा पश्चिमी समुद्रीय तट पर स्थित विभिन्न बन्दरगाह राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के मुख्य केन्द्र थे । इन बन्दरगाहों से भारतीय सामग्री तथा विदेशों से आने वाली विभिन्न सामग्री की आयात - निर्यात की प्रक्रिया संचालित की जाती थी ।

पूर्वमध्यकालीन साक्ष्यों में भारत से विभिन्न देशों को निर्यात की जाने वाली वस्तुओं का विवरण प्राप्त होता है । इब्नखुर्दवाह ने भारत से निर्यात की जाने वाली वस्तुओं में मुसब्बर की लकड़ी, चन्दन की लकड़ी, कपूर और कपूर

का पानी, जायफल, नारियल, साग सब्जियाँ, मखमल, सूती वस्त्र, हाथी दाँत के बने समान इत्यादि का उल्लेख किया है ।[195] मार्कोपोलो ने लिखा है, भारतीय व्यापारी अपने साथ मसाले, कीमती पत्थर, मोती, सिल्क के कपड़े, सोना आदि व्यापारिक सामग्री लेकर चलते थे ।[196] समराइच्चकहा में उल्लिखित है व्यापारी विभिन्न द्वीपों में निर्यात की जाने वाली वस्तुयें लेकर जाते थे ।[197]

इस प्रकार जहाँ भारतीय व्यापारिक बड़े पैमाने पर विभिन्न सामग्री का निर्यात करते थे, वहीं विदेशों से विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का आयात किया जाता था । चाउ जुकुआ ने लिखा है कि दक्षिण पूर्व एशिया के टापुओं से रेशम, चीनी के बर्तन, कपूर, खेतचीनी, लौंग, इलायची आदि भारत लाये जाते थे ।[198] इस काल के साहित्य में कपूर, सुपारी, पान, चन्दन, लौंग, नारियल, केला, कटहल, खजूर का भी उल्लेख मिलता है ।[199] चीन से भारत को रेशम प्राप्त होता था ।[200] तथा अरब से ताँबा, सीसा और खजूर, बसरा से हाथी दाँत इत्यादि भारत लाये जाते थे ।[201] पश्चिमी देशों के घोड़ों का इस काल में आयात होता था ।[202]

<u>व्यापारिक स्थिति :-</u> पूर्वमध्य कालीन आन्तरिक एवं विदेशी व्यापारिक गतिविधियों का विवेचन करने के उपरान्त यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन समाज में व्यापार पर्याप्त प्रचलन एवं प्रसार था। परन्तु व्यापार एवं वाणिज्य की स्थिति के विषय में ऐसा ज्ञात होता है कि इस काल में वाणिज्य एवं व्यापार में ह्रास हुआ। राजनैतिक अस्थिरता, सामंती व्यवस्था, व्यापारियों का भूमि सम्पत्ति अधिकारी होना, करों की अधिकता तथा स्वर्ण मुद्राओंकी अल्पता ही प्रमुख कारण प्रतीत होता है।

इस प्रकार लगातार होने वाले विदेशी आक्रमण तथा आपसी सामंती विद्रोह के कारण मार्ग तथा यातयात में बाधा उत्पन्न हो गई थी। मेधातिथि का कथन है कि राजनैतिक अस्थिरता के कारण व्यापारी वाराणसी तक पहुँचने में असमर्थ थे।[203] मार्ग में उन्हें कठिनाईयों का सामना करना पड़ता। लुटेरे तथा सामंत शासकों द्वारा लूटमार के उदाहरण प्राप्त होते हैं। त्रिषष्टि शलाका पुरूष चरित के वर्णन से स्पष्ट है कि वर्षा ऋतु में सड़कों पर गाड़ियाँ चलाना बहुत दुष्कर कार्य होता था।[204] सड़कें ऊँची नीची होती थी उनको समतल नहीं किया जाता था।[205] त्रिषष्टिशलाका पुरूष चरित[206] और उपमितिभव प्रपंच कथा[207] से ज्ञात है कि व्यापारियों को लुटेरों का बहुत भय रहता था।

पुरातन प्रबन्ध संग्रह से ज्ञात है कि नाडूल के चाहमान वंश का संस्थापक राजकुमार लक्ष्मण द्वारा एक कारवाँ लूटा गया था।[208] वास्तुपालचरित से

स्पष्ट होता है, मांडलिक घूघुल अक्सर व्यापारियों के कारवाँ को लूटता था ।[209] इसके अतिरिक्त प्रबन्धकोश[210], कथासरितसागर[211] में लुटेरे द्वारा लूटमार करने के प्रसंग मिलते हैं । दशकुमार चरित में वर्णित है कि लुटेरे धनिकों को गाँव से पकड़कर ले जाते थे और उन्हें बन्धक में रखकर उनका समस्त धन छीन लेते थे ।[212]

करों की अधिकता भी व्यापारिक पतन का मुख्य कारण प्रतीत होता है । व्यापारियों को राजमार्ग पर तरह-तरह के कर देने पड़ते थे जिनके भय से कभी-कभी वे जंगल के रास्ते से यात्रा करते थे ।[213] उदाहरण स्वरूप समुद्रगुप्त का बिहार प्रस्तर स्तम्भ अभिलेख में वणिक् द्वारा चुंगीकर दिये जाने का प्रसंग है ।[214] 955 ई0 के अभिलेख में उल्लिखित है कि व्यापारिक माल से लदे प्रत्येक घोड़े पर चुंगी देना पड़ता था ।[215] एक अन्य अभिलेख से ज्ञात है कि प्रत्येक कारवाँ से जिसमें दस से अधिक ऊँट और 20 से अधिक बैल हो तो उनसे एक - एक पैला वसूल करें ।[216]

सामंती वर्गों का उदय भी विवेच्य कालीन क्षयिमान व्यापारिक स्थिति का एक प्रमुख कारण था जिसने काफी हद तक अर्थव्यवस्था को प्रभावित किया । अधिक संख्या में भूमिदान और सामन्तीकरण प्रक्रिया के कारण भूमि और शक्ति का असमान वितरण हुआ । जिससे व्यवसायिक पक्ष तथा व्यापारियों का जीवन प्रभावित हुआ । प्रस्तुत तथ्य की पुष्टि पूर्वमध्य कालीन अभिलेखों में वर्णित भूमि दान के साथ शिल्प वर्ग तथा व्यवसायिक वर्ग तथा व्यापारियों को ग्रहीता को

दिये जाने के विवरणों से भी होती है, जिसके अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं।[217] फलस्वरूप उनकी व्यवसायिक गतिशीलता अवरूद्ध सी हो गयी थी।

सिक्कों की अल्पता के तथ्य को प्रस्तुत करते हुये आर० एस शर्मा का कथन है, सामान्य रूप से कुषाणों और गुप्त शासकों के काल में स्वर्ण मुद्राओं की अपेक्षाकृत अधिकता उनकी व्यापारिक समृद्धि का द्योतक था। परन्तु गुप्तोत्तर काल में मौद्रिक स्थिति कमजोर थी तथा 650 से 1000 ई० तक स्वर्ण मुद्राओं का आपेक्षित अभाव दृष्टिगत होता है। सिक्कों की कमी के कारण व्यापारिक पक्ष अधिक प्रभावित हुआ तथा आन्तरिक तथा विदेशी व्यापार में गिरावट आई।[218]

इसी सन्दर्भ में जहाँ एक ओर पूर्वमध्य युग में व्यापारिक ह्रास के संकेत मिलते हैं, वहीं दूसरी ओर कुछ इस प्रकार के साक्ष्य उपलब्ध होते हैं जिससे ऐसा प्रतीत होता है, इस काल में आन्तरिक तथा विदेशी दोनों ही व्यापार गतिशील था। प्राप्त अभिलेखों में शहर व गाँव के बाजारों का उल्लेख मिलता है जो स्थानीय तथा अर्न्तप्रदेशीय व्यापार के केन्द्र थे।[219] प्रस्तुत सन्दर्भ में अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर प्रो० बी० डी० चट्टोपाध्याय ने यह स्पष्ट किया है कि उत्तर भारत के (हरियाणा करनाल) पेहोवा, सियादोनि (ललितपुर) तत्तानन्दपुर (बुलन्दशहर) तथा गोपगिरि (ग्वालियर मध्य प्रदेश) नगर थे तथा पूर्वमध्य काल में आन्तिरिक तथा बाह्य व्यापार के केन्द्र के रूप में विद्यमान थे।[220]

साक्ष्यों से यह भी विदित होता है, इस काल में राज्य की ओर से व्यापारियों की सुविधा एवं सुरक्षा की व्यवस्था की जाती थी । प्रबन्धकोष से ज्ञात है कि राजा और राजकुमार स्थानीय स्वामी से कारवाँ की सुरक्षा करते थे, जो उन्हें लूटा करते थे । तथा उनसे रक्षा हेतु सैनिक व्यवस्था करते थे ।[221] मेधातिथि ने मत प्रस्तुत किया है, राजा को लुटेरों और राजाओं दोनों से व्यापारियों की रक्षा करनी चाहिए ।[222] तिलकमंजरी[223] एवं कृत्यकल्प तरू[224] से ज्ञात होता है कि मुख्य मार्गों के निकट पीने के पानी की व्यवस्था होती थी । यात्रियों के ठहरने के लिये विश्राम गृह होते थे ।[225] इन धर्मशालाओं में यात्रियों को भोजन, गरम पानी और तेल भी दिया जाता था ।[226]

उद्योग :- पूर्वमध्ययुगीन समाज में विभिन्न प्रकार के उद्योग धन्धों का प्रचलन था। तत्कालीन समाज में प्रचलित एवं विकसित उद्योगों में कुछ प्रमुख उद्योगों का विवरण निम्नवत् है -

1. वस्त्र उद्योग :- अधीत कालीन उद्योगों में वस्त्र उद्योग एक प्रमुख उद्योग था। मेधातिथि के अनुसार विविध प्रकार के वस्त्र कपास, ऊन तथा रेशम के वस्तुओं से निर्मित किये जाते थे। जिससे स्पष्ट है कि सूती, ऊनी, रेशमी तीनों ही प्रकार के वस्त्र प्रचलित थे।[1] मानसोल्लास से विभिन्न प्रकार के वस्त्रों की सूची के साथ वस्त्र निर्माण केन्द्रों के विषय में भी सूचना प्राप्त है ; यथा मुल्तान, अनिलवाड़नम, बंगाल, पोदालपुर, चीरपलि, नागपट्टनम्, चोलदेश, टोण्डमण्डलम्, पंचपट्टनम्, कलिंगदेश।[2] सोमदेव ने भी अनेक प्रकार के वस्त्रों का उल्लेख किया है।[3] हर्षचरित में उल्लिखित है, कामरूप के राजा ने हर्ष को रेशम, क्षौम से निर्मित वस्त्र तथा चिन्नपट वस्त्र उपहार स्वरूप दिये थे।[4] विदेशी यात्रियों के विवरणों में भी वस्त्र उद्योग के संदर्भ में प्रमाण मिलते हैं। ह्वेनसांग ने उत्तर भारत में प्रयोग किये जाने वाले विविध प्रकार के वस्त्रों का उल्लेख किया है[5]। इब्नखुरदब्बा के कथानुसार बंगाल के सूती वस्त्र भारत से विदेशों को भेजे जाते थे।[6]

अलइद्रीसी ने मत प्रस्तुत किया है कि मुल्तान में निर्मित सूती वस्त्र सम्पूर्ण देश में विक्रय हेतु जाते थे।[7] मार्कोपोलो ने वस्त्र उद्योग के विषय में विस्तृत उल्लेख किया है। उच्चकोटि के सूती वस्त्र, बरकम, कैम्बे और पाला - बार में उत्पादित किये जाते थे और गुजरात से निर्यात किये जाते थे[8]। उनके

अनुसार गुजरात में कपास के बड़े-बड़े पौधे से जो 20 साल पुराने होने पर छः छः गज ऊँचे हो जाते थे, काफी रूई पैदा होती थी[9] । बारंगल में सर्वोत्तम कोटि का सूती वस्त्र उत्पादित किये जाते थे[10] ।

रेशमी वस्त्रों के सन्दर्भ में शिक्षा समुच्चय में वर्णित है, प्राचीन परम्परा के अनुरूप इस काल में भी वाराणसी उच्चकोटि के रेशमी वस्त्रों के लिये प्रसिद्ध था [11] ।

अभिलेखीय साक्ष्यों में वस्त्र उद्योग के सन्दर्भ में प्रमाण उपलब्ध होते हैं । अर्थुन अभिलेख से ज्ञात है कि वस्त्र बाजार में विक्रय हेतु लाये जाते थे [12] । बंगाल वस्त्र निर्माण के लिये प्रसिद्ध था[13]। श्री धारणराव देव के केलान ताम्रपत्र अभिलेख में भगवत तथागतरत्न के सेवार्थ वस्त्र दिये जाने का उल्लेख है[14] ।

इस प्रकार उपरोक्त साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि विवेच्य काल में वस्त्र उद्योग प्रगति पर था । और यह उद्योग राष्ट्रीय स्तर पर ही प्रचलित नहीं था अपितु अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर भी काफी ख्याति प्राप्त कर चुका था, और 11वीं, 12वीं श०० में भारत वस्त्र निर्माण के क्षेत्र में विशेष सफलता प्राप्त कर चुका था ।[15]

प्रस्तर उद्योग :- देश के विभिन्न भागों में निर्मित बहुसंख्यक इमारतें, प्रसाद, भवन, मंदिर, मठ, बिहार इत्यादि आलोच्य कालीन प्रस्तर उद्योग पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं । कल्हण ने लिखा है कि कश्मीर के राजा ने हजारों अग्रहारों, मठों, तालाबों और उद्यानों से युक्त इमारतें बनवाई

थी ।[16] प्राचीन जैन ग्रन्थों में आठ तल वाले प्रसादों का उल्लेख है कि ये प्रसाद सुन्दर शिखर युक्त तथा ध्वजा पताका छत्र और मालाओं से सुशोभित थे ।[17] बाणभट्ट कृत कादम्बरी में वर्णित महा प्रसाद का उल्लेख प्रस्तर कलात्मकता को व्यक्त करता है ।[18] यशस्तिलक में त्रिभुवन तिलक प्रसाद का वर्णन है जो श्वेत पाषाण संगमरमर से निर्मित था ।[19] समराइच्चकहा में सवतोभ्रद प्रसाद तथा विभान छन्दक प्रसाद का विस्तृत एवं सुन्दर वर्णन प्राप्त होता है ।[20]

उपरोक्त साक्ष्यों में वर्णित तथ्यों की पुष्टि विदेशी लेखकों के प्रशंसात्मक शब्दों से और भी स्पष्ट होती है । तवबकातेनसीरी ने लिखा है कि मथुरा में निर्मित पत्थरों के हजारों भवन और देवी मूर्तियों की भव्यता एवं सुन्दरता इतनी अतुलनीय थी कि हजारों दिनार खर्च करने तथा दो हजार वर्ष तक निरंतर कारीगरों द्वारा कार्य किये जाने पर भी इनका निर्माण सम्भव नहीं है ।[21]

अलइदरीसी के अनुसार गृह, ईटों, पत्थरों की पट्टियां तथा प्लास्टर से निर्मित किये जाते थे ।[22] अभिलेखीय साक्ष्यों में अहार अभिलेख में पत्थर की ईटों से निर्मित गृहों का प्रसंग प्राप्त होता है ।[23] नयपालदेव का इरदा ताम्र - पत्र लेख प्रस्तर कला के महत्त्वपूर्ण उदाहरण के रूप में प्राप्त है । प्रस्तुत लेख से ज्ञात है कि प्रियंगु शहर की चारदीवारी अग्नि के समान सुनहरे, भव्य पत्थरों से निर्माण की गई थी ।[24] राजेन्द्र प्रथम का तन्जौर मंदिर अभिलेख में गगनचुम्बी दुर्ग का उल्लेख है ।[25]

पुरातात्त्विक साक्ष्यों के रूप में इस काल में प्राप्त असंख्य देवालय, मंदिर, मूर्तियां भी प्रस्तर उद्योग के उदाहरण के रूप में देखे जा सकते हैं । इनमें विशेष रूप खजुराहो का महादेव मंदिर तथा भुवनेश्वर का प्रसिद्ध लिंगराज मंदिर प्रसंगित किया जा सकता है ।[26] ग्वालियर अभिलेख में विष्णु भगवान के भव्य और सुन्दरर मंदिर का उल्लेख मिलता है । लेख में एक शिलाखण्ड पर निर्मित विष्णु प्रतिमा का भी प्रसंग है ।[27] भोजदेव कालीन वाग्देवी मूर्ति अभिलेख में काले संगमरमर पर निर्माण की गई चार फीट ऊँची आकर्षक सरस्वती प्रतिमा उल्लेखनीय है,[28] जिसे परमार कालीन मूर्तियों का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण कहा गया है ।[29]

3. <u>धातु उद्योग :-</u> भारतीयों द्वारा विभिन्न धातुओं का प्रयोग इस काल में कोई नवीन उद्योग न था अपितु इसका प्रचलन अति प्राचीन काल से किया जा रहा है। वैदिक ग्रन्थों में वर्णित कर्षण (लोहा[30]) अयस[31] (ताँबा), हिरण्य[32] (सुवर्ण), रजत[33] (चाँदी, त्रपु[34] कांस्य इत्यादि शब्द धातु उद्योग को इंगित करते हैं । पूर्वमध्य कालीन साक्ष्यों में भी विभिन्न धातुओं का प्रसंग प्राप्त होता है । अभिधान रत्नमाला,[35] अभिधानचिन्तामणि[36], भविष्य पुराण[37] में धातुओं की सूची में सुवर्ण, रजत, ताम्र, पीतल, कांस्य, रांगा, सीसा, लोहा का वर्णन मिलता है । अभिधानरत्नमाला से धातुओं के औद्योगिक केन्द्र के विषय में भी सूचना मिलती है कि सौराष्ट्र पीतल की वस्तुओं और बंगाल टीन की वस्तुओं के लिये विशेष प्रसिद्ध थे ।[38]

उपरोक्त सूचीबद्ध विभिन्न धातुओं से अनेक वस्तुओं का निर्माण किया जाता था। जिसमें मूर्तियां[39], घरेलू बर्तन[40], विविध आभूषण[41], राजसिंहासन[42] इत्यादि। इसके अतिरिक्त अस्त्र-शस्त्र यथा तलवार, भाला, चाकू, तीर, ढाल इत्यादि बनाये जाते थे।[43] इस प्रकार धातुओं का विभिन्न दृष्टियों से प्रयोग किया जाता धातु उद्योग की व्यापकता को प्रकट करता है।

4. सुवर्ण उद्योग :- धातुओं में सुवर्ण उद्योग का प्रचलन पूर्वमध्य काल में अत्यधिक दृष्टिगत होता है। अभिधानचिंतामणि में सुवर्ण को 33 नामों से अभिहित किया है। सुवर्ण, स्वर्ण, हेम, हिरण्मय, हाटक, वसु, अष्टापद, कांचन, कल्याण, कनक, महारजत, गांगेय, रूक्म, कलधौत, लोहोत्तम, वह्निबीज, गारूड, गौरिक, जातरूप, तपनीय, चामीकर, चन्द्र, अर्जुन, निष्क, कार्त्तस्वरम, कर्बुर, जाम्बूनदम, शातकुम्भ, रजत भूरि, भत्तम[44]।

उपरोक्त नामों की अधिकता तत्कालीन समाज में सुवर्ण महत्ता एवं उपयोगिता को स्वयं ही सिद्ध करती है। सुवर्ण की मूर्तियां, आकर्षण आभूषण बर्तन तथा अन्य विविध वस्तुओं का उल्लेख साक्ष्यों में पर्याप्त प्राप्त होता है। कल्हण ने लिखा है कि कश्मीर में सोने, चांदी की मूर्तियां तथा मूर्तियों के आभूषण भी स्वर्ण के हुआ करते थे।[45] मुस्लिम लेखकों ने भी स्वर्ण मूर्तियों का उल्लेख करते हुये वर्णित किया है कामरूप में एक ऐसा भव्य मंदिर था जहां बहुसंख्यक सोने - चांदी की मूर्तियां थीं। उनमें कुछ इतनी विशाल थी जिसका वजन दो तीन हजार मिस्कल था।[46]

इस प्रकार केवल आभूषणों और मूर्तियों के निर्माण में ही सुवर्ण का प्रयोग नही होता था अपितु साक्ष्यों में बहुमूल्य धातुओं से निर्मित पात्रो का भी उल्लेख मिलता है । कल्हण ने राजकीय परिवारों एवं राजाओं द्वारा सुवर्ण रजत के पात्रों, यथा तश्तरियों , कटोरों का प्रयोग किये जाने का उल्लेख किया है ।[47] युक्तिकल्पतरू में वर्णित है, मद्यपान के पात्र सोने चाँदी, स्फटिक रत्नों के बने होते थे ।[48]

5. <u>लोह उद्योग :-</u> अधीत कालीन समाज में लोह उद्योग का भी महत्व था । मध्ययुगीन अनुदान पत्रों में लोहे की खानों से युक्त भूमि दान किये जाने का प्रमाण प्राप्त होते हैं । चन्द्रदेव के चन्द्रावती ताम्रपत्र अभिलेख (1092 ईसवी) में जल, सूखी भूमि तथा लोहे की खानों से युक्त भूमि दान का उल्लेख है[49] । गोविन्दचन्द्र देव के कामौली ताम्र पत्र अभिलेख में महाराज गोविन्द चन्द्र द्वारा जल,स्थल,लोह से युक्त भूमि दान का प्रसंग प्राप्त है[50] । इस प्रकार उदाहरण गोविन्द चन्द्र देव के सेहत मेहत ताम्र पत्र अभिलेख में प्राप्त होता है[51] । अभिधान - चिन्तामणि में लोहे के अनेक नाम प्राप्त होते हैं यथा - कालायस, शस्त्र, पिण्डम्, पारशव, धन, गिरिसार, शिलासार, तीक्ष्ण, कृष्णामिषक्, अयस् ।[52]

लोहे का प्रयोग विभिन्न कार्यों में किया जाता था । विशेष रूप से गृहों, इमारतों, एवं मंदिरों के निर्माण में लोहे का प्रयोग किया जाता था । अलउत्बी ने अपने ग्रन्थ तारीखेइमामिनी में लिखा है, मथुरा शहर के दोनों ओर निर्मित हजारों गृह, जो मन्दिरों से जुड़े थे सभी ऊपर से नीचे तक लोहे

की कीलों से जुड़े थे ।[53] पुरी के मंदिर में 17 फिट लम्बी 239 लोहे की शहतीर का प्रयोग किया गया है ।[54] इसके साथ भुवनेश्वर मंदिर[55] और कोणार्क मंदिर[56] में भी लोहे की शहतीर दृष्टिगत होती है ।[57] इस प्रकार लोहे की शहतीर का निर्माण पूर्वमध्य कालीन लोह उद्योग की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि प्रतीत होती है । इस युग में लोहे का प्रयोग जलपोत निर्माण में किया जाता था जिसका समर्थन केशवसेन के इदिलपुर प्रशस्ति से किया जा सकता है ।[57अ]

लोहे का प्रयोग विभिन्न अस्त्र-शस्त्र, कृषि औजार इत्यादि के निर्माण में किया जाता था । अस्त्र-शस्त्र में कवच[58], जालिका[59], भाला,[60] फरसा[61] तलवार[62], ढाल[63], कटार[64], छुरी[65], सर्वलोह:[66] (लोहे के बाण), शूलम[67] (त्रिशूल) बरछा[68], (लोहा मढ़ी लाठी) परिध:[69] इत्यादि उल्लेखनीय है । इसके अतिरिक्त विविध औजारों में हंसिया[70], कुदाल[71], कैंची[72], (कृपाणि) खन्ती[73] (तक्षणी), वसूला[74], कुल्हाड़ी[75], छेनी[76], चर्मप्रभेदिका[77], (चमड़ा सीने या काटने का औजार) इत्यादि प्रमुख है । सामान्य रूप से इन औजारों का प्रयोग प्रस्तरकार, काष्ठकार, कृषक, स्वर्णकार किया करते थे । युक्ति-कल्पतरू में लोहे के अस्त्र-शस्त्र बनाने वाले प्रमुख केन्द्रों में बनारस, मगध, नेपाल, सौराष्ट्र, कलिंग इत्यादि का उल्लेख मिलता है ।[78] अग्निपुराण में पाँच ऐसे स्थानों का उल्लेख है जो तलवार निर्माण में विशेष रूप से प्रसिद्ध थे इनमें खत्तर-ऋषिक (पहचान नहीं) शूर्पारिक (सोपारा) बंग (पूर्वी बंगाल), अंग (बिहार के मुंगेर तथा भागलपुर जिले)[79] स्पष्ट है कि उपरोक्त केन्द्रों से लोहे

के अस्त्र-शस्त्र का उद्योग कार्यान्वित होता रहा होगा ।

धातु उद्योग के अर्न्तगत विभिन्न धातुओं से सिक्कों का निर्माण करना भी एक महत्वपूर्ण घटक था । आलोच्यकाल में शासकों द्वारा विविध धातुओं के सिक्के चलवाये जाने के बहुसंख्यक प्रसंग प्राप्त होते हैं । कश्मीर के राजा हर्ष ने सुवर्ण सिक्के चलवाये थे ।[80] रत्नपुर के कल्चुरी वंशीय पृथ्वीदेव, जाजलालदेव और रत्नदेव द्वितीय ने 13 से 60 ग्राम के सोने के सिक्के चलवाये थे ।[81] परमार शासक उदयादित्य ने जिसने 1060 और 1087 ए० डी० में उत्तरभारत में राज्य किया था उसने स्वर्ण सिक्के चलवाये ।[82] गहड़वाल राजा गोविन्दचन्द्र के बहुतसंख्या में सोने के सिक्के प्राप्त हुये हैं । जिनका वजन 59 से 60 ग्रे० है ।[83] सोने के सिक्के के अतिरिक्त अधीत काल के चाँदी और ताँबे के सिक्कों का भी प्रचलन दिखायी देता है । प्रभाकरवर्धन और हर्षवर्धन के चाँन्दी के सिक्के प्राप्त हुये हैं ।[84] कश्मीर में तोरमाण के ताँबे के सिक्के मिले हैं ।[85] उड़ीसा में ताम्र सिक्के प्राप्त हुये हैं ।[86]

इस प्रकार सोना, चाँदी लोहा के अतिरिक्त ताम्र उपयोग के भी प्रमाण मिलते हैं जिससे स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज में ताम्र उद्योग भी प्रचलित था । अभिधानचिंतामणि में ताँबे को 12 नामों से अभिहित किया गया है । यथा - ताम्रम्, मलेच्छमुखम्, शुल्वम्, रक्तम्, द्वयष्टम्, उदुम्बरम् मलेच्छम्, शावरम् मर्कटास्यम् , कनीयसम्, ब्रह्मवर्धनम्, वरिष्ठम ।[87] ताँबे का प्रयोग मुख्य रूप से भारतीय परम्परा के अनुसार धार्मिक गतिविधियों यथा - पूजा, अर्चना, यज्ञ अनुष्ठान में ताम्र की विभिन्न वस्तुओं का प्रयोग किया जाता था ; क्योंकि

ताम्र को विशुद्ध माना जाता था । सामान्य रूप से धार्मिक कार्यों में जिन पात्रों का उपयोग किया जाता वे ताम्र धातु से निर्मित होते थे।[88] इस कारण ताम्रधातु का महत्व समाज में अधिक था । ताम्र के महत्व को स्वीकार करते हुये पुष्पा नियोगी ने मत प्रतिपादित किया है कि देश के विभिन्न भागों से प्राप्त बहुसंख्यक ताम्र मूर्तियों से स्पष्ट होता है कि पूर्वमध्य काल में ताम्र उद्योग समृद्धि पूर्ण स्थिति में था।[89] ह्वेनसांग ने नालन्दा में स्थापित 80 फीट ऊँची भगवान बुद्ध को ताम्र प्रतिमा का उल्लेख किया।[90] अभिलेख में राजाओं द्वारा ताम्र कलश स्थापित करवाये जाने के उदाहरण मिलते हैं।[91] इसके अतिरिक्त दक्षिण भारत से ही प्राप्त तंजोर के मंदिर के अभिलेखों में वहाँ के राजाओं द्वारा मूर्तियाँ, आभूषण और सोना चान्दी तथा तांबे के बर्तन दान में दिये जाने के प्रमाण प्राप्त होते हैं।[92]

7. <u>काष्ठ उद्योग :-</u> विवेच्य कालीन साक्ष्यों में काष्ठ उद्योग के सन्दर्भ में प्रमाण उपलब्ध होते हैं । अभिलेखों में काष्ठ सहित अनुदान दिये जाने का उल्लेख मिलता है । महेन्द्रपाल द्वितीय के परतापगढ़ प्रस्तर अभिलेख में वृक्षों और काष्ठ सहित भूमि दान दिये जाने का प्रसंग है।[93] विष्णुसेन के ताम्रपत्र अभिलेख में 'सकाष्ठ' अर्थात काष्ठ युक्त भूदान का उल्लेख मिलता है।[94] युक्ति - कल्पतरु में गामभारी, पनस, चन्दन, बकुल इत्यादि प्रकार की लकड़ियों का उल्लेख है । जिनका प्रयोग विभिन्न कार्यों में किया जाता था।[95]

इस उद्योग के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की लकड़ियों का प्रयोग घरेलू उपयोग की वस्तुयें यथा कुर्सी,[96] पलंग[97], चौकी,[98] इत्यादि के निर्माण में किया

जाता था । कोल्हापुर अभिलेख में काष्ठ के स्टूल , बेंत इत्यादि का उल्लेख है।[99] भुवनेश्वर मंदिर में काष्ठ निर्मित घरेलू सामान में पलंग, स्टूल का प्रसंग है।[100] इसके अतिरिक्त काष्ठ से नाव[101], रथ[102] भी निर्मित किये जाते थे। मत्रताम्र पत्र में नावों का प्रसंग मिलता है।[103] कभी-कभी काष्ठ का उपयोग गृहों के निर्माण एवं सजावट हेतु भी किया जाता था । राजतरंगिणी में संदर्भित है कि काश्मीर में गृह निर्माण में प्रचुर मात्रा में लकड़ियों का प्रयोग किया जाता था।[104] तथा गुजरात में गृह सजावट में लकड़ियों का इस्तेमाल किया जाता था । मन्दिरों एवं मन्दिरों के दरवाजे लकड़ी से बनाये जाते थे।[105] उदाहरण के रूप भुवनेश्वर मंदिर का दरवाजा चन्दन की लकड़ी से बना था।[106] प्रसिद्ध सोमनाथ मंदिर 56 टीक की लकड़ी से निर्मित स्तम्भों पर बनाया गया है।[107]

8• <u>मृदभाण्ड उद्योग :-</u> पूर्वमध्य काल में गृह भाण्ड उद्योग बड़े पैमाने पर समाज में प्रचलित था । समाज में बहुत अधिक संख्या में लोग मृदभाण्ड उद्योग से जीवन यापन करते थे।[108] पुरातात्विक उत्खनन में प्राप्त प्रचुर मात्रा में मृदभाण्डों से स्पष्ट होता है कि सामान्य रूप से इनका प्रयोग घरेलू जीवन में अधिक किया जाता था । उत्तर भारत में किये गये प्रमुख उत्खनों में रोपड़, हस्तिनापुर, लालकोट, अहिछत्र इत्यादि क्षेत्रों से बहुत अधिक संख्या में मृदभाण्ड प्राप्त हुये हैं इनमें बड़े कटोरे, जार, हाडी, लैम्प इत्यादि प्रमुख हैं।[109] इसके अतिरिक्त उड़ीसा के विभिन्न स्थानों से प्राचीन मृदभाण्ड प्राप्त हुये हैं[110] । तथा वामेश्वर मंदिर में लगभग पचास प्रकार के मृद् भाण्डों का वर्णन मिलता है जो भुवनेश्वर

मंदिर स्तम्भ के पश्चिमी क्षेत्र में स्थित है।[111] घरेलू मृदभाण्डों के अतिरिक्त उक्त उद्योग के अन्तर्गत खिलौने, देवी-देवताओं की विभिन्न मूर्तियां, तथा पशुओं की आकृति का भी निर्माण होता था।[112] हर्षचरित में उल्लिखित है कि मिट्टी के खिलौना बनाने वाले मछली, कछुआ, मगर, नारियल, केला आदि के वृक्ष तथा भांति-भांति के मिट्टी के बर्तनों का निर्माण कर रहे थे।[113] नैषध - चरित मृदभाण्ड कला का प्रसंग प्राप्त होता है।[114] इस संदर्भ में अभिलेखीय प्रमाण भी उपलब्ध होते हैं। भुवनेश्वर के प्रसिद्ध लिंगराज मंदिर अभिलेखों में कुम्हार का उल्लेख है जो मंदिर को खाना बनाने के बर्तन दिया करते थे।[115] 12वीं शताब्दी के एक अभिलेख में वर्णित है कि एक कुम्हार को प्रतिदिन भगवान लिंगराज के भोग बनाने हेतु बर्तन दिये जाने पर दो वाटी भूमि दी गई थी।[116]

9. <u>चर्म उद्योग :-</u> ऋग्वैदिक काल से प्रचलित चर्म उद्योग पूर्वमध्य काल में भी व्यापक प्रचलित दिखायी देता है। अधीत कालीन दानपत्रों में वर्णित व्याघ्र चर्म ग्रहण का अधिकार चर्मउद्योग को इंगित करते हैं।[117] साक्ष्यों में चर्म निर्मित अनेक वस्तुओं का उल्लेख मिलता है। राजतरंगिणी में चर्मकारों द्वारा जूता बनाये जाने का प्रसंग मिलता है।[118] क्षमेन्द्र ने चमड़े के पानी के थैले तथा जूतों का उल्लेख किया है।[119] इस प्रकार जूतों के अतिरिक्त पानी का थैला, तैल की बोतल,[120] मृगचर्म के पंखे,[121] चर्म दण्ड[122] (चमड़े की चाबुक)। उपरोक्त साक्ष्यों की पुष्टि पुरातात्विक साक्ष्यों में उत्तर भारत से प्राप्त उपानहो से युक्त मूर्तियों, चित्रों से भी होती है।[123] मार्कोपोलो ने चर्म उद्योग के विषय में विस्तार से चर्चा करते हुये लिखा

है कि गुजरात में अधिक मात्रा में चर्म तैयार किया जाता था तथा लाल और नीले चर्म की सुन्दर चटाई बनायी जाती थी।[124] उसने यह भी लिखा है कि थाना से विभिन्न प्रकार के चमड़े निर्यात किये जाते थे[125] और चमड़े के वस्त्र अरब देश, पर्सियन गुल्फ इत्यादि खाड़ी देशों को निर्यात किये जाते थे।[126]

इस प्रकार उपरोक्त साक्ष्यों से ऐसा प्रतीत होता है कि विवेच्य काल में चर्म उद्योग काफी विकसित था। विशेषरूप से 11वी, 12वीं शताब्दी में चर्म उद्योग व्यापक स्तर में प्रगतिशील एवं समृद्ध स्थिति में था। तथा बड़े पैमाने पर आयात निर्यात किया जाता था।

पूर्व मध्य कालीन अर्थव्यवस्था में उक्त प्रमुख उद्योगों के अतिरिक्त कुटीर उद्योगों की भी महत्वपूर्ण भूमिका दृष्टिगत होती है। जिनके द्वारा बहुत अधिक संख्या में लोग स्वेच्छा पूर्वक अपना जीवन यापन करते थे। तथा सामाजिक और आर्थिक धरातल पर प्रत्येक उद्योग एवं व्यवसाय को मान्यता प्राप्त थी। इस प्रकार अन्य उद्योगों में दन्त उद्योग,[127] मणि उद्योग,[128] बाँस उद्योग,[129] चीनी उद्योग[130] लवण उद्योग,[131] तेल उद्योग,[132] सुगन्धित उद्योग,[133] रंगाई उद्योग[134] इत्यादि प्रचलित थे।

सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि की जो चर्चा की गई है इसके आलोक में तत्कालीन विभिन्न पेशेवर समुदायों को सुव्यवस्थित रूप से संदर्भित करने के प्रयास को सुगम बनाने के लिये उस पेशेवर समुदायों को निम्नलिखित सामान्य वर्गों में विभाजित किया जा सकता है ।

(1) कृषि एवं पशुपालन से सम्बन्धित व्यवसायिक वर्ग

(2) व्यापार से सम्बन्धित व्यवसायिक वर्ग

(3) उद्योग से सम्बन्धित व्यवसायिक समुदाय

(4) धर्म से सम्बन्धित व्यवसायिक समुदाय

(5) प्रशासन से सम्बन्धित व्यवसायिक वर्ग

1- मैक्सवेवर, दि स्टडी आँफ सोशल एण्ड इकनामिक आर्गनाईजेशन, पृ0 150 -54.

2- मार्शल, प्रिंसुपुल आँफ इकनामिक्स, 1, पृ0 556 - 70.

3- भारतीय सामंतवाद, हिन्दी अनुवाद, पृ0 139.

4- वही, पृ0 140.

5- आ0 धर्मसूत्र, 2.11.28, 1.6.8

6- दीर्घनिकाय, 27, 21.

7- अर्थशास्त्र, 2.24

8- भट्टस्वामी का भाष्य, अर्थशास्त्र, 2, 24

राजभूमैः पतिदृष्टैः शास्त्रज्ञैरूदकस्य च,

ताभ्यामन्यत्र यद्रव्यं तत्रं स्वाम्यं कुटुम्बिनान् ।।

9- मेधातिथि, मनु, 8, 39.

10- कात्यायन, 16-17, भूस्वामी तुस्मृतो राजनान्य द्रव्यस्य सर्वदा ।

11- मानसोल्लास, 1, 361-62.

12- राजनीति प्रकाश, पृ0 271, राजभूमः स्वामी स्मृतः ।

13- कृत्यकल्पतरू, राजधर्मकाण्ड, पृ0 90.

14- राजतरंगिणी, 3 . 101

15- भारतीय सामंतवाद, हिन्दी अनुवाद, पृ0 148.

16- इकनामिक लाइफ इन द गुप्ता पीरियड, पृ0 22-30; दि इकनामिक लाइफ आँफ नार्दन इण्डिया, पृ0 7 , 12; दिइकनामिक हिस्ट्री आँफ नार्दन इण्डिया, पृ0 50-66.

17- सी0 आई0 आई0 , भाग 3, पृ0 150 - 151.

18- से0 ई0, 2, पृ0 14-22.

19- इन्सक्रिप्सन्स आफ इम्पीरियल परमारस, पृ0 56.

20- से0 ई0 , 2, पृ0 282 - 289.

21- वही, 2, पृ0 249.

22- ऋग्वेद, 1.110, 5, 8.915, 53, 4.38.1, 6.201,

हिस्ट्री आँफ एग्रीकल्चर इन इण्डिया, पृ0 43 - 44.

23- दीर्घनिकाय, 27, पृ0 27-28.

24- मीमांसा दर्शन, 6.7.3

25- मेधातिथि अनुवाद, 8.99

हन्तिजातान जातोश्च हिरण्यार्थेऽनृतं वदन् ।

सर्वभम्मनृपेहन्ति भा स्वयभूम्य नृपवदी: ।।

26- देशोपदेश, 2.6.

27- वृहस्पति स्मृति, 7.60; नारद स्मृति, 1.91.

28- धर्मकोश, 1, 1251.

29- वही, 1201.

30- कृत्यकल्पतरु, व्यवहारकाण्ड, पृ0 153, गार्हस्थ्य कांड, पृ0 182.

31- स्मृतिचन्द्रिका, 23, धर्मकोश, 1, 977 में उद्धृत

32- भारतीय सामंतवाद, हि0 अनुवाद, पृ0 153.

33- धर्मकोश, 1, 658.

34- प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ0 602.

35- एपि0 इण्डि0, भाग 8, पृ0 977.

36- वही, भाग 8, पृ0 83.

37- इन्सक्रिप्सन्स आँफ इम्पीरियल परमारस, पृ0 78.

38- ऐतरेय ब्राह्मण, 8,21.

39- धर्मकोश, 1, 1231.

40- भारतीय सामंतवाद, हि0 अनुवाद, पृ0 141.

41- जैमिनीमीमांसा सूत्र, 6.7.3, धर्मकोश, 1, 793 में उद्धृत

42- जैमिनी, 6.7.3 की टीका, धर्मकोश, 1, 793 से उद्धृत

43- हिस्ट्री आँफ धर्मशास्त्र, 1, 949 में उद्धृत

44- धर्मकोश, 1, 1232

45- भारतीय सामंतवाद, हिन्दी अनुवाद, पृ0 144.

46- एपि0 इण्डि0, 1, पृ0 162.

47- एपि0 इण्डि0, 7, न0 28, पंक्ति 7-16.

48- भारतीय सामंतवाद, हि0 अनु0 , पृ0 121

49- वही

50- से0 ई0 2, चन्द्रावती ताम्रपत्र, पृ0 273-74
कौमाली ताम्रपत्र, से0 ई0 2, पृ0 283, देवबर्नाक प्रस्तर लेख, वही, पृ0 50-51

51- कामन्दक नीतिसार, सर्ग 4, श्लोक 48-50.

52- अमरकोश, 1, 5-6, पृ0 70-71, 1, 10-13, पृ0 72.

53- राजनीतिप्रकाश, पृ0 262.

54- शुक्रनीतिसार, सर्ग 4, श्लोक 237.

55- अभिधान रत्नमाला, 2, 3-6;. वैजयन्तीकोश , 124, 17-18.

56- अभिधान चिन्तामणि, चतुर्थ काण्ड, श्लोक 3-5, 2.5, 2.6

57- एग्रीकल्चर इन एंशियंट इण्डिया, पृ0 6.

58- से0 ई0 2, 137, 234, 253, 285, 290, 303, 426.

59- से0 ई0 2, 76, 84, 128, 225, 290, 426, 428

60- वही, 94, 98, 122, 136, 160.

61- से0 ई 2, 143, एपि0 ग्राफि 0 ग्लोस, पृ0 157.

62- वही, पृ0 253.

63- प्राचीन भारत का सामाजिक आर्थिक इतिहास, पृ0 66.

64- वही, 66

65- एपि इण्डि0 14, पृ0 156 - 163.

66- से0 ई0 2, पृ0 143.

67- अमरकोष, 1, 5, पृ0 70

68- अभि0 चिन्तामणि, चतुर्थ काण्ड, 8.31.

69- शब्दानुशासन, 7, 2, 135

70- वही, लोहकं वावर्धकुण्डीलका वा शेषम् तत् कुलिवस्य करोतित्यर्थ: ।

71- अभि0 चिन्तामणि, चतुर्थ काण्ड, 2·34, 1·34,

72- एग्रीकल्चर इन एंशियंट इण्डिया, पृ0 37

73- अभिधान चिन्तामणि, चतुर्थ काण्ड, 14·34; शब्दानुशासन, 7·1·6, हलं व हतीति हालिका:, सौरिका: ।।

74- इण्डियन एपि0 ग्लोस0, पृ0 362·

75- कृषि पराशय, पृ0 79·

76- वही, पृ0 79·

77- वही, पृ0 79·

78- वही, पृ0 79·

79- कृषि पराशय, पृ0 79

80- अभिधान चिन्तामणि, चतुर्थ काण्ड, 3·35·

81- शब्दानुशासन, 72, 136

82- अभिधान चिन्तामणि काण्ड 6, 11·157

83- वही, काण्ड चतुर्थ, 8·249

83ब- वही, चतुर्थ काण्ड, 5·35·

83अ- का0 ई0 ई0 भाग 4, क्रमांक 76, पंक्ति 29, क्रमांक 46, श्लोक 13·

84- शब्दानुशासन, 6·3·18

85- हेमचन्द्र की द्वयाश्रय, 14, 37

86- अभिधान चिन्तामणि, तृतीय काण्ड, 10,556

87- वही, 13·556

88- वही, 14·556

89- मेधातिथि मनु, 9·330

90- वही, मनु, 8·320·

91- अभिधान चिन्तामणि, काण्ड चतुर्थ, पृ0 284·

92- तिलक मंजरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 200·

93- अभिधान रत्नमाला, 2·421-29

94- इन्सक्रिप्सन्स आॅफ इम्पीरियल परमारास, पृ0 42, पंक्ति 9-10·

95- एपि0 इण्डि0, 10, जिल्द 10, पृ0 50; एपि0 इण्डि0 14, पृ0 303·

96- से0 ई0 2, पृ0 178·

97- पी0 नियोगी, इकोनामिक हिस्ट्री आॅफ नार्दन इण्डिया, पृ0 249-50·

98- एपि0 इण्डि0, 10, पृ0 57, एपि0 इण्डि0, जिल्द 2, 236·

99- अभिधानचिन्तामणि काण्ड, चतुर्थ, पृ0

100- तिलकमंजरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 196·

101- जी0 ओ0 एच0 आर0 एस0, 1, 301, का0 ई0 ई0 भाग 4, क्रमांक 106, श्लोक 4·5·

102- सोशो इकोनामिक हिस्ट्री आॅफ नार्दन इण्डिया, पृ0 180, से0 ई0 2, पृ0 250

103- एपि0 इण्डि0, जिल्द 14, 360; रामचरित 3, 19, आर0 सी0 मजुमदार, का0 ई0 ई0 क्रमांक 106, श्लोक 5·

104- इण्डियन ऐटिक्युरि, 14, 124

105- वही, 14, 103, 14, 203, 208, एपि0 इण्डि0 20, 130-131, का0 ई0 ई भाग 4, क्रमांक 48, पृ0 36.

106- इन्सक्रिप्सन्स आँफ बंगाल, 3, 97.

107- वही, 2, 154-156.

108- का0 ई0 ई0, भाग 4, क्रमांक 96.

109- अपराजितपृच्छा, पृ0 188 .

110- शुक्रनीतिसार, अध्याय, 4, श्लोक - 63-64

कूपवापी पुष्पकारिणा , तड़ागासुगमस्तथा ।
यथान्यथा नेकाश्च राष्ट्रेस्याद विपुल जलम् ।।

111- राजतरंगिणी, पृ0 74-80, द्वयाश्रय महाकाव्य, 15, पृ0 120-121.

112- सोशो इकनामिक हिस्ट्री आँफ नार्दन इण्डिया, पृ0 173.

113- इण्डिया एपि ग्लोस0, पृ0 167.

114- वही, पृ0 333.

115- डायनिस्ट्रिक हिस्ट्री आँफ नार्दर्न इण्डिया, पृ0 1119.

116- का0 ई0 ई0, भाग 4, क्रमांक 44, श्लोक 17

117- वही, क्रमांक 42, श्लोक 5

118- इण्डि0 एपि0 ग्लोस, पृ0 167.

119- का0 ई0 ई0 , भाग 4, क्रमांक 44, श्लोक 17.

120- से0 ई0 2, पृ0 105-106.

121- एपि0 इण्डि0, भाग 19, पृ0 298-99.

122- का0 ई0 ई0, भाग 4, क्रमांक 67, श्लोक 37.

123- का० ई० ई०, भाग 4, क्रमांक 84, श्लोक 24, क्रमांक 85, श्लोक 20-21.

124- एपि० इण्डि०, जिल्द 2, पृ० 338.

125- का० ई० ई०, भाग 4, क्रमांक 61, श्लोक 6.

126- एपि० इण्डि०, जिल्द 19, पृ० 298 - 99.

127- का० ई० ई०, भाग 4, क्रमांक 98, श्लोक 5, क्रमांक 77, श्लोक 17.
क्रमांक 84, श्लोक 25, क्रमांक 96, श्लोक 24, 27, 30.

128- से० ई० भाग 2, पृ० 250-53.

129- भारतीय सामंतवाद हिन्दी अनुवाद, पृ० 259.

130- तिलकमंजरी, पृ० 8, मधुरतारघटीमन्त्र चीत्कारैः ।

131- हर्षचरित, पृ० 104, कूपोदकघटीयमन्त्रमाला ।

132- से० ई० भाग 2, पृ० 253, अरहेस तु संयुक्तं दत्तंस्तम ।

133- पूर्वमध्य काल में व्यापार के ह्रास के प्रश्न पर आगे चर्चा की गई है ।

134- से० ई०, 2, पृ० 64, 68, 514.

135- इण्डि० एपि० ग्लोस० पृ० 195 - 96.

136- एपि० इण्डि०, 15, पृ० 133.

137- प्राचीन लेखमाला, 2, पृ० 24, एपि० इण्डि० , 19, पृ० 57

138- एपि० इण्डि०, 20, पृ० 55.

139- वही, 1, पृ० 184.

140- वही, 24, पृ० 332.

141- इकोनामिक लाइफ ऑफ नार्दन इण्डिया, पृ० 158.

142- वही

143- मेधातिथि मनु 1-90, 31.

144- समराइच्चकहा, 6, पृ0 16.

145- कथासरित सागर, पृ0 85.

146- वही, पृ0 130.

147- कुवलयमाला अपभ्रंश काव्य, भूमिका, पृ0 91.

148- भावनगर इंस्क्रिप्सन्स, 2, पृ0 67-68.

149- एपि0 ग्राफि0 इण्डि0 , पृ0 60 एफ0 एफ0

150- हर्षचरित, पृ0 82.

151- कुट्टनीमतम , श्लोक 66, 344; नैषधीयचरितम, 21.2.

152- मार्कोपोलो, 2, 390.

153- वैजयन्ति, 1.60, 1.65.

154- जे0 ए0 एस0 आई0, 20, 13.

155- जे0 ए एस0 आई0, 20, 13.

156- प्रबन्धचिन्तामणि, पृ0 102. 2, 10 एफ एफ

157- अभिधानचिन्तामणि, पृ0 439.

158- फ्रेण्ड टेक्सस, पृ0 31.

159- सोमदेव यशस्तिलक, पृ0 345, उद्धृत गोकुलचन्द्र जैन यशस्तिलक का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 194.

160- तिलकमंजरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 224.

161- समराइच्चकहा, पृ0 264 एफ एफ, 585.

162- वृहतकथाश्लोक संग्रह, 18, 428; कथाकोष, पृ0 29.

163- वृहत्कथा कोष, 53·3·

164- समराइच्चकहा, 6, पृ0 41; तिलकमंजरी, पृ0 133-135, 137·

165- पाणिनी अष्टाध्यायी, 4·3·25

166- इण्टरकोर्स बिटिविन इण्डिया एण्ड द वेस्टर्न वर्ल्ड, पृ0 42·

167- प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ0 647·

168- दी लाइफ, पृ0 60, 73, 86, 198·

169- प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ0 648·

170- समराइच्चकहा, 6, पृ0, 16 - 31·

171- ग्यारहवीं शती का भारत, पृ0 42, 57·

172- वही, पृ0 42-57·

173· शब्दानुशासन, 6·4·90·

174- पी0 सी0 बागची, इण्डिया एण्ड चाइना, पृ0 18·

175- इलियड एण्ड डाउसन, 1, 14·

176- उक्तिव्यक्ति प्रकरण, पृ0 46·

177- राजतरंगिणी, 5·84; 7·347, 714, 1628·

178- एपि0 इण्डि0, 14, 193-196·

179- समराइच्चकहा, पृ0 327·

180- तिलकमंजरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0

181- दशकुमारचरित, पृ0 37·

182- अलबीरूनी, 1, 208; मार्कोपोलो 2·389

183- बोधिसत्वावदान कल्पलता, पृ0 113•

184- चाऊ जु कुआ, पृ0 84 - 85•

184अ- वृहन्नारदीय, 12 - 16•

185- इकोनामिक लाइफ इन नार्दन इण्डिया, पृ0

186- दि एज आॅफ इम्पीरियल कन्नोज, पृ0 401•

187- इकोनामिक लाइफ इन नार्दन इण्डिया,

188- हिस्ट्री आॅफ बंगाल, भाग 1, पृ0 4•

189- आस्पेक्टस आॅफ बंगाली सोसायटी, पृ0 30•

190- इकोनामिक लाइफ, पृ0 147•

191- जे0 एन0 एस0, 1, 20, 13•

192- इकोनामिक लाइफ, पृ0 पृ0 148, देखिए

193- इलियड एण्ड डाउसन, 1, पृ0 87•

194- मार्कोपोलो, 2, 293•

195- फरेण्ड टेक्स्टस, पृ0 31•

196- मार्कोपोलो, 1, 107•

197- समराइच्चकहा एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 169•

198- चाऊ जुकुआ, पृ0 88 के आगे

199- समराइच्चकहा, 6, पृ0 41; तिलकमंजरी, पृ0 133, 135, 137, 140•

200- इलियट एण्ड डाउसन, 1, 69•

201- प्राचीन भारत का आर्थिक इतिहास, पृ0 129•

202- अभिधान रत्नमाला, श्लोक 439, वैजयन्ति, पृ0 111.

203- मेधातिथि मनु 8, 156.

204- त्रिषष्टि शलाका पुरूष चरित, तजल्द 1, पृ0 7 के आगे

205- दोहाकोश, पृ0 311.

206- त्रिषष्टि शलाका पुरूष चरित, जिल्द 1, पृ0 7 के आगे

207- उपमितिभव प्रपंच कथा, पृ0 863.

208- दशरथ शर्मा, अर्ली चौहान डायनास्टीज, पृ0 12 के आगे

209- वस्तुपालचरित, पृ0 100.

210- प्रबन्धकोश, पृ0 53, 2, 15-18.

211- कथासरितसागर, 6, 3, 117, 7, 2.75.

212- दशकुमारचरित, द्वितीय उच्छ्वास, पृ0 53.

213- कथासरितसागर, 6, 3.105

214-

215- एपि0 इण्डि0, 22, न0 20, श्लोक 41.

216- वही, 11, न0 4, पृ0 22, पंक्ति 4-7.

217- एपि0 इण्डि0, 14, न0 49, पंक्तियाँ 29-51 ; एपि0 इण्डि0, 3, न0 40 पंक्तियाँ 58-59, एपि0 इण्डि0, 18, न0 40, पंक्तियाँ 127 - 134.

218- प्राचीन भारत में सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन, पृ0 5.

219- एपि0 इण्डि0, 24, पृ0 332, एपि0 इण्डि0, 11, पृ0 60 एफ एफ इकोनामिक लाइफ ऑफ नार्दन इण्डिया, पृ0 158.

220- ट्रेड एण्ड अरबन सेन्टरस इन अर्ली मीडिवल नार्थ इण्डिया; इण्डियन हिस्ट्रोरिकल रिव्यू, जिल्द, 1, न0, 1974, पृ0 203 - 219.

221- प्रबन्धकोष, पृ0 53, 2, 15-18.

222- मेधातिथि मनु, 7. 127.

223- तिलकमंजरी, पृ0 117.

224- कृत्यकल्पतरु, दान काण्ड, पृ0 257, 261, 263.

225- समयमातृका, 2.3

226- प्रबन्धचिन्तामणि, पृ0 106; तिलकमंजरी, पृ0 66.

1- मेधातिथि मनु , 2-98, 8·321, 4·326

2- मानसोल्लास, 3, 1017 - 20,

3- यशस्तिलक, पूर्व, पृ0 368·

4- हर्षचरित, 1, 2, 4, 7·

5- इकोनामिक हिस्ट्री आँफ नार्थ इण्डिया, पृ0 235 - 36·

6- दि इकोनामिक लाइफ आँफ नार्दन इण्डिया, पृ0 31, 150; इलियट एण्ड डाउसन, 1, पृ0 14·

7- दि इकोनामिक हिस्ट्री आँफ नार्दन इण्डिया, पृ0 236·

8- मार्कोपोलो, 2, 261, 379, 385, 388, 389; जे0 बी0 आर0 एस0 भाग 61, पृ0 131·

9- भारतीय सामंतवाद हिन्दी अनु0 , पृ0 259·

10- जे0 बी0 आर0 एस0 , जिल्द 61, पृ0 131·

11- शिक्षा समुच्चय, पृ0 208; जे0 बी0 आर0 एस0, जिल्द 61, पृ0 129·

12- एपि0 इण्डि0 , जिल्द 19 , पृ0 205·

13- एपि0 इण्डि0, जिल्द 19, न0 21·

14- सै0 ई0, 2, पृ0 36·

15- जे0 बी0 आर0 एस0 , जिल्द 61, पृ0 131·

16- राजतरंगिणी 7, पृ0 608·

17- ज्ञातृ धर्मकथा - 1, पृ0 22, उत्तराध्ययन सूत्र, 1914; उत्तराध्ययन टीका 13, पृ0 189·

18- कादम्बरी, पृ0 58.

19- यशस्तिलक, पृ0 342-43-44.

20- समराइच्चकहा, 1, पृ0 43.

21- टी0 आई एन0 , पृ0 82, इकोनामिक हिस्ट्री आँफ नार्थ इण्डिया, पृ0 244.

22- इलियट एण्ड डाउसन, हिस्ट्री आँफ इण्डिया, 1, पृ0 78, 87.

23- एपि इण्डि , जिल्द 19, पृ0 52 एफ0 एफ0

24- वही, 24, पृ0 43 एफ0 एफ0

25- से0 ई0 2, पृ0 634, 638.

26- सोशल एण्ड कल्चर हिस्ट्री आँफ नार्दन इण्डिया, पृ0 140.

27- एपि0 इण्डि0 1, पृ0 154.

28- इंस्क्रप्सन्स आँफ इम्पीरियल परमारस, पृ0 69.

29- इण्डि0 स्कल्पचर, पृ0 107; इंस्क्रप्सन्स आँव इम्पीरियल परमारस, पृ0 69.

30- अथर्ववेद , 9, 5, 4; तैत्तिरीय सं0 7, 5, 1

31- वही

32- ऋग्वेद , 8, 78, 3; तैत्तिरीय , सं0 5. 7. 13.

33- अथर्ववेद, 5, 28; 17, 2.1

34- अथर्ववेद, 11.3.17, तैत्तिरीय सं0 4, 7, 5, 2.

35- अभिधान रत्नमाला , 2.15-19.

36- अभिधान चिन्तामणि, चतुर्थ काण्ड, पृ0 255.

37- भविष्य पुराण, उद्धृत, परिभाषा प्रकाश 115.

55- वही, सोशी इकोनामिक हिस्ट्री आँफ नार्दन इण्डिया ।

56- वही, पृ0 197.

57- इन्सक्रिप्सन्स आँफ बंगाल, 3, पृ0 123-128.

58- एपि0 ग्राफि0 ग्लो0, पृ0 152; अभिधान चिन्तामणि, तृतीय काण्ड, 10.432.

59- अभिधान चिन्तामणि, तृतीय काण्ड, 3.43.

60- वही, 4.34

61- वही, 6.34

62- वही, 10.445

63- वही, 3.447.

64- वही, 6.44.

65- वही, 5.448.

66- वही, 3.443.

67- वही, 6.451.

68- वही, 9.449.

69- वही, 3.450.

70- वही, 10.555.

71- वही, 13.556.

72- वही, 4.575.

73- वही, 14.556.

74- वही, 5.82.

75- वही, 583

76- वही, 584.

77- वही, 579.

78- युक्तिकल्पतरू, श्लोक 24 - 29.

79- अग्निपुराण, पृ0 245, 21 के आगे

80- कनिंघम क्वाईंस आँफ मीडिवल इण्डिया, पृ0 34.

81- जे0 ए0 एस0 बी0 , 26, 1930, न0 35.

82- सिंघल सी0 आर0, बिबलियोग्राफी आँफ इण्डियन क्वाइन, भाग 1.

83- सोशी इकोनामिक हिस्ट्री आँफ नार्दन इण्डिया, 215 - 16.

84- जे0 आर0 ए0 एस0, 1906, पृ0 843.

85- आर्कलाजिकल सर्वे आँफ इण्डिया ॥ वार्षिक रिपोर्ट ॥ 1913-14, पृ0 50-55.

86- प्राचीन भारत का आर्थिक इतिहास, पृ0 153.

87- अभिधान चिन्तामणि, चतुर्थ काण्ड, 1.105.

88- जनरल आँफ इण्डियन आर्ट, पृ0 29.

89- इकोनामिक हिस्ट्री आँफ नार्दन इण्डिया, पृ0 240.

90- वार्टस, 1, 171, 178, बील 119.

91- साउथ इण्डियन इन्सक्रिप्सन्स, 2, 1- 19

92- वही, 2, सं0 2, 29, 30, 32, 34, 38, 39, 42, 44, 46, 52, 55, 56, 70 - 81, 84, 91.

93- स0 ई0, 2, पृ0 250.

94- वही, 2, पृ0 374.

95- युक्तिकल्पतरू, 1, पृ0 20-21, पृ0 22 - 229.

96- वही, पृ0 57 - 59.

97- राजतरंगिणी, 8, 2145, बी0 पी0 मजूमदार, सोशी इकोनामिक हिस्ट्री आँफ नार्दन इण्डिया, पृ0 207, एपि0 इण्डि0, पृ0 47.

98- सोशी इकोनामिक हिस्ट्री आँफ नार्दन इण्डिया, पृ0 207;• सोशल एण्ड कल्चर हिस्ट्री आँफ नार्दन इण्डिया, पृ0 145.

99- एपि0 इण्डि0, जिल्द 19, पृ0 30.

100- जे0 बी0 आर0 एस0 , जिल्द 50, पृ0 54.

101- युक्तिकल्पतरू अध्याय 20-21, पृ0 224-229; राजतरंगिणी, 5, 85, 7, 347, 1628.

102- बन्धोपाध्याय , इकोनामिक लाइफ एण्ड प्रोग्रेस इन एंशियन्ट इण्डिया, पृ0 149.

103- सेन, बी0 सी0 – हिस्ट्रिकल आस्पेक्टस आँफ बंगाल इन्सक्रिप्सन्स, पृ0 541.

104- राजतरंगिणी , 8, 2390.

105- आर्कलोजिकल सर्वे आँफ वेस्टर्न इण्डिया, पृ0 52.

106- जे0 बी0 आर0 एस0 , जिल्द 50, पृ0 55.

107- इकोनामिक हिस्ट्री आँफ नार्थ इण्डिया, पृ0 244.

108- जे0 बी0 आर0 एस0, जिल्द 50, पृ0 35.

109- इण्डियन आर्कलोजी, 1958-59.

110- जे0 बी0 आर0 एस0, जिल्द 50, पृ0 35.

111- वही

112- एंशयंट इण्डिया, 21, 1947, 48 पृ0 120, 121, 122, 123, 129, 132, 133, 136, 143, 144, 152, 159, 166.

113- हर्षचरित का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 72•

114- नैषधीयचरितम्, 7, पृ0 75•

115- जे0 बी0 आर0 एस0, जिल्द, 50, पृ0 55•

116- वही, पृ0 55•

117- एपि0 इण्डि0, 28, भाग 7, पृ0 237•

118- राजतरंगिणी, 8, पृ0 137•

119- देशोपदेश, भाग 6•

120- देशीनाममाला, 3, 21, 4, 22; अभिधानचिन्तामणि, तृतीय काण्ड, 7•542

121- अभिधान चिन्तामणि, तृतीय काण्ड, 1•5•32•

122- वही, चतुर्थ काण्ड, 10•318

123- अमरकोष, 2•6•110-11•

124- मार्कोपोलो, 2, पृ0 395•

125- वही, पृ0 395•

126- वही, 2, 393•

127- इपि0 इण्डि0 28, 7, पृ0 327; इपि0 इण्डि0, जिल्द0 19, पृ0 286•
नैषधचरितम्, 2, 108, मानसोल्लास, 1, 956, देशोपदेश, 2•30•

128- साउथ इण्डियन इन्सक्रिप्सन्स, 2, सं0 1, 2, 29, 30, 34, 38, 39, 42, 44, हर्षचरित 5; कादम्बरी 296-313•

129- इकोनामिक हिस्ट्री ऑफ नार्दन इण्डिया, पृ0 247; जे0 बी0 आर0 एस0, 13, पृ0 138•

130- एपि, इण्डि0, 28, 6, पृ0 256, 11·131, 134,

131- जे0 बी0 आर0 एस0, जिल्द, 2, भाग 1-5, पृ0 57·

132- जे0 ए0 एच0 आर0 एस0, 7, 4, पृ0 232; जे0 बी0 आर0 एस0, जिल्द, 80, पृ0 57·

133- जे0 बी0 ओ0 आर0 एस0, 2, पृ0 426 - 27; अभिधान चिन्तामणि, चतुर्थ काण्ड, 8·63; इपि0 इण्डि0, 28, 6, पृ0 256, 2, 131-34·

134- देशीनाममाला, 1, 48; शुक्रनीतिसार, 4, 3, 85

तृतीय अध्याय

कृषि से सम्बन्धित व्यवसायिक समुदाय

कृषि से सम्बधित व्यवसायिक वर्ग

भारतीय आर्थिक संरचना एवं एतत् विषयक घटकों में कृषि की भूमिका सर्वोपरि रही है । कृषि भारतीय जीवन का प्रधान आधार तथा अधिकांश लोगों के जीवनयापन का प्रधान स्रोत थी । इसमें संदेह नहीं है कि भारतीय सामग्रिक आर्थिक व्यवस्था हमेशा से ही कृषि पर निर्भर रही है । समाज का एक बड़ा वर्ग कृषि एवं कृषि से सम्बधित विभिन्न कार्यों में रत था ।

अधीतकालीन शास्त्रकारों ने कृषि के महत्व को स्वीकार किया है । कृषि पराशर में कृषि के महत्व के विषय में वर्णित है, कृषि को ग्रहण कर एक व्यक्ति संसार का स्वामी हो सकता है ।[1] आचार्य शुक्र ने भी कृषि को सर्वोत्तम वृत्ति माना है ।[2] तथा पूर्वमध्य युग में कृषि के संदर्भ में अनेक साक्ष्य उपलब्ध होते हैं । बाण ने हर्षचरित में श्री कंठ जनपद तथा उसकी राजधानी स्थाणावीश्वर का वर्णन करते हुये कृषि के विषय में विस्तार से चर्चा की है कि हलों से खेत जोते जा रहे थे । हल के अग्रभाग या पड़ौथो से नई तोड़ी गई धरती से मृणाल उखाड़े जा रहे थे । खलिहार में कटी हुई फसलों के पहाड़ लगे थे तथा चलती हुई रहट से सिंचाई हो रही थी । धान, राजमाष, मूंग, गेहूं के खेत चारों ओर फैले हुये थे ।[3] तिल मंजरी में खेतों के समूह के लिये केदार, क्षेत्र शाकर0 वाटवन, बैहेय शब्द का उल्लेख है तथा पठ्ठेक्षु, कलम, शील, इक्षु तथा व्रीहि के खेतों का प्रसंग है ।[4] चन्दन वृक्षों की बाड़ लगा कर खेतों की रक्षा का उल्लेख है ।[5] अभिलेखीय प्रमाणों से भी कृषि कार्य की पुष्टि होती है ।

अनंगभीम तृतीय के नगरी ताम्रपत्र अभिलेख में राजा द्वारा वारवाटी भूमि तथा भव, गोधूम, इक्षु की फसलों से युक्त ग्राम दान देवधर शर्म्मण ब्राह्मण को दिये जाने का प्रसंग मिलता है ।[6] भोजदेव कालीन मोड़ासा ताम्रपत्र अभिलेख में कोद्रव (अनाज) तिल, मूँग, चावल, गेहूँ के खेत तथा ग्राम के मध्य स्थित घर खलियान इत्यादि का प्रसंग है ।[7] महेन्द्र पाल द्वितीय के परतापगढ़ प्रस्तर अभिलेख में देवराज द्वारा भगवान इन्द्रदेव के सेवार्थ ऐसी भूमि दान की थी जिसमें 10 माणि बीज वपन किया जा सकता था ।[8] जयचन्द्र कालीन बैजनाथ प्रस्तर अभिलेख में वार हल भूमि दान का उल्लेख है ।[9] राजेन्द्र प्रथम के तंजोर राजेश्वर मूर्ति अभिलेख में कृषि योग्य भूमि के दान का उल्लेख है ।[10]

जहाँ तक कृषि को वृत्ति के रूप में ग्रहण करने का प्रश्न है । इस संदर्भ में स्मृतिकारों ने कृषि व्यवसाय केवल वैश्यों के लिये विहित किया है ।[10अ] ऐसा प्रतीत होता है कि समय के अन्तराल के साथ कृषि कार्य अन्य वर्णों द्वारा भी सामान्य रूप से अपनाये जाने लगा । तथा अधीत काल में कृषि के महत्व को समझते हुये तथा कथित वैश्यों के अलावा समाज के अन्य वर्गों द्वारा भी कृषि कार्य परोक्ष एवं प्रत्यक्ष रूप में अपनाया गया ।

पराशर स्मृति में चारों वर्णों द्वारा कृषि कर्म किये जाने का प्रसंग है ।[11] अभिलेखीय साक्ष्यों से भी अन्य वर्ण द्वारा कृषि कार्य किये जाने की पुष्टि होती है । उदाहरण के रूप कामन अभिलेख का प्रसंग प्रसंगित किया जा सकता है जिसमें साहुल और जाजा नामक ब्राह्मणों द्वारा कृषि कार्य किये जाने का उल्लेख है ।[12]

इसी प्रकार ग्वालियर अभिलेख में नैमक नाम के क्षत्रिय द्वारा कृषि कार्य किये जाने का प्रसंग है ।[13] उपलब्ध साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि शूद्र वर्ग भी इससे अधिक प्रभावित हुआ और बहुत अधिक संख्या में शूद्र कृषि कार्य में संलग्न हो गये । प्रस्तुत कथन की पुष्टि नारद स्मृति में उल्लिखित कीनाश शब्द से होती है, जिसे नारद स्मृति के भाष्यकार असहाय ने शूद्र कृषक के अर्थ में प्रयुक्त किया है ।[14] नरसिंह पुराण में भी शूद्रों द्वारा कृषि कार्य करने का साक्ष्य मिलता है ।[15] चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी शूद्रों को कृषक वर्ग के अन्तर्गत माना है, जो जोताई, बुआई का कार्य करते थे ।[16]

कृषि पर निर्भरशील व्यक्तियों को कृषि श्रम के आधार पर विभिन्न समुदायों में वर्गीकृत कर सकते हैं । इन वर्गों में भूमिस्वामी, कृषक, आश्रित कृषक तथा श्रमिकों का विवेचन विशेष उल्लेखनीय है । जिन्हें हम पृथक - पृथक वर्गों में मान सकते हैं । कृषि आश्रित उपरोक्त वर्गों की पुष्टि याज्ञवल्क्य की मिताक्षरा से भी होती है ।[17]

प्रथम वर्ग में ऐसे लघु सामंत एवं प्रमुख है । जिनके पास सामान्य रूप से बहुत अधिक भू-सम्पत्ति होती थी । ये भू-स्वामी हुआ करते थे । जिन्हें अभिलेखीय साक्ष्यों महत्तर, क्षेत्रस्वामी, भोगी, भोगपति, महाभोगी, भोगपालक, इत्यादि नामों से अभिहित किया गया है । बहुसंख्यक भूमिदान एवं ग्रामदान की परम्परा एवं स्वतन्त्र उपलब्धि के कारण इस वर्ग में व्यापक वृद्धि हुई । साक्ष्यों से ज्ञात होता है, इस समुदाय के लोग कर्म करो, श्रमिक से बटाई या किसी अनुबन्ध

के आधार पर कृषकों से कृषि कार्य करवाते थे । उपरोक्त कथन के समर्थन में हम तत्कालीन राजवंशों के अधिकांश अभिलेखों में वर्णित भूमिस्वामी द्वारा भूमि का उपभोग करने, कृषि कार्य करने तथा करवाने के अधिकारों का विवेचन कर सकते हैं । प्रतिहार साम्राज्य में विशेषरूप से राजस्थान, मालवा और गुजरात में ग्रहीता को अनुदान क्षेत्र में स्वयं खेती करने या दूसरों से कराने तथा उस क्षेत्र का उपभोग स्वयं करने अथवा उपयोग हेतु दूसरों को देने का अधिकार था ।[18] बल्लभी के मैत्रक राजाओं के अनुदानों में इसी प्रकार की शर्तों का उल्लेख मिलता है ।[19] चालुक्यों के राज्य में इसी प्रकार की प्रथा का संकेत मिलता है । चालुक्य सामन्त राजा बलवर्मा ने काठियावाड़ में तरूणादित्य के मंदिर को एक गाँव दान में दिया तथा उसी घराने के द्वितीय अवन्तिवर्मन ने उसी मंदिर को एक गाँव दान दिया था [20] तथा ग्रहीता को उपभोग स्वयं करने तथा दूसरे से कराने और उसकी भूमि को स्वयं जोतने बोने या दूसरों से जुतवाने बुवाने के अधिकार प्रदान किये थे ।[21] इस प्रथा का दूसरा उदाहरण (959 ईसवी) में अलवर क्षेत्र एक गुर्जर सामन्त राजा के अधीन मिलता है । शासक वंश के एक निकट दामाद सामन्त मथनदेव ने एक ग्राम मठ के गुरू और उसके शिष्यों को दिया ।[22] इस अनुदान में ग्रहीता को "कुर्वत: कारतोवा " का अधिकार दिया गया था,[23] जिससे स्पष्ट होता है कि राजस्व - ग्रहण करने तथा खेती कराने की जिम्मेदारी किसी को भी दे सकता था ।

इस प्रकार अपने इसी विशेषाधिकार के द्वारा ग्रहीता अपने अधीनस्थ क्षेत्रों, ग्रामों में कृषि कार्य करवाते तथा ग्रामनिवासियों पर अपना आर्थिक आधिपत्य

स्थापित करते थे ।

अभिलेखीय एवं साहित्यिक साक्ष्यों के आलोक में भू-सम्पन्न वर्गों का पृथक - पृथक विवेचन प्रस्तुत है -

महत्तर :-

नगरों व ग्रामों के बड़े-बूढ़े व विशिष्ट व्यक्तियों की गणना महत्तरों के रूप में होती थी ।[24] परमारों तथा बंगाल के पाल शासकों के अभिलेखों में महत्तम शब्द प्राप्त होता है । यशोवर्मन का कालवन ताम्रपत्र अभिलेख में राज्य अधिकारियों की सूची महत्तम का उल्लेख है ।[25] नारायण पाल देव का भागलपुर ताम्र पत्र अभिलेख महत्तम का प्रसंग है ।[26] महिपाल का बाणगढ़ ताम्रपत्र अभिलेख में भी महत्तम का उल्लेख है ।[27] आर० एस० शर्मा का कथन है कि अनुदान पत्रों में केवल ग्रामों महत्तरों के उल्लेख से यह प्रकट होता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में एक प्रकार का सामाजिक वर्गीकरण था ।[28] और ये सम्राट के अधीनस्थ अधिकारी के रूप में कार्य करते थे ।[29] कतिपय साक्ष्यों में महत्तरों को राणक पद से विभूषित किया गया । जिसने महत्तरों की प्रतिष्ठा सम्मान को और भी बढ़ा दिया । महत्तर गोगु-राणक जिसने प्रथम अमोघवर्ष के एक अनुदान का प्रवर्तन किया ।[30] दूसरा उदाहरण द्वितीय कृष्ण के समय राणक पद का उपभोग करने वाला एक महत्तर सर्वाधिकारी है ।[31] ऐसा प्रतीत होता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में दूसरे वर्गों की अपेक्षा महत्तरों को उच्च प्रतिष्ठा एवं सम्मान प्राप्त था ।

बल्लभीराज द्वितीय धरसेन के एक अनुदान पत्र में विभिन्न क्षेत्रफलों के पाँच भूमिखण्ड दान दिये जाने का उल्लेख है जो पाँच व्यक्तियों के जोत में थे इनमे एक को महत्तर और दूसरे को कुटुम्बिन कहा गया है ।[32] मदनपाल के काल में जारी किया गया गोविन्द चन्द्र का बसाही ताम्रपत्र अभिलेख में §1104§ गोविन्द चन्द्र द्वारा ग्राम दान के संदर्भ में महत्तरों तथा दूसरे व्यक्तियों के प्रति आदेश दिया गया था ।[33] त्रिलोक वर्मन के एक ताम्रपत्र अभिलेख में वर्णित है जल, स्थल, स्थावर जंगम के साथ गाँव दान की सूचना महत्तरों को दी गई थी ।[34] जीवित गुप्त द्वितीय के देवबरनार्क प्रस्तर अभिलेख में महत्तर का उल्लेख है ।[35] इसके अतिरिक्त धर्मपाल देव के खलीमपुर ताम्रपत्र लेख में महामहत्तर तथा महत्तर का प्रसंग मिलता है ।[36] शिलादित्य कालीन सामोली प्रस्तर अभिलेख §646 ईसवी§ में महाजन के आदेश पर महत्तर जेन्तक द्वारा श्री अरण्यवसिन्य दुर्गा का मंदिर प्रतिष्ठापित किये जाने का प्रसंग है ।[37]

उपरोक्त अभिलेखीय साक्ष्यों के आलोक में साहित्यिक साक्ष्यों में महत्तरों का उल्लेख प्राप्त है । हर्षचरित में प्रसंगित है कि हर्ष के अभियान के अवसर पर शुभकामना हेतु गाँव के बड़े-बूढ़ें महत्तर अपने - अपने हाथों में कलश उठाकर खड़े रहते थे ।[38] हर्षचरित में ही एक अन्य स्थान पर वर्णित है कि धान, राजमाष, मूंग और गेहूं के खेत सब ओर फैले थे । गाँव में जगह - जगह महत्तर अधिकारी थे ।[39] भोजदेव रचित श्रृंगारमंजरीकथा में महत्तम का उल्लेख है ।[40]

उपरोक्त साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था में महत्तरों की विशेष भूमिका होती थी । तथा ग्रामीण इकाई के प्रमुख अंग होते थे ।

भोगी,भोगपति :-

पूर्वमध्य युगीन अभिलेखों में भोगिक,[41] भोगपति [42], महाभोगिक[43], भोगीजन [44] इत्यादि का उल्लेख मिलता है । जिनकी गणना हम भूस्वामियों की कोटि में कर सकते हैं । बहुत अधिक संख्या में भूमिदान एवं ग्राम दान की परम्परा के फलस्वरूप ग्रामीण क्षेत्र में प्रभावशाली व अधिकार प्राप्त व्यक्तियों के रूप में भोगियों का उदय हुआ । जिसे हम पूर्वमध्य कालीन सामन्ती व्यवस्था का एक अंग मान सकते हैं । अधीत कालीन अभिलेखों में भोगपति का उल्लेख अधिकारियों की सूची में प्राप्त होता है । ललितशूरदेव के पाडुकेश्वर ताम्र पत्र अभिलेख में (854 ई0) में भोगपति का उल्लेख अधिकारी के साथ हुआ है ।[45] धुतिवर्मन का तालेश्वर ताम्रपत्र अभिलेख में भोगिक का प्रसंग राजाधिकारी की सूची में प्राप्त है ।[46] धर्मपाल के खलीमपुर ताम्रपत्र अभिलेख में इसी प्रसंग में भोगपति का उल्लेख है ।[47] आर0 एस0 शर्मा ने भोगिक , भोगपति के विषय में मत प्रस्तुत किया है कि अधिकारियों को ये पद मुख्यतः राजस्व का उपभोग करने के लिये दिये गये थे तथा प्रजा पर राजसत्ता का प्रयोग करना और उनके कल्याण के लिये कार्य करना इनका गौण-दायित्व था ।[48] उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि इन भू-स्वामियों को राजस्व ग्रहण, न्यायिक तथा प्रशासनिक अधिकार प्राप्त था । तथा उक्त विशेषाधिकार के कारण इनकी

समाजिकार्थिक प्रतिष्ठा में और अधिक वृद्धि हुई । कतिपय अभिलेखों में भोगियों द्वारा अमात्य पद प्राप्त करने का भी प्रसंग मिलता है ।[49] महाराज जयनाथ करितलाई ताम्रपत्र अभिलेख में गुज्जकीर्ति नामक भोगिक का उल्लेख है जो अपने को भोगिक और अमात्य राज्यिल का पौत्र बताता है ।[50] महाराज हस्तिन का मझगवाँ ताम्रपत्र लेख में महासांधिविग्रहिक विभुदत्त के सम्बन्ध में इसी प्रकार की सूचना प्राप्त होती है ।[51] इन दोनों ही लेखों से भोगिकों के अमात्य पद सम्हालने के साथ-साथ उनके वंशानुगत होने का भी प्रमाण प्राप्त होता है, क्योंकि इनकी कम से कम तीन पीढ़ियों का उल्लेख मिलता है ।[52] उक्त कथन से उनकी उच्च लौकिक सामाजिक प्रतिष्ठा का संकेत मिलता है । वृहत्संहिता में भोगी तथा उनके भोगों का प्रसंग है ।[53] वृहत्संहिता के इस श्लोक पर अपनी टीका में भट्टोत्पल §10 वीं शता0 ई0§ ने लिखा है कि भोगीगण ग्रामीण जनता से देयराशि वसूल करने और उनकी सेवाओं को प्राप्त करने के कारण उच्च सामाजिक स्थिति का उपभोग करते रहे थे ।[54] हर्षचरित भोगपतियों द्वारा भोली-भाली जनता को उत्पीड़ित किये जाने का साक्ष्य प्रस्तुत करता है ।[55] सुभाषितरत्न-कोश में छठी शताब्दी के ज्योतिषी वराहमिहिर का एक अनुच्छेद उद्धृत किया गया है जिसमें एक ऐसे उजाड़ गाँव की दशा का वर्णन है जिसमें केवल ढही-गिरी दिवारें ही रह गयी है, क्योंकि वहाँ के भोगपति के अत्याचारों से पीड़ित होकर किसानों ने उस गाँव का त्याग कर दिया है ।[56]

साक्ष्यों में महाभोगी तथा महाभोगपति का भी उल्लेख प्राप्त है, जिन्हें बड़े जागीरदार की संज्ञा दी जा सकती है ।[57] आर0 एस0 शर्मा का कथन है कि

राज्य की ओर से महाभोगियों के उपभोग हेतु ग्रामीण क्षेत्रों में कुछ राजस्व निर्धारित कर दिये जाते थे ; और ये महाभोगी अपने भूमिदाता प्रभु के प्रति सम्मान व्यक्त करने के लिये राजप्रसाद में उपस्थित होते थे ।[58] कादम्बरी में राजा तारापीड के प्रसाद के अन्त:पुर का वर्णन करते हुये बाण ने लिखा है कि द्वार प्रकोष्ठ पर सैकड़ों महाभोगी उपस्थित थे ।[59] हर्षचरित में महाभोगियों का प्रसंग प्राप्त होता है ।[60]

प्रारम्भिक कलचुरि अभिलेखों में भोगिपालक[61] नामक अधिकारी का उल्लेख मिलता है । वह शायद भोगियों के अधीक्षक का कार्य करता रहा हो ।[62] छठी शता० के अंतिमचरण के एक अभिलेख में भोगिक पालक महीपीलुपति {हस्तिसेना के प्रधान} के रूप में सामने आता है ।[63]

वास्तव में ग्रामीण क्षेत्रों में भू-सम्पन्न प्रतिभाशाली समुदायों में प्रथम स्थान पर भोगि, भोगपति, महाभोगी तथा भोगीपालक को मान सकते हैं जिन्हें हम एक दूसरे का पर्याय कह सकते हैं ।

ग्रामपति[64], ग्राम कूटक[65], ग्राम प्रधान[66] शब्द का प्रसंग आलोच्य कालीन अभिलेखों में प्राप्त होता है, जो ग्राम का मुखिया एवं सबसे प्रभावशाली व्यक्ति होता था ।[67] जिसे हम ग्रामीण व्यवस्था का प्रमुख अंग मान सकते थे । बंगाल के अभिलेखों में ग्रामपति का उल्लेख है । नारायण पालदेव के भागलपुर ताम्रपत्र अभिलेख में राजकीय अधिकारियों की सूची में ग्रामपति का उल्लेख है ।[68] मदनपाल देव का मनहली ताम्र पत्र में ग्राम पति का प्रसंग मिलता है ।[69] महिपाल के बाणगड

ताम्रपत्र अभिलेख में भी इसी प्रकार का उल्लेख मिलता है ।[70] तिलकमंजरी में ग्रामपति का प्रसंग प्राप्त होता है ।[71] परमारों के अभिलेख में ग्राम कूटक शब्द भी ग्राम के मुखिया के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।[72] सोदत्ति के रट्टों के अभिलेख से ज्ञात होता है कि कडोल के गवुण्ड (ग्राम-प्रधान) ने उस इलाके के प्रधानों के राजस्व मुक्त क्षेत्रों के बीच स्थित अपनी 200 मत्तर राजस्व मुक्त कृषि भूमि (किसी को) दी ।[73]

कृषक :-
======

कृषि पर निर्भरशील व्यवसायिक समुदायों में द्वितीय स्थान पर कृषक वर्ग को मान सकते हैं । आलोच्य कालीन अभिलेखीय एवं साहित्यिक साक्ष्यों में कृषकों के संदर्भ में पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध है । प्राप्त अभिलेखों में कुटुम्बिन[74], क्षेत्रकार[75], हालिक[76] इत्यादि शब्द कृषकों के लिये प्रयुक्त हुये हैं । जिनके आधार पर हम कृषि क्षेत्र में उनकी भूमिका का अवलोकन कर सकते हैं ।

वलभीनरेश धरसेन द्वितीय का मालिया ताम्रपत्र लेख (571-72 ई०) में ऐसे भूमि दान का उल्लेख है जिस पर कुटुम्बिन काम करते थे ।[77] जीवितगुप्त द्वितीय का देववरनार्क प्रस्तर अभिलेख से ज्ञात होता है श्री वरुणवासि भट्टारक की सेवार्थ हेतु वरुणिग्राम के दान की सूचना प्राप्त करने वाले राजाधिकारी के साथ उसमें निवास करने वाले कुटुम्बिन् के प्रति भी आदेश जारी किया गया था ।[78] अनन्तवर्म्मन के विशाखापट्टनम् ताम्रपत्र में (1118 ईसवी) सम्राट अनन्तवर्म्मन द्वारा प्रमुख कुटुम्बिन को बुलाकर तामर खण्डि नामक ग्राम के दान का आदेश जारी किये

जाने का प्रसंग है ।[79] धुतिवर्मन के तलेश्वर ताम्रपत्र अभिलेख में दान की सूचना प्राप्त करने वाले अधिकारियों में कुटुम्बिन का उल्लेख है ।[80] बंगाल के अभिलेखों में कुटुम्बिन का विवरण प्राप्त होता है ।[81] इस प्रकार उपरोक्त साक्ष्यों से स्पष्ट है कि कुटुम्बिन का महत्व था ।

यद्यपि कि क्षेत्र करान् शब्द अभिलेखों में प्राप्त होता है । परन्तु बंगाल के अभिलेखों में कृषकों के लिये क्षेत्रकरान् शब्द का अधिक प्रयुक्त हुआ है । लक्ष्मनसेन का गोविन्दपुर ताम्रपत्र लेख में दान के समय उपस्थित जनों में क्षेत्रकारों का उल्लेख मिलता है ।[82] बल्लाल सेन का नैहाटी ताम्रपत्र में इसी प्रकार प्रसंग उपलब्ध है ।[83] श्रीचन्द का रामपाल ताम्रपत्र अभिलेख[84], (11 वीं शता0) भोजवर्मन का बेलाव ब ताम्रपत्र[85] (12वी शता0) तथा लक्ष्मणसेन का सुन्दरबन ताम्रपत्र अभिलेख[86] में क्षेत्रकारों का विवरण है ।

कतिपय लेखों में हालिक[87] का उल्लेख मिलता है । कामन अभिलेख में एड्डुवाक नामक हालिक का प्रसंग मिलता है ।[88]

इस प्रकार अभिलेखीय साक्ष्यों के अतिरिक्त अधीत कालीन ग्रन्थों में भी कृषकों को अनेकानेक नामों से अभिहित किया गया है । अभिधान चिन्तामणि में कुटुम्बी, कर्षक, क्षेत्री, हली, कृषिबल, क्षेत्राजीवी, सरिस्त इत्यादि नाम प्राप्त है ।[89] वराहमिहिर ने कृषि जीवियों के समुदाय का उल्लेख करते हुये उन्हें कृषिबलानाम्[90], कृषिरतानाम्[91], कृषिकर[92] और कृषिजीविन्[93] कहा है ।

कतिपय ग्रन्थों में प्रयुक्त कीनाश शब्द की व्याख्या कृषक के रूप में प्रस्तुत की गई है।[94] विवादरत्नाकर में कीनाश शब्द का प्रयोग हलवाह के रूप में हुआ है।[95] इसी ग्रन्थ में एक अन्य स्थान पर कीनाश की व्याख्या कृषिबल के नाम से की गई है।[96] कृत्यकल्पतरू में कृषिबल के रूप में कीनाश शब्द प्राप्त होता है।[97]

कृषकों द्वारा खेत में श्रम किये जाने के सन्दर्भ में प्रसंग प्राप्त होते हैं। ये कृषक कुटीर में निवास करते थे।[98] अवधानकल्पलता से ज्ञात होता है, खेतों में भूखे प्यासे रहकर कठिन परिश्रम करते थे। इनका सम्पूर्ण शरीर धूल धूसित रहता और हाथ पैर कट जाते थे।[99] कृषकों की स्त्रियाँ भी उनके कार्य में हाथ बटाती थी। वे खेतों की रखवाली करने का कार्य करती थी। कामरूप देश के प्रसंग में शालि धान्य के खेतों में हाथ से ताली बजाकर सुग्गों को उड़ाने वाली गोपिकाओं का वर्णन किया गया है।[100] कभी-कभी कृषकों को अनेक विपदाओं का सामना करना पड़ता था। प्राकृतिक विपदाओं में अकाल[101], अतिवृष्टि[102], अनावृष्टि[103] और अग्निदाह[104] इत्यादि का प्रमाण मिलता है। स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ अभिलेख में उल्लिखित है कि अत्यधिक वर्षा होने के कारण सुदर्शन झील का पानी चारों ओर फैल गया था। इसके कारण वहाँ के निवासियों के लिए दुर्भिक्ष की स्थिति हो गई थी।[105] भोजदेव कालीन यशोवर्मन का कालवन ताम्रपत्र अभिलेख में अल्पवृष्टि का उल्लेख है।[106]

कृषक समुदाय के अन्तर्गत एक वर्ग उन कृषकों का दृष्टिगत होता है, जो दूसरों की भूमि पर उपज की बटाई के आधार पर प्राप्त पारिश्रमिक पर कृषि एवं

कृषि कार्य करते थे । प्रस्तुत संदर्भ में स्मृतिकारों ने अपने विचार प्रस्तुत किये हैं कि आधी उपज पर शूद्रों को खेत दिये जाते थे ।[107] पराशर स्मृति में आर्धिक को पृथक मिश्रित जाति के रूप में माना है ।[108] इस प्रकार स्पष्ट है कि इस प्रकार के कृषक सभी वर्णों के हुआ करते होंगे । मेधातिथि ने कुटुम्बिन को आर्धिक के रूप में स्वीकार किया है ।[109] अभिलेखीय साक्ष्यों में भी आर्थिक शब्द का उल्लेख उन कृषकों के लिये किया गया है जो दूसरों की भूमि पर कृषि कार्य करते थे और उपज का आधा भाग प्राप्त करते थे ।[110]

दो प्रकार के बटाई दारों का प्रसंग प्राप्त होता है । प्रथम वर्ग में उन कृषकों का उल्लेख है जो उपज का आधा भाग प्राप्त करते थे । और द्वितीय वर्ग वह जो उपज का 1/4 भाग तथा 1/5 भाग प्राप्त करते थे । प्रथम कोटि के बटाईदार को भट्टस्वामी जैसे टीकाकार ने ग्राम कुटुम्बिन के रूप में वर्णित किया है ।[111]

उपरोक्त कृषक वर्ग के समर्थन में हम आलोच्य कालीन उन अभिलेखीय प्रमाण को प्रस्तुत कर सकते हैं जिसमें अनुदत्त ग्राम में क्षेत्रकारों को ग्रहीता का आदेश पालन का निर्देश दिया जाता था । देवपाल ने मुंगेर जिले के अन्तर्गत मौसिक नामक ग्राम ब्राह्मण को दान दिया [112] तथा इस दान में निवासियों को ही नहीं अपितु क्षेत्रकारों को ग्रहीता का आदेश पालन का निर्देश दिया गया ।[113] खलीमपुर ताम्रपत्र लेख में समस्त जनों के साथ ग्राम के क्षेत्रकारों को ग्रहीता का आदेश पालन का निर्देश दिया ।[114] लक्ष्मणसेन का माधानगर ताम्रपत्र[115] तथा लक्ष्मणसेन का

सुन्दरवन ताम्रपत्र में इसी प्रकार का प्रसंग प्राप्त होता है ।[116] बल्लभी नरेश धरसेन तृतीय एक लेख (623-24 ईसवी) में कुटुम्बिनों के हस्तान्तरण का उल्लेख मिलता है ।[117] 1207 के चौलुक्य अनुदान पत्र से ज्ञात होता है, चौलुक्यों के सामंत मेहर राज जगमल्ल ने तलाझा नामक विशाल में अपने स्थापित किए दो शिवलिंगों को पास के दो गांवों में जमीन क दो टुकड़े दान किये, और यह व्यवस्था भी कर दी कि अमुक तीन कृषक उनमें खेती करेंगे ।[118]

उपरोक्त विवरणों के अध्ययन से स्पष्ट होता है, दान में प्राप्त भूमि या ग्राम के साथ उसमें निवास करने वाले कृषकों को ग्रहीता को सौंपे जाने तथा हस्ता-रन्तरण की प्रथा का पर्याप्त प्रचलन था । जिसके फलस्वरूप दान ग्रहीता अनुदत्त ग्रामों तथा भूमि खण्डों पर कृषकों से बटाई या पारिश्रमिक पर कृषि एवं कृषि कार्य करवाते थे ; तथा पारिश्रमिक के रूप में प्राप्त भाग ही उनकी जीवकोपार्जन का साधन था । इस प्रकार आश्रित कृषकों का यह समुदाय क्षेत्रस्वामी के अधीनस्थ कृषि कार्य करता था ।

चतुर्थ वर्ग में भूमि हीनकृषक श्रमिकों को रखा जा सकता है । कृषक श्रमिकों के पास स्वयं की भूमि नहीं होती थी । सामान्य रूप से ये दूसरों की भूमि पर मजदूरी पर कार्य करते थे । क्षेत्रस्वामी अपनी आवश्यकतानुसार कम याअधिक श्रमिकों को रखकर कृषि सम्बन्धी कार्य करवाते थे । यशस्तिलक में वर्णित है कि श्रमिकों की सहायता से खेत जोतने और बोने का काम होता था ।[119] और इच्छानुसार रखते और निकालते थे । इस विषय पर अल्तेकर का कथन है कि

बेदखली के अधिकार का कहीं उल्लेख नहीं हुआ है ।[120] किन्तु अनुदान की शर्तों से ऐसा प्रतीत होता है कि अनुदत्त क्षेत्रों में अस्थायी जोतदार हुआ करते थे और वे तभी तक जोतदार रह सकते हैं जब तक ग्रहीता चाहते ।[121] इच्छा होने पर वे उन्हें अपनी भूमि से निकाल कर दूसरों से खेती करवा सकता है ।[122] जिसका उदाहरण कामन शिलालेख में प्राप्त है प्रस्तुत लेख में आठ अनुदानों का वर्णन है जो स्थानीय देवता शिव के नाम दिये गये थे ।[123] छठे लेख में उल्लिखित है कि उद्भट नामक एक व्यक्ति ने अपने अधीनस्थ ग्राम में तीन हलों से जोती जाने योग्य भूमि दान की थी जिसे पहले सहल्ल, जज्ज तथा कुछ ब्राह्मण जोतते थे और बाद में उसे एडुवाक नामक हलिक जोतता था ।[124]

अधीत कालीन साक्ष्यों में श्रमिकों के वर्गों का उल्लेख मिलता है । आचार्य शुक्र ने श्रमिकों का कई वर्ग निर्धारित किया है । प्रथम स्तर पर राज्य श्रमिक थे जो राजा से सम्बधित कार्यों को करते थे । द्वितीय स्तर पर साधारण श्रमिक, जो समाज के विभिन्न वर्गों का कार्य करते थे ।[125] कामन्दक ने भी कई प्रकार के श्रमिकों का उल्लेख किया है तथा इसी प्रसंग में राजसेवा के योग्य श्रमिकों का विवरण देते हुये उनके विशिष्ट गुणों की चर्चा की है ।[126] इस प्रकार उच्चकोटि के मजदूर वर्ग को अधिक वेतन, कपड़ा तथा भोजन दिया जाता था । मध्यम वर्ग के श्रमिक अपनी जरूरत तक पूर्ण करते थे । इसके विपरीत निम्नकोटि के श्रमिक अपनी जरूरत तक पूर्ण करने में असमर्थ थे ।[127] अभिधानचिन्तामणि में वेतन भोगी तथा अवेतनिक कर्मकारों का उल्लेख मिलता है ।[128] स्पष्ट है कि समाज में श्रमिकों का कई वर्ग विद्यमान था ।

श्रमिकों को समाज को एक प्रमुख अंग स्वीकार करते हुये पूर्वमध्य युगीन शास्त्रकारों ने श्रमिकों के ~~विषय में~~ वेतन, मजदूरी इत्यादि के विषय में नियमों का प्रतिपादन किया है। याज्ञवल्क्य के अनुसार खेत में काम करने वाले श्रमिकों को उपज का दसवाँ भाग प्राप्त होता था।[129] किन्तु देवन्नभट्ट ने अपनी कृति स्मृतिचन्द्रिका में उल्लेख किया है कि उपज का दसवाँ भाग तब प्राप्त होना चाहिए जबकि बिना अधिक श्रम के फसल हो जाती हो। उनके अनुसार श्रमिक को अपने स्वामी से भोजन, कपड़ा मिलना चाहिए। अगर उसे भोजन, कपड़ा नहीं प्राप्त हो तब उसे उपज का तीसरा भाग देना चाहिए।[130] मनुस्मृति के भाष्यकार मेधातिथि के विचारानुसार प्रतिमास अनाज के भार का एक द्रोण और प्रत्येक छः महीने पर वस्त्र, एक साधारण श्रमिक को पारिश्रमिक के रूप में प्रदान करना चाहिए।[131] कात्यायन को उद्धृत करते हुये चंडेश्वर का मत है कि श्रमिकों से अपवित्र कार्य नही कराना चाहिए।[132] आचार्य शुक्र ने श्रमिकों से कितना समय काम लिया जाय, उनके अवकाश का समय कितना हो, उनसे किस प्रकार का काम लिया जाय तथा उन्हें कितनी मजदूरी दी जाये इत्यादि के विषय में विस्तृत सूचना शुक्रनीतिसार में दी है।[133]

श्रमिकों को दिये जाने वाले वेतन को अभिधानचिन्तामणि में भृतिः, निष्क्रयः, पण, कर्मणामा, मूल्यम्, निर्वेश, भरण, विद्या, भृत्या इत्यादि नामों से अभिहित किया गया है।[134] वेतन भुगतान के संदर्भ में शुक्र का कथन है कि वेतन समय और कार्य के अनुसार निश्चित किया जाता था।[135] याज्ञवल्क्य के अनुसार

कार्य पूर्ण होने पर मजदूरी दी जाती थी ।[136] वृहस्पति ने मत प्रस्तुत किया है, मजदूरी प्रतिदिन, 15 वें दिन, मासिक, छः माह, वर्ष या कार्य के समाप्त होने पर दी जाती थी ।[137]

आलोच्य कालीन ग्रन्थों में श्रमिक को कुछ सुविधायें दिये जाने के संदर्भ में भी प्रमाण प्राप्त होते हैं । शुक्र ने वृद्धावस्था में श्रमिकों को निवृत्ति वेतन दिये जाने का अनुमोदन किया है[138] तथा यह भी मत प्रस्तुत किया है कि जो कर्मचारी स्वामी के यहाँ लगातार चालीस वर्षों तक कार्य कर चुका हो उसे अपनी सम्पूर्ण वृद्धावस्था में और उसके बाद उसके पुत्रों को गुजारा हेतु निवृत्ति वेतन (पेंशन) देना चाहिये ।[139] तथा कर्मकारों को वर्ष में 15 दिन का अवकाश वेतन के साथ देना चाहिये ।[140] इसके अतिरिक्त अधिक समय तक कार्य करने पर, निश्चित वेतन से अधिक मजदूरी देना चाहिये ।[141] श्रेष्ठ कार्य करने पर पुरस्कार स्वरूप राजा अथवा स्वामी द्वारा पारितोषिक दिये जाने का प्रसंग मिलता है ।[142] और यदि श्रमिक कार्य करते समय मृत्यु को प्राप्त होता है, उसके परिवार के भरण - पोषण हेतु धन दिये जाने का भी विधान किया है ।[143]

उपरोक्त साक्ष्यों के अनुशीलन से ऐसा प्रतीत होता है कि आलोच्य काल में श्रमिकों की स्थिति में कुछ सुधार हुआ ।

कृषि से सम्बधित विभिन्न समुदायों की विवेचना करने के उपरान्त जब हम कृषकों की स्थिति के विषय में विचार करते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि आलोच्य काल में कृषकों की स्थिति में कुछ गिरावट आई । अर्थात इस काल में उनकी स्थिति अधिक अच्छी न थी । कारण यह था कि कृषक पूर्णरूप से ग्रहीताओं

और धार्मिक वृत्ति भोगियों पर निर्भर हो गये थे । वे ग्रहीता के आदेशा - नुसार कार्य करने को बाध्य थे । इस प्रथा का ज्वलंत उदाहरण पूर्वमध्य कालीन अनुदान पत्रों में प्राप्त है । कतिपय साक्ष्यों में तो ग्रहीता या क्षेत्र स्वामी द्वारा कृषक के उत्पीड़न का भी प्रमाण मिलता है । कृत्यकल्पतरू में उल्लिखित है, गरीब और आश्रित कृषक यदि स्वामी का कृषि छोड़ते तो उन्हें छड़ी से पीटा जाता था ।[144]

कृषकों की गिरती हुई स्थिति का दूसरा कारण कृषि कर प्रतीत होता है । इस काल में कृषकों को अधिक कर देना पड़ता था । उपज का एक निश्चित भाग राज भाग होता था, जिसकी पुष्टि पूर्वमध्य कालीन ग्रन्थों से होती है । स्मृतिकारों ने राजा को उपज का छठा भाग प्राप्त करने का अधिकारी माना है ।[145] वृहस्पति ने कृषिबल अर्थात कृषि पर जीविका निर्वाह करने वाले कृषक को खिल, वर्षा और बसन्त की उपज का क्रमश: 1/10, 1/8 तथा 1/6 भाग राजा को देने का विधान किया है ।[146] लक्ष्मीधर ने प्राचीन शास्त्रकार मनु, गौतम, वृहस्पति, विष्णु के विचारों को उद्धृत करते हुये 1/6, 1/8 तथा 1/12 भाग राजा को देने का उल्लेख किया है ।[147] मानसोल्लास में वर्णित है, भूमि की उर्वरता के अनुसार 1/6, 1/8, तथा 1/12 भाग राजभाग के रूप में राजा को प्राप्त होना चाहिए ।[148] नारायणपालदेव के भागलपुर ताम्रपत्र अभिलेख में भगवान शिव के सेवार्थ दान किये ग्राम में ग्रहीता द्वारा राजभाग के रूप में उपज का 1/6 भाग उपभोग करने का आदेश का प्रसंग है ।[149]

इस प्रकार उपरोक्त साक्ष्यों में प्रसंगित राजभाग के अतिरिक्त अन्य करों का उल्लेख हमें अभिलेखों में प्राप्त होता है । गाहड़वाल अनुदान पत्रों में करों की लम्बी सूची प्राप्त होती है ।[150] जिसके विषय में शर्मा का मत है कि उनके शासन काल में उत्तर भारत में किसानों को जितने कर देने पड़ते थे उतने पहले कभी नहीं देने पड़ते थे ।[151]

त्रिपुरी के कलचुरियों के 1167 के अभिलेख में 11 प्रकार के करों का उल्लेख मिलता है ।[152] इस प्रकार प्रमुख करों में भाग भोग, बलि, धान्य, हिरण, उद्रंग, उपरिकर, उदक इत्यादि का उल्लेख है । उपरोक्त करों की पुष्टि हेतु अनुदान पत्रों का उल्लेख किया जा सकता है जिससे ग्रहीता को उक्त करों के उपभोग का अधिकार दिया गया था । भोजदेव कालीन महुडी ताम्रपत्र अभिलेख में ग्रहीता को ग्राम की चारों सीमाओं, गोचर भूमि, तथा हिरण्य, भाग भोग, उपरिकर इत्यादि आय सहित भोग करने का अधिकार का प्रसंग है ।[153] भोजदेव के बांसवाड़ा ताम्रपत्र अभिलेख (1020 ई0) से ज्ञात होता है कि सौ निर्वतन भूमि के साथ हिरण्य आय, साथ में भाग भोग, उपरिकर सभी प्रकार आय के साथ ब्राह्मण वामन पुत्र भाइल को भूमि दान की गई थी ।[154] परमारों के अन्य लेखों में इसी प्रकार का प्रसंग है ।[155] बंगाल के लेखों में भी ग्रहीता को क्षेत्रकारों द्वारा विभिन्न प्रकार के कर दिये जाने का प्रसंग है ।[156]

उपरोक्त अभिलेखीय विवरणों एवं साहित्यिक साक्ष्यों से यह स्पष्ट होता है कि करों की अधिकता के फलस्वरूप किसानों को उपज का अधिक अंश प्राप्त नहीं होता था, जिस कारण उनकी आर्थिक स्थिति काफी शिथिल हो गई और वे सीमित क्षेत्र में कृषि करने को बाध्य हो गये ।

<u>पशुपालन :-</u> कृषि के साथ-साथ पशुपालन भी तत्कालीन समाज का प्रमुख व्यवसाय था। तिलकमंजरी में समरकेतु के प्रयाण के प्रसंग में नगर की बाहरी सीमा पर बड़ी-बड़ी गोशालाओं का सचित्र वर्णन किया गया है।[156अ] अभिधान-चिन्तामणि में गोशाला को सन्दानिनी की संज्ञा दी गई है।[156ब] विवेच्य-कालीन अभिलेखों में भी गोकुल गोकुलिक तथा गोकुल अधिकारी[156स] के विषय में प्रमाण मिलते हैं। चन्द्रदेव के चन्द्रावती ताम्रपत्र अभिलेख (1092 ईसवी) में दान की सूचना प्राप्त करने वालों में गोकुल का प्रसंग मिलता है।[157] गोविन्द चन्द्र देव के कमौली ताम्रपत्र अभिलेख (1125 ईसवी) में राजाधिकारियों की सूची में गोकुल अधिकारी का उल्लेख मिलता है।[158] गोविन्द चन्द्रदेव के सेहत-मेहत ताम्रपत्र में गोकुल अधिकारी का विवरण प्राप्त है।[159] तिलकमंजरी में उल्लिखित है गोशालाओं का स्वामी घोषधिप कहलाता था।[160]

इस व्यवसाय के अन्तर्गत विभिन्न पशुओं का पालन विभिन्न प्रयोजन हेतु किया जाता था। तिलकमंजीर में प्रसंगित है ग्रामीणजन समरकेतु की सेना के प्रयाण के समय बैलों को देखकर उनके प्रमाण, रूप बल तथा वृद्धि के अनुसार उनके मूल्य का अनुमान लगा रहे थे।[161] गोशालाओं में कुत्ते भी पाले जाते थे जो निरन्तर गोरस के पान से अत्यन्त परिपुष्ट काया से युक्त थे।[162]

<u>गोप या गोपाल :-</u> ग्वाले के लिये गोप अथवा गोपाल शब्द प्रयुक्त हुआ है। गोपाल दुग्ध विक्रता हुआ करते थे।[163] गोपाल के अतिरिक्त इन्हें गोधुक, आभीर, गोप, गोसंख्या, वल्लव इत्यादि नामें से अभिहित किया गया है।[164]

गोपाल की स्त्री को गोपाललना कहा गया है ।[165] गोपाललनाएँ शरीर - धारिणी साक्षात् गोरसश्री के समान जान पड़ती थी ।[166] समरकेतु की विजय - यात्रा के प्रसंग में गोशालाओं का सुन्दर चित्रण किया गया है ।[167] अनंगभीम तृतीय के नगरी ताम्रपत्र अभिलेख में नगरनिवासियों में धीरू गभी नाम के गोपालों का प्रसंग मिलता है ।[168] मैत्रक/वंशीय विष्णुसेन के ताम्रपत्र अभिलेख में गोपाल का उल्लेख है ।[169] नरसिम्म द्वितीय कालीन केन्दुपट्टन लेख में सम्राट नरसिम्भ द्वारा 100 वाटी भूमि दान किये जाने का उल्लेख है । प्रस्तुत लेख में अनुदान के साथ जुड़े रहने वाले ﴾ प्रजाओं ﴿ में गोपाल का प्रसंग मिलता है ।[170] ललित - शूर के पाण्डुकेश्वर ताम्रपत्र अभिलेख में आभीर का प्रसंग है ।[171] ।

हेमचन्द्र ने आभीर, गोप, वल्लव तथा गायों के अधिकारी को वैश्य वर्ग में स्थान दिया ।[172] यद्यपि वैजयन्ती[173] व हलायुध कोश[174] ने इन्हें शूद्र वर्ग में माना है । अत: गोपालों की सामाजिक स्थिति के विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है । मानसोल्लास के अनुसार सैनिक अभियानों में यातायात के लिए भैंसों, ऊँटों और बैलों का उपयोग होता था ।[175] हर्षचरित में रसद का सामान ढोने वाले बनिये के बैलों का प्रसंग मिलता है ।[176] इसके साथ घोड़े भी भारवाहक पशु बन गये थे । अभिलेखीय साक्ष्य में बयाना नामक स्थान से 955 ईसवी में प्राप्त एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि अनुबन्धित ग्राम से गुजरने वाले व्यापारिक माल से लदे प्रत्येक घोड़े पर चुंगी वसूल की जाती थी ।[177] एक अन्य अभिलेख में ऊँट पर लदे माल पर राज्य द्वारा चुंगी वसूल करने का उल्लेख मिलता है ।[178]

कामन्दक ने लिखा है कि शत्रु की सेना को नष्ट करके उनपर विजय प्राना किसी शासक के हाथियों पर निर्भर है ।[179] शुक्र के अनुसार बोझा ढोने के लिए हाथी श्रेष्ठ साधन है ।[180] हर्षचरित में हाथियों को इकत्र करने तथा सेना के लिये उन्हें शिक्षित करने का उल्लेख है ।[181]

इस प्रकार उपरोक्त विवरणों से स्पष्ट होता है कि पशुओं का उपयोग केवल सैनिक अभियान में ही नहीं अपितु व्यापारिक प्रयोजनों, माल ढोने के लिये भी किया जाता था ।

पशुओं की समुचित व्यवस्था एवं उचित देख रेख हेतु राज्य की ओर से अनेक पदाधिकारियों एवं व्यक्तियों की नियुक्ति की जाती थी , जो अपने कार्यों के अनुसार भिन्न-भिन्न नामों से जाने जाते थे । जिनकी चर्चा हम पृथक पृथक समुदाय के रूप में कर सकते हैं ।

<u>महामात्र :-</u> हर्षचरित से ज्ञात होता है कि सेना के लिये हाथियों को शिक्षित करने के लिये महामात्र संज्ञक अधिकारी की नियुक्ति की जाती थी ।[182] गोविन्द चन्द्र के सेहत मेहत ताम्रपत्र अभिलेख में राजकीय अधिकारियों की तालिका में गजाधिकारी का प्रसंग है ।[183] अधीतकालीन अधिकांश लेखों में गतपति शब्द प्रयुक्त हुये हैं ।[184]

<u>हस्त चिकित्सक :-</u> हर्षचरित में बाण ने गजविभाग से सम्बन्धित व्यक्तियों की सूची प्रस्तुत की है । सर्वप्रथम (हस्तचिकित्सक) इभभिषग्वर का उल्लेख किया है तथा इनके विषय में प्रसंगित है, गजसाधनाधिकृत स्कन्दगुप्त उनसे खास-खास रूग्ण

गजों के विषय में पूछ रहे थे कि पिछली रात उनका क्या हाल रहा ।[185] यद्यपि कि कौटिल्य ने भी हस्तवैद्य का उल्लेख किया है ।[186]

महावत :- द्वितीय स्थान पर महामात्र का उल्लेख है ।[187] वर्णरत्नाकर में महावत का प्रसंग है ।[188] माड़धाड़ में प्रवीण हाथी "महाउत की आज्ञा अंकुश के प्रहार से ही मानते थे ।[189] अभिलेखों में माहुत तथा महामात्र {हाथी चालक} शब्द प्राप्त होते हैं ।[190] इस प्रकार महावत के लिये महामात्र, महाउत, माहुत इत्यादि शब्दों का प्रयोग किया गया है ।

आरोहक :- तृतीय स्थान पर आरोहक का उल्लेख किया गया है । नियमित रूप से अलंकृत हाथियों की सवारी के समय जो लोग चलाते थे।उन्हें आरोहक की संज्ञा दी गई है ।[191] कौटिल्य ने भी हाथियों के सेवक के रूप में आरोहक का वर्णन किया है ।[192]

गज शास्त्र ज्ञाता को आधोरण की संज्ञा दी गई है ।[193] इसके साथ निषादिन् का प्रसंग मिलता है । जिसका मुख्य कार्य सवारी के अतिरिक्त समय से हाथियों को टहलाना चलाना था ।[194] हर्षचरित निषादिन के संदर्भ में उल्लिखित है कि प्रभावर्द्धन की मृत्यु के अवसर पर स्तंभ से बंधा हुआ राजगुजर दर्पशात शोक में चुपचाप खड़ा था और उसके ऊपर बैठा हुआ निषादिन् रो रहा था ।[195]

हाथियों को घास चारा देने वाले परिचारक का भी उल्लेख है जिन्हें कर्पटी कहा गया है ।[196] कर्पटी के विषय में बाण ने लिखा है इस कार्य के लिये कुछ नये लोगों की नियुक्ति की गई थी तथा वे नौकरी लग जाने की खुशी में दौड़ रहे थे ।[197]

अश्वपति :- गजों से सम्बंधित अधिकारियों की भांति अश्वाधिकारी, अश्वपति का उल्लेख साक्ष्यों में प्राप्त होता है । गोविन्द चन्द्र का कमौली ताम्रपत्र अभिलेख में अश्वाधिकारी की चर्चा राजाधिकारियों के साथ की गई है ।[198] चन्द्रदेव के चन्द्रावती ताम्रपत्र अभिलेख में राजाधिकारियों की श्रेणी में अश्वाधिकारी का प्रसंग है ।[199] द्युतिवर्मन के तलेश्वर ताम्रपत्र अभिलेख में राजाधिकारियों की तालिका में अश्वपति की गणना की गई है ।[200] ललित - शूर का पाण्डुकेश्वर ताम्रपत्र अभिलेख (854 ईस्वी) में भी अश्वपति की चर्चा राजाधिकारी के साथ की गई है ।[201] अन्य लेखों में भी इसी प्रकार का विवरण प्राप्त होता है ।[202] स्पष्ट है कि अश्वाधिकारी को राजकीय सम्मान एवं पद प्राप्त था ।

अश्ववाहक जिनकी गणना घुड़सवार जैसे सामान्य अधिकारी में की गई है ।[203]

1- कृषि पराशर, पृ0 63, 'कृष्यन्वितो हिलोके स्मिन् भूयादेकश्व भपतिः' ।

2- शुक्रनीतिसार, अध्याय 3, श्लोक 276-78 'कृषिस्तु वोन्तमा वृत्तिर्यासीर मातृकामता' ।

3- हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 53.

4- तिलकमंजरी सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 222.

5-वही, चन्दनविटपवृत्तिपरि क्षेपरक्षित क्षेत्र वल्यानि, तिलकमंजरी, पृ0 133.

6- से0 ई0 , 2, पृ0 178.

'यवगोधूमेक्षुसन्ततामष्टभानतिरिक्त वतुवाटी परिमिताम्भूमि भारद्वाज स गोत्राम देवधर शमर्मणे ।'

7- इन्सक्रिप्सन्स आँफ इम्पीरियल परमारज, पृ0 42.

8- से0 ई0, 2, पृ0 250.

9- वही, पृ0 420.

10- वही, पृ0 634.

10अ- याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.119; विष्णुस्मृति, 2.13; शुक्रनीतिसार, अध्याय प्रथम, श्लोक - 42.

11- पराशर माधवी, आचार काण्ड, 2.2, 2.3, तुलनीय स्मृति चन्द्रिका;

- पद्मपुराण, देखिए यादव, सोसाइयटी एण्ड कल्चर हिस्ट्री आँफ नार्दन इण्डिया, पृ0 80-98.

12- एपि0 इण्डि0 भाग 24, पृ0 331.

13- पुरी बी0एस0, दि गुर्जर प्रतिहार, पृ0 133.

14- नारद स्मृति, 1 - 81.

15- नरसिंह पुराण, 58-11.

16- वार्टस, भाग- 1, पृ0 168.

17- याज्ञवल्क्य स्मृति, 11, 158.

18- एपि0 इण्डि0, 9 न0 1, प्लेट ए, पंक्ति - 19, प्लेट बी0, पंक्ति 63, देखिए, 3, पृ0 264.

19- सी0 आई0 आई, 3 न0 2, पंक्ति 6; न0 11, पंक्ति 13.

20- एपि0 इण्डि0 9, न0 1, प्लेट ए, और बी

21- वही, प्लेट ए, पंक्ति 19.

22- वही, न0 36, पंक्तियाँ 3 - 6 , 10 - 15, और 21 - 3.

23- वही, न0 1.16, पंक्ति 17, तुलनार्थ देखिए भारतीय सामंतवाद, हिन्दी अनु0 पृ0 94 - 95.

24- इण्डि0 एपि0 ग्लोस0, पृ0 179.

25- इन्सक्रिप्सन्स ऑफ इम्पीरियल परमारज, पृ0 82

26- कापर्स ऑफ बंगाल इन्सक्रिप्सन्स, पृ0 182.

27- वही, 202.

28- भारतीयसामंदवाद, हि0 अनु0 , पृ0 108

29- सै0 ई0, 2, पृ0 68, 93

30- एपि0 इण्डि0, 18, पृ0 257

31--वही, पृ0 108.

32- सी0 आई0 आई0 , 3, 38.166

33- सै0 ई0 2, पृ0 279

34- वही, पृ0 318.

35- वही, पृ0 51.

36- वही, पृ0 64.

37- वही, पृ0 360-61.

38- हर्षचरित, पृ0 212.

39- हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 55.

40- इन्सक्रिप्सन्स आँफ इम्पीरियल परमारज, पृ0 82.

41- इण्डि0 एपि0, ग्लोस, पृ0 55, से0 ई, 2, पृ0 217-218, 357, 426-27

42- से0 ई0 2, 64, 68, 268, 270. एपि0 इण्डि0 12, पृ0 9.

43- इण्डि0 एपि0 ग्लोस0, पृ0 174, एपि0 इण्डि0 12, पृ0 9.

44- से0 ई0 2, पृ0 157, 160.

45- से0 ई0 2, पृ0 270.

46- वही, पृ0 218.

47- वही, पृ0 63, 64.

48- भारतीय सामन्तवाद , हि0 अनु0 पृ0 15.

49- सी0 आई0आई, जि0 3, न0 23, पंक्तियाँ - 18-20, न0 26, पंक्तियाँ 22-23.

50- वही,

51- वही, पृ0 23, 108.

52- वही, न0 26, पंक्ति 22-23.

53- बृहत्संहिता, 11.62

54- वही,

55- हर्षचरित, पृ0 212•

56- सम्पादक, डी0 डी0 कौसम्बी, वी0 वी0 गोखले, श्लोक - 1175•

57- इण्डि0 एपि0 ग्लोस, पृ0 174•

58- भारतीय सामन्तवाद, हि0 अनु0, पृ0 17

59- कादम्बरी, पृ0 103

60- हर्षचरित, पृ0 212•

61- का0 ई0 ई0, जि0 4, नं0 13, पंक्ति - 4, न0 18, पंक्ति 9

62- वही, भूमिका पृ0 141•

63- वही, न0 13, पंक्ति 4•

64- इण्डि0 इपि ग्लोस0, पृ0 121; याज्ञवल्क्य की मिताक्षरा, 11•281

65- वही, पृ0 121•

66- वही, पृ0 121•

67- वही, पृ0 121; इन्सक्रिप्सन्स ऑफ इम्पीरियल परमारज, पृ0 86

68- कापर्स ऑफ बंगाल इन्सक्रिप्सन्स, पृ0 182•

69- वही, पृ0 202

70- वही, पृ0 215•

71- तिलकमंजरी सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 221•

72- इन्सक्रिप्सन्स ऑफ इम्पीरियल परमारज, पृ0 86•

73- भारतीय सामन्तवाद, हि0 अनु0, पृ0 90

74- इण्डि0 एपि0 ग्लोस0, पृ0 169; से0 ई0 2, पृ0 42,51,173,217-18,516, 519•

75- कापर्स आँफ बंगाल इन्सक्रिप्सन्स, पृ0 273, 225, 239, 281

76- इण्डि0 इपि0 ग्लोस0, पृ0 125; एपि0 इण्डि0, जि0 15, पृ0 297.

77- सी0 आई0 आई0, 3, पृ0 38, 116.

78- से0 ई0, 2, 51.

79- वही, पृ0 173.

80- वही, 2, पृ0 217.

81- कापर्स आँफ बंगाल इन्सक्रिप्सन्स, पृ0 131, 202, 215.

82- वही, पृ0 273.

83- वही, पृ0 262

84- वही, पृ0 225.

85- वही, पृ0 239.

86- वही, पृ0 281.

87- इण्डि0 एपि0 ग्लोस0 पृ0 125.

88- एपि0 इण्डि0 24, पृ0 336

89- अभिधानचिन्तामणि, तृतीय काण्ड, 4-554

90- वृहत्संहिता, 15-28, 8-52

91- वही, 33, 211.

92- वृहतजातक, 12.18

93- वृहत्संहिता, 31- 4

94- नारद स्मृति, 1·181; वैजयन्ती, पृ0 258, पंक्ति 45·

95- विवादरत्नाकर, पृ0 158·

96- वही, पृ0 126·

97- कृत्यकल्पतरू, व्यवहार काण्ड, पृ0 32, 370, तुलनार्थ देखिए यादव सोसायटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इण्डिया, पृ0 17·

98- भारतीय सामंतवाद, हि0 अनु0, पृ0 56·

99- अवधान कल्पलता, 26, 94-96·

100- तिलकमंजरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 222·

101- वृहत्संहिता, 3·36, 17, 19, 478, 19, 21,29 आदि अकाल के कुल 42 संदर्भ है, देखिए मैटी, इकोनामिक लाइफ इन नार्दन इण्डिया इन दी गुप्ता पीरियड, परिशिष्ट 1, पृ0 251-52·

102- वृहत्संहिता, 3·37; 5·34; 7, 1·8 आदि , वही, 252·

103- वही, 3-26, 4·13;21, 5-20, 23, 55, 61 आदि, मैटी, वही

104- वृहत्संहिता, 3·6, 7·1, 18 आदि कुल 9 संदर्भ प्राप्त है, मैती, वही,

105- फ्लीट, 56·

106- इन्सक्रिप्सन्स आँफ इम्पीरियल परमारज, पृ0 86·

107- मनुस्मृति, 4, 253; विष्णु स्मृति, 7, 16,(आर्धिक) याज्ञवल्क्य स्मृति 1·166 में अर्ध सीरिक शब्द का प्रयोग किया है ।

108- पराशर माधवी, प्रायश्चित्त काण्ड , 11-24·

109- मेधातिथि का भाष्य, मनु0 4, 253.

110- इण्डि0 एपि0 ग्लोस, पृ0 27.

111- जी0 बी0 ओ0 आर0 एस0, जि0 12, पृ0 137.

112- एपि0 इण्डि0 18, पृ0 304, पंक्ति 38-44.

113- वही,

114- सी0 ई0 2, पृ0 67-68.

115- कापर्स आँफ बंगाल इन्सक्रिप्सन्स, पृ0 281.

116- वही, पृ0 291.

117- इण्डियन फ्यूडलिज्म, पृ0 47.

118- भारतीय सामंतवाद, हि0 अनु0, पृ0 239.

119- यशस्तिलक, पृ0 13.

120- अल्तेकर, सं प्रा0 पु0, पृ0 236.7, तुलनार्थ देखिए भारतीय सामंतवाद, हि0 अनु0 पृ0 123.

121- का0 ई0 मिराशी, 4, 171, वही, 123.

122- भारतीय सामंतवाद, हि0 अनु0, पृ0 123.

123- एपि0 इण्डि0, 24, पृ0 329-33.

124- वही,

125- प्राचीन भारत का आर्थिक विचार, पृ0 284.

126- कामन्दकीय नीतिसार, सर्ग 5, श्लो0 - 12-13.

127- शुक्रनीतिसार, अध्याय 2, श्लोक - 800, 801, 802.

143- वही

144- सोसायटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इण्डिया, पृ0 170·

145- नारदस्मृति, 18-48; विष्णु स्मृति, 3·22

146- वृहस्पतिस्मृति, व्यवहारकाण्ड, श्लोक 43·

147- कृत्यकल्पतरू, राजधर्मकाण्ड, पृ0 88-92

148- मानसोल्लास, 2, 3-16, 3-64·

149- कार्प्स आँफ बंगाल इन्सक्रिप्सन्स, पृ0 168·

150- हिस्ट्री आँफ दि गाहड़वालाज, पृ0 167-90·

151- भारतीय सामंतवाद, हि0 अनु0, पृ0 243·

152- सी0 आई0 आई0 4, न0 63, पंक्ति 29-30·

153- इन्सक्रिप्संस आँफ इम्पीरियल परमारज, पृ0 46·

154- वही, 5-6·

155- वही, पृ0 54,55,63·

156- कार्पस इन्सक्रिप्संस आँफ बंगाल, पृ0 108, 203, 215

अ तिलक मंजरी सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 223·

ब अभिधानचिन्तामणि, चतुर्थ काण्ड, श्लोक 13·65

स इण्डि0 एपि0 ग्लोस, पृ0 117·

157- वही, पृ0 117, एपि0 इण्डि0, भाग 19, पृ0 71·

158- वही, पृ0 117·

159- सै0 ई0, 2, पृ0 273.

160- तिलकमंजरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 223

161- वही

162- वही

163- इण्डि0 एपि0 ग्लोस, पृ0 118

164- अभिधानचिन्तामणि, तृतीय काण्ड, पृ0 1.553.

165- तिलकमंजरी, पृ0 117, 118.

166- वही, पृ0 118, गोररस श्रीमिरिव शरीरिणिभि: - गोपाललनामि: सर्वत: समाकुलैगोकुलै: ।

167- वही, पृ0 117 - 18

168- से0 ई0 2, पृ0 191, गोपालो धीरू गमी नामानौ'।

169- वही, पृ0 373.

170- एपि0 इण्डि0 28, पृ0 190-91.

171- से0 ई0 2, पृ0 269.

172- अभिधानचिन्तामणि 3-353-4, पृ0 22

173- वैजयन्तीरुद्र अ0 3-9-28

174- हलायुधकोश, 2,581, पृ0 66.

175- मानसोल्लास अध्याय 20, श्लोक 1068

176- हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 148.

177- एपि० इण्डि० 22, न० 20, श्लोक 41·

178- वही, 11, न० 4, 22 पंक्तियाँ - 4-7

179- कामन्दक, 19, 62·

180- शुक्रनीतिसार 1, 744·

181- हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० 132·

182- वही

183- से० ई० 2, पृ० 288-89·

184- से० ई० 2, 131, 135-36, 140-41, 195, 199, 276, 285, 288, 290, 293-94, 299, 502·

185- हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० 133·

186- अर्थशास्त्र 2/32·

187- हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० 133·

188- जी० बी० ओ० आर० एस०, जि० 51 , पृ० 147·

189- वही

190- इण्डि० एपि० ग्लोस० पृ० 192·

191- हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० 133·

192- अर्थशास्त्र 2/32

193- हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० 133·

194- वही

195- वही

196- वही, पृ0 132

197- वही, अभिनवोपस्कृतैश्च कर्पटिभि वारशान्ति सुख प्रत्याशया धावनानैः ।।

198- सै0 ई0 2, पृ0 283·

199- वही, पृ0 273·

200- वही, पृ0 217·

201- वही, पृ0 269

202- 131, 135-36, 217-18, 268, 270, 285-88, 290, 299, 302,

203- जी0 बी0 औ0 आर0 एस0, जि0 51 , पृ0 133·

चतुर्थ अध्याय

व्यापार से सम्बन्धित व्यवसायिक समुदाय

व्यापार से सम्बन्धित व्यवसायिक समुदाय

शास्त्रोनुमोदित परम्परा के अनुसार व्यापार पर केवल वैश्यों का आधिपत्य था । मध्यकालीन स्मृतिकारों ने भी स्पष्ट शब्दों में प्राचीन शास्त्र - -कारों का अनुमोदन करते हुये मत प्रस्तुत किया है कि वैश्यों का मुख्य उद्यम कृषि पशुपालन एवं व्यापार-वाणिज्य था ।[1] मनु के भाष्यकार मेधातिथि ने भी इसी प्रकार का विधान प्रस्तुत किया है, वैश्य वर्ग व्यापार एवं वाणिज्य में संलग्न थे ।[2] कामन्दनीतिसार में भी इसी प्रकार के विचारों का समर्थन किया गया है ।[3] आचार्य शुक्र ने भी पशुरक्षा, कृषि, वाणिज्य एवं व्यापार को वैश्यों की वृत्ति स्वीकार की है ।[4] समराइच्चकहा में वैयों को वाणिजक तथा वीणक् नामों से अभिहित करते हुये उनका मुख्य उद्यम व्यापार एवं वाणिज्य बताया गया है ।[5] इस प्रकार जहाँ पूर्वमध्य कालीन विचारकों ने व्यापार को वैश्यों का मुख्य उद्यम स्वीकार किया है, वहीं उन्होंने व्यापार को सभी वर्णों द्वारा वृत्यर्थ कर्म के रूप में अपनाने की प्रक्रिया का भी अनुमोदन किया है ।[6] मिताक्षरा में द्विजों द्वारा व्यापार किये जाने का समर्थन किया गया है ।[7] अत्रि तथा पराशय ने भी शूद्रों द्वारा व्यापार किये जाने का उल्लेख किया है ।[8] उपरोक्त साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि अतीत काल में कृषि की भाँति व्यापार भी सामान्य व्यवसाय हो गया था ।

पूर्वमध्य कालीन ग्रन्थकार हेमचन्द्र ने क्रय-विक्रय हेतु व्यवहार शब्द का प्रयोग किया है ।[9] प्रस्तुत व्यवहार शब्द का साम्य प्राचीन ग्रन्थ पाणिनी के

भाष्य में प्रसंगित व्यवहार से कर सकते हैं । पाणिनी ने भी व्यापार वाणिज्य लेन - देन हेतु व्यवहार शब्द का उल्लेख किया है ।[10] विक्रय हेतु आई हुई वस्तुओं को पण्य की संज्ञा दी गई है ।[11] स्पष्ट है कि आलोच्य कालीन व्यापारिक क्रिया कोई नवीन प्रक्रिया नहीं थी ।

आलोच्य कालीन अभिलेखों में हट्ट शब्द का प्रयोग बाजार के लिये किया गया है ।[12] साहित्यिक साक्ष्यों में विपणि[13अ] तथा वीथीगृह[13ब] शब्द प्रयुक्त हुये हैं । अभिलेखों में उल्लिखित वणिक् पथ से ज्ञात होता है कि ये बाजार प्रायः राजमार्ग पर होते थे ।[14] जो संध्या होते ही जन समूह से खचाखच भर जाते थे ।[15] बनिये या व्यापारियों की दुकानों को वणिक् हट्ट कहते थे ।[16] अभिलेखों में प्रसंगित चर्तुहाट तथा महाहट्ट शब्द से स्पष्ट होता है कि ये बाजार प्रायः बड़े तथा छोटे दोनों ही हुआ करते थे ।[17] ग्वालियर का बल्लभी भट्टस्वामी मंदिर अभिलेख[18] में लघुपाहाटिका शब्द प्रसंगित है [18] तथा सियादोनी अभिलेख में चतुर्हट्ट, चतुष्कहट, दोसिहट्ट, तथा प्रसन्नहट्ट इत्यादि का प्रसंग मिलता है ।[19] बड़े शहरों और राजधानी में बहुत हट्टें होती थी ।[20] कामा अभिलेख (वि० सं० 963) से ज्ञात होता है कि पशुओं के क्रय विक्रय हेतु पृथक् बाजार थी जिसे कम्बली हट्ट कहा जाता था ।[21] पेहोआ में वर्णन मिलता है कि देश के विभिन्न भागों एवं स्थानों से अश्व व्यापारी वहाँ एकत्र होते थे जिससे ज्ञात होता है कि वहाँ अश्वों की बाजार लगती थी ।[22] विविध वस्तुओं की पृथक-पृथक बाजारों की पुष्टि साहित्यिक साक्ष्यों

से भी होती है । कथाकोष प्रकरण में मिठाई की बाजार, मद्य की बाजार तथा वस्त्रों की बाजार का प्रसंग मिलता है ।[23] अन्य ग्रन्थ यशस्तिलक से ज्ञात है, केसर कस्तुरी जैसी सुगन्धित वस्तुयें जहाँ विक्रय की जाती थी।उसे सुगन्धियों का बाजार कहा जाता था तथा मालापुष्प विक्रेता जहाँ बैठते थे। उसे स्त्रगृजीवियों का आपण कहा जाता था।[24] सरणेश्वर प्रशस्ति में संकेतित है कि व्यवसायिक नगरों में समय - समय पर निश्चित दिन और तिथि को विशेष मेले और बाजार लगाये जाते थे ।[25] एक अन्य लेख से ज्ञात है, नगरों में नियमित बाजार व्यवस्था थी तथा नगर में सुदूर क्षेत्रों के व्यापारीगण बसाये गये थे ।[26] कृष्ण तृतीय का कन्धार प्रस्तर स्तम्भ अभिलेख में वर्णित है कि मंदिर के निकट अत्यधिक चलने वाला बाजार था ।[27] धरमपाल के खलीमपुर ताम्रपत्र अभिलेख में मंदिर को हट्ट के साथ ग्राम दान दिये जाने का प्रसंग प्राप्त है ।[28] स्पष्ट है कि नगरों तथा ग्रामों में बाजार व्यवस्था होती थी । ह्वेसांग ने तत्कालीन बाजार के विषय में विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है, हट्ट में विभिन्न स्थानों के व्यापारी आते थे।मार्ग के दोनों ओर दुकानें हुआ करती थी तथा दुकानों में विभिन्न वस्तुयें सजाकर रखी जाती थी और इस प्रकार क्रय-विक्रय की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती थी ।[29] तिलकमंजरी में भी बाजारों का सुन्दर विवरण प्राप्त होता है, इनके दोनों ओर स्वर्ण के बड़े-बड़े प्रसाद निर्मित रहते थे । अयोध्या नगरी की स्वर्णमय प्रसाद पंक्तियों के मध्य हीरे जवाहरात के विपणिपथ ऐसे प्रतीत होते थे मानों सुमेरु पर्वत पर सूर्य के रथ के चक्र चिन्ह बने

हों ।[30]

विभिन्न हाटों में लघु दुकानें हुआ करती थी।अभिलेखीय साक्ष्यों में वीथी की संज्ञा दी गई है ।[31] अभिधानचिन्तामणि में दुकान को पण्यशाला, निष्द्या अट्ट:, हट्ट, विपणि, आपण इत्यादि नामों से अभिहित किया गया है ।[31अ] अमरकोश में सड़क के दोनों ओर की दुकानों का उल्लेख हुआ है ।[32] रघुवंश से विदित होता है कि पण्य वीथी (सड़क) के दोनों ओर दुकानें रहा करती थी जिनमें समाज के उपयोग की विविध वस्तुएं बिका करती थी ।[33] कथा सरितसागर में वर्णित है कि पुन्द्रवरधन एक ऐसा विशाल बाजार केन्द्र था।जहाँ सड़क, गलियाँ, दुकानों से युक्त थी ।[34] अभिलेखीय साक्ष्यों से भी वीथी का प्रसंग प्राप्त होता है । परमार सामंत के नासिक अभिलेख से ज्ञात होता है कि वहाँ बहुत संख्या में दुकानें और धाणक थे ।[35] भोजदेव कालीन यशोवर्मन का कालवन ताम्रपत्र अभिलेख में सामंत यशोवर्मन के मुख्य अधिकारी गंगवंशीय अम्म - राणक द्वारा 14 व्यापारिक दुकानें, 14 द्रम्म सिक्के तथा 14 छत्र दान दिये जाने का उल्लेख है ।[36] सियादोनी अभिलेख में विष्णु भट्टारक की सेवा हेतु विभिन्न व्यापारी द्वारा वीथी दिये जाने का प्रसंग मिलता था ; यथा व्यापारी चन्डू ने अपनी पुश्तैनी चार वीथियों को दिया था, नेमक वणिक् सीलूके ने एक वीथी दी थी तथा नागाके दोसिहट्ट में स्थित एक वीथी दान दी थी ।[37] तिलकमंजरी में उल्लिखित है कि समरकेतु के सैनिक पड़ाव की विपणि वीथियों में पण्य वस्तुओं के समेट लिए जाने पर ग्राहक पैसे लेकर व्यर्थ ही घूम रहे

थे ।[38] मध्यान्ह काल में व्यापारीजब अपने-अपने गृहों को जाते तो सभी वस्तुओं को एकत्र कर द्वार पर ताला लगा देते थे । इस प्रकार उपरोक्त कथनों से तत्कालीन व्यापारिक व्यवस्था का ज्ञान होता है ।[39]

इस प्रकार विविध बाजारों, हाटों के अतिरिक्त बड़ी-बड़ी व्यापारिक मण्डियाँ, मण्डपिक का उल्लेख अभिलेखों में प्राप्त होता है ।[40] अथूर्ण अभिलेख में गुड़, नारियल, सुपाड़ी, तैल,जव इत्यादि के व्यापार की मण्डियों का विवरण प्राप्त होता है ।[40अ] बयाना से प्राप्त 955 के एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि एक देवता के निमित्त एक मण्डपिका से तीन द्रम्म वसूल किया गया और इतनी राशि एक अन्य मण्डपिका से भी ली गई ।[41] इसी प्रकार बैजनाथ की प्रशस्तियों में उल्लिखित है कि एक स्थानीय सरदार ने मण्डपिका से होने वाली अपनी आय में से प्रतिदिन दो द्रम्म अनुदान के रूप में दिया ।[42] 1156 के एक अनुदान पत्र से स्पष्ट होता है कि कुमारपाल ने एक मंदिर को नडोल की मण्डपिका से होने वाली आय का एक अंश प्रति एक द्रम्म के हिसाब से अनुदान स्वरूप दिया ।[43] साक्ष्य से ज्ञात है कि अनहिलपाटक में 48 मण्डियाँ थीं ।[44] इन मण्डियों की देख-रेख हेतु माण्डपिक अधिकारी हुआ करते थे ।[45] जिससे संकेत मिलता है कि इन व्यापारिक मण्डियों की व्यवस्था काफी अच्छी थी । प्राप्त मण्डपिकदाय[46] शब्द से स्पष्ट है कि इन मण्डियों से पर्याप्त कर वसूल किया जाता था जो राज्य की आय का प्रमुख साधन था । इसके अतिरिक्त शुल्क मण्डपिका शब्द का उल्लेख चालुक्य अभिलेखों में भी प्राप्त होता है ।[47] नीतिवाक्यामृत में सोमदेव ने पैण्ठा

स्थान के महत्व को स्पष्ट करते हुये मत दिया है कि न्याय पूर्वक रक्षित पैण्ठा स्थान राजाओं के लिये कामधेनु के सदृश्य है ।[48] यशस्तिलक में सोमदेव ने व्यापारिक मण्डियों को पैण्ठास्थान की संज्ञा देते हुये विस्तृत सूचना प्रस्तुत की है जहाँ बड़ी-बड़ी भण्डागार में सामान रखे जाते थे । पोखरों के निकट पशुओं की व्यवस्था होती थी । जल, अन्न, ईंधन और यातायात के साधन सुगमता पूर्वक प्राप्त होते थे । सम्पुर्ण पैण्ठास्थान चार मील के घेरे में था । जिसकी सुरक्षा के लिये चारों ओर खाई और अहाता था । आवागमन के लिये निश्चित द्वार था । रक्षा हेतु सैनिकों का उचित प्रबन्ध था । प्रत्येक मार्ग में भोजनालय , प्याऊ और सभा भवन थे । चोर, जुआड़ी का प्रवेश निषिद्ध था । शुल्क समुचित लगता था।विभिन्न देशों के वणिक् व्यापार हेतु वहाँ आते थे ।[49]

शहरों और गाँव की हाटों में नाना प्रकार की वस्तुएं क्रय-विक्रय की जाती थी । उनमें खाद्यान्न, नमक, मिर्च, शराब, तेल, कपास और सब्जियाँ शामिल थीं ।[50] हस्तिकुण्डी अभिलेख[51] में गेहूँ, जौ, नमक, एवं केसर के भार पर कर लगाने का वर्णन है । एक अन्य लेख से ज्ञात होता है कि दैनिक उपयोग की वस्तुओं का व्यापार अधिक होता था यथा अन्न, सूत, रूई, कपड़ा, नमक, शक्कर, तैल इत्यादि ।[52] चहमान अभिलेख से ज्ञात होता है कि राजस्थान में गेहूँ, मुदग्, धूना, तेल, पान, मसाला, दाल, आदि का व्यापार होता था ।[53] रामपाल के नाडलाई पाषाण अभिलेख में किराडउआ (किराना) शब्द का उल्लेख

हुआ है जिससे ऐसा संकेत मिलता है कि दैनिक उपयोग की लगभग सभी वस्तुओं का व्यापार होता था।[54] अभिलेखीय साक्ष्यों की संपुष्टि साहित्यक साक्ष्यों से भी होती है। समराइच्चकहा में हाथीदाँत का व्यापार, रसवाणिज्य, लाख, चँवर और विषवाणिज्य का संकेत मिलता है।[55] और इसके अतिरिक्त धन धान्य हिरण्य, सुवर्ण, मणि मुक्ता, प्रवाल, द्विपद (पक्षी) चतुष्पद अर्थात अश्व, हस्ति, गाय, बैल, बकरी इत्यादि चार पैर वाले पशुओं का भी व्यापार होता था।[56] तिलकमंजरी में उल्लिखित है कि रंगशाला नगरी की सीमान्त भूमि के निकट नदी के किनारे वणिक भात, दही, घी, मोदकादि विक्रेतव्य वस्तुएं फैलाये बैठे थे।[57] निशीथचूर्णी में व्यापारिक सामग्रियों को चार भागों में विभाजित किया गया है यथा गणिम (गणना करने योग्य) पूगफल आदि, धरिम (जो तौली जा सके) खाँड, शक्कर, पिप्पल इत्यादि परिमाप करने योग्य यथा घी, चावल, आदि और चौथी प्रकार पारिच्छ (परीक्षण) करने वाली वस्तु यथा रत्न, हीरा, मोती आदि।[58] इसी ग्रंथ में एक अन्य स्थान पर यह उल्लिखित है कि कुछ व्यापारी तो केवल खाद्य सामग्री का व्यापार करते थे यथा चावल, गेहूं, तेल, मक्खन आदि।[59]

उपरोक्त विवरणों से स्पष्ट है कि लगभग सभी वस्तुओं का व्यापार होता है। जिनमें दैनिक उपयोग की वस्तुयें प्रमुख थी।

आलोच्य कालीन अभिलेखों में व्यापारियों को कई नामों से अभिहित किया गया है यथा वणिक[60], वानिज[61], वाणिजक[62] श्रेष्ठी[63], सार्थवाह[64],

इत्यादि । हेमचन्द्र ने व्यापारियों के लिये आठ संज्ञायें प्रयुक्त की हैं यथा वाणिज्य, वणिक्, क्रयविक्रयिक, पण्याजीवी, आपणिक, नैगम, क्रमिक - क्रयी[65] अन्य साहित्यिक साक्ष्यों में इन्हें वणिज,[66] वाणिजक[67], वणिक्[68], श्रेष्ठी[69], सार्थवाह[70] के अतिरिक्त पण्याश्रायिन[71], अर्थपति[72], धान्यमान[73] सांयात्रिक[74] नामों से सम्बोधित किया गया है ।

इस प्रकार उपरोक्त साक्ष्यों में वर्णित विभिन्न नामों के आधार पर हम व्यापारी वर्ग को कई वर्गों में विभाजित कर सकते हैं । प्राप्त साक्ष्यों के आलोक में पृथक-पृथक वर्ग के रूप में उनकी व्यापारिक गतिविधियों का विश्लेषण किया जा सकता है ।

<u>स्थानीय व्यापारी :-</u> स्थानीय व्यापार आर्थिक संगठन की एक महत्वपूर्ण इकाई है ।[75] जिसके फलस्वरूप समाज में स्थानीय व्यापारियों के एक वर्ग का अभ्युदय हुआ । ये व्यापारी सामान्य रूप से गांवों की हाटों एवं छोटे शहरों में व्यापार करते थे ।[76] तथा स्थानीय लोगों की आवश्यकतानुसार विविध वस्तुओं का क्रय-विक्रय कर यथेष्ठ लाभ प्राप्त करते थे ।[77] यही उनकी जीविका का प्रधान स्रोत था ।[78] सोमदेव सूरी ने ऐसे स्थानीय व्यापारियों का उल्लेख किया है जो स्थानीय बाजार में विविध वस्तुओं का व्यापार करते थे ।[79] तिलक - मंजरी में प्रसंगित है कि स्थानीय व्यापार हेतु बाजारों की व्यवस्था होती थी जिन्हें वीथीगृह तथा विपणिपथ कहा जाता था ।[80] दशकुमारचरित में वर्णित है कि निरन्तर असंख्य दुकानों में फैलाकर रखे हुये मणियों आदि के द्वारा रत्नों के

महात्म्य को प्रकाशित करने वाली पुष्पा नाम की नगरी थी ।[81] उक्त कथन द्वारा प्रस्तुत संदर्भ में स्थानीय व्यापारियों का संकेत मिलता है ।

अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर स्थानीय रूप से व्यापार करने वाली व्यापारी वर्ग की पुष्टि होती है । परमार अभिलेख में उन वणिकों के विषय में संकेत मिलता है जो सामान लाते और हाटों में विक्रय करते थे ।[82] प्रतिहारों के एक अभिलेख में उल्लिखित है, बंका नामक वैश्य भिन्न-भिन्न स्थानों की हाटों से क्रय - विक्रय की सामग्री खरीद कर लाता था ।[83] इसके अतिरिक्त अभिलेखों में वर्णित वणिक नगर[84], वणिक ग्राम[85] शब्द का उल्लेख स्थानीय व्यापार को और भी स्पष्ट करता है । विष्णुसेन का ताम्रपत्र अभिलेख (592 ईसवी (वणिक ग्राम लोहाटक ग्राम का प्रसंग प्राप्त होता है जहाँ पर लोग अपना अपना व्यवसाय करते थे ।[86] महासामंत बलवर्मन देव (10वीं शताब्दी) के ताम्रपत्र लेख में व्यापा - रियों के गाँवों का उल्लेख है ।[87] इसी प्रकार का संदर्भ एक दूसरे ताम्र पत्र लेख में भी प्राप्त होता है ।[88] चन्द्रवंशीय गोविन्दचन्द देव का बेतका वासुदेव मूर्ति लेख में गाँव के निवासियों द्वारा पान की खेती किये जाने का प्रसंग है । प्रस्तुत लेख से यह भी ज्ञात होता है कि इन लोगों द्वारा ग्रहण पान को बेचने एवं पान की खेती का व्यवसाय काफी अच्छा था ।[89] परमारवंशीय वाक्पतिराजदेव द्वितीय का गाऊनरी (संवत् 1043 - 986 ई0 (ताम्रपत्र लेख में वेन्का नामक वणिक ग्राम का उल्लेख है ।[90] एक अन्य लेख से ज्ञात है कि स्थानीय व्यापार इतना प्रचलित था कि मणिग्राम नामक शहर ही बस गया था ।[91]

साक्ष्यों के अध्ययन से हमें स्थानीय व्यापारी वर्ग में दो प्रकार के व्यापारी का ज्ञान होता है जिन्हें हम दो वर्ग में मान सकते हैं । एक वर्ग थोक विक्रेताओं अर्थात बड़े व्यापारियों का था जिन्हें महाजन, श्रेष्ठि की संज्ञा दी गई है । दूसरा वर्ग फुटकर विक्रेता अर्थात छोटे व्यापारियों का दृष्टिगत होता है ।

स्थानीय व्यापारियों में प्रमुख एवं सम्पन्न वर्ग श्रेष्ठियों का था जो तत्कालीन समाज में सबसे अधिक समृद्ध माने जाते थे ।[92] धन और समृद्धि के आधार पर इन्हें श्रेष्ठि नाम से अभिहित किया जाता था ।[93] ये एक ही स्थान पर अर्थात ग्राम नगर अथवा व्यापारिक केन्द्रों में स्थित रहकर अपना व्यवसाय करते थे ।[94] श्रेष्ठिन् , पण्याश्रायिन् तथा अर्थपतियों का अस्तित्व वृहत्संहिता से भी प्रमाणित होता है ।[95] इस प्रकार श्रेष्ठि वर्ग को स्थानीय थोक विक्रेता कह सकते हैं जैसा कि अजय मित्र शास्त्री का विचार है ।[96] तत्कालीन समाज में श्रेष्ठि वर्ग उच्च स्थिति को प्राप्त था ।[97] बुधस्वामिन् कृत वृहत्कथा श्लोक संग्रह में ताम्रलिप्त के श्रेष्ठि गंगदत्त का उल्लेख है ।[98] कुमारपालचरित में विशेष अवसरों पर राज्य सभा में बैठने वाले जनों में श्रेष्ठियों का प्रसंग मिलता है ।[99] इस समुदाय की लौकिक सामाजिक प्रतिष्ठा एवं आर्थिक समृद्धि के संदर्भ में प्रमाण प्राप्त होते हैं । ललितसूरदेव का पाण्डुकेश्वर ताम्रपत्र अभिलेख {854 ईसवी} में दान की सूचना देने वाले जनों में वणिक श्रेष्ठि उल्लेख मिलता है ।[100] भोजदेव कालीन ग्वालियर अभिलेख में श्रेष्ठि वील्वाक

का प्रसंग प्राप्त है जिसे शहर की प्रशासनिक समिति का सदस्य नियुक्त किया गया था ।[101] कुमारगुप्त प्रथम के दामोदरपुर ताम्रपत्र अभिलेख में धृतिपाल नामक नगर श्रेष्ठि को कुमारामात्य वेत्रवर्मा की शासन में सहायता करने वाली समिति का सदस्य बनाया गया ।[102]

इसी प्रकार का प्रसंग बुद्धगुप्त कालीन दामोदरपुर ताम्रपत्र लेख में प्राप्त होता है ।[103] कल्चुरि राजा सोढ्देव के कहलापत्र अभिलेख महाश्रेष्ठिन नामक पदाधिकारी का उल्लेख है ।[104] विलासपुर से प्राप्त कल्चुरी शासक महामंडलेश्वर पृथ्वीदेव प्रथम कालीन अमोद अभिलेख में संधिविग्रहिक श्रेष्ठि धोबक का प्रसंग प्राप्त है ।[105] महुव अभिलेख (काठियावाड़ से प्राप्त) में श्रेष्ठि मोकल द्वारा तालाब बनवाये जाने का उल्लेख मिलता है ।[106] कीर्तिवर्मन कालीन धरबत शान्तिनाथ मूर्ति अभिलेख (1075 ईसवी) में श्रेष्ठि पाहिल द्वारा शान्तिनाथ की प्रतिमा प्रतिष्ठापित किये जाने का उल्लेख है ।[107] कृष्ण तृतीय कालीन चिनचनी ताम्रपत्र अभिलेख (939-67 ईसवी) में वर्णित है कि प्रति - दीपोत्सव भंग के अवसर पर राशि दी जाती थी, जो श्रेष्ठि गंभुवक द्वारा द्रम्मों में भुगतान की जाती थी ।[108] परमान वंशीय नरवर्मन कालीन जिन प्रतिमा अभिलेख में नेमिचन्द्र पुत्र श्रेष्ठिन् राम के पुत्र चिल्लण के द्वारा दो जिन मूर्तियों को प्रतिष्ठापित किये जाने का उल्लेख है ।[109]

उपरोक्त तथ्यों के अवलोकन से श्रेष्ठि वर्ग की उच्च सामाजिक आर्थिक स्थिति का संकेत मिलता है तथा इसमें संदेह नहीं है कि इन्हें समाज में

सम्मानीय स्थान प्राप्त था ।

अधीत कालीन साक्ष्यों में स्थानीय व्यापारियों में साधारण एवं लघु व्यापारियों के विषय में प्रसंग प्राप्त होता है जिन्हें हम फुटकर विक्रेता के रूप में मान सकते हैं। हेमचन्द्र की देसीनाममाला में पेदइओ नास से ज्ञात एक व्यापारिक समुदाय का उल्लेख मिलता है, जो अन्न बेचता था ।[110] अन्य ग्रन्थ प्रबन्धचिन्तामणि में चणक विक्रयकार (चना विक्रेता) का प्रसंग प्राप्त है ।[111]

मिठाई विक्रेता को भी लघु विक्रेता की श्रेणी में स्वीकार कर सकते हैं । हेमचन्द्र ने इन्हें कान्दविक, भक्ष्यकार की संज्ञा प्रदान की है ।[112] तिलकमंजरी में मोदक विक्रेता का उल्लेख मिलता है ।[113] अभिलेखीय प्रमाणों में सारणेश्वर प्रशस्ति से ज्ञात होता है, वहाँ हलवाइयों की दुकानें थीं, जिन्हें मंदिर को एक घड़ा दूध देने को कहा गया था ।[114]

गुड़ विक्रेताओं का एक वर्ग दृष्टिगत होता है । 1230 में जारी किये तृतीय अनंगभीम के नगरी ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि ब्राह्मण के सेवार्थ समर्पित किये गये जनों में दुकानदार गुड़ विक्रेता का भी उल्लेख है ।[115]

<u>कारवाँ व्यापारी वर्ग :-</u> व्यापारी वर्ग के अन्तर्गत कारवाँ व्यापारियों[116] का समुदाय एक प्रमुख वर्ग के रूप में प्रतिष्ठित था । इस प्रकार के व्यापारी सार्थ बनाकर व्यापार हेतु दूरस्थ प्रदेशों एवं देशों की यात्रा करते थे ।[117] सार्थ के नेता को सार्थवाह की संज्ञा दी गई है ।[118] कतिपय साक्ष्यों में वनिजारक[119], वन - जारक[120] नाम से भी अभिहित किया गया है । कुछ विद्वानों के अनुसार सम्भवतः

ये कारवाँ व्यापारी थे। अभिलेखीय साक्ष्य से भी इनकी पुष्टि होती है। चाहमानों के अभिलेख में इस प्रकार के व्यापारी के प्रसंग में वनजारा शब्द प्रयुक्त हुआ है जो पुश्तैनी तौर पर अनाज के बोरे ले जाया करते थे और कभी-कभी दूसरे समान भी ले जाते थे।[121] सिंहदेव के जुना अभिलेख में कारवा व्यापारी द्वारा दस ऊँटों और 20 बैलों सहित यात्रा किये जाने का उल्लेख मिलता है।[122] कुमारगुप्त प्रथम के दामोदरपुर ताम्रपत्र अभिलेख में बन्धुमित्र नामक सार्थवाह व्यापारी का प्रसंग प्राप्त है।[123] दामोदरपुर से प्राप्त बुधगुप्त कालीन एक अन्य लेख में सार्थ-वाह वासुमित्र का विवरण प्राप्त होता है, जिसे शहर की प्रशासनिक समिति का सदस्य मनोनीत किया गया था।[124] कुमारगुप्त तृतीय के लेख में सार्थवाह स्थानुदत्त का उल्लेख मिलता है।[125] भोजदेव कालीन ग्वालियर अभिलेख से ज्ञात होता है कि सार्थवाह सत्त्वाक शहर की प्रशासनिक समिति का सदस्य था।[126]

उपरोक्त तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि सार्थवाह व्यापारी वर्ग को तत्कालीन समाज में उच्च प्रतिष्ठा एवं सम्मान प्राप्त था। यहाँ तक कि वे प्रशासनिक गतिविधियों में संलग्न थे। साहित्यिक साक्ष्यों में सार्थवाह व्यापारियों के विषय में अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं। मृच्छकटिक नामक नाटक में उज्जयिनी के सार्थवाह विनयदत्त और उसके ख्याति लब्ध पौत्र सार्थवाह चारुदत्त का उल्लेख है।[127] समराइच्चकहा से विदित होता है कि धरण नामक व्यापारी जो माकन्दी का रहने वाला था क्रय-विक्रय के हेतु अचलपुर जाता था और अपने नगर के लिये उपयुक्त वस्तुएँ क्रय करके ले जाता था।[128] तिलकमंजरी में सार्थों का

उल्लेख है । रंगशाला नगरी के सीमान्त प्रदेश में पड़ाव डाले हुये दीपान्तरों से व्यापार करने वाले धनाद्य व्यापारियों के सार्थों का उल्लेख आया है । ये सार्थ प्रयाण के लिये तैयार थे । इनमें जाने योग्य वृहद्वाकार भाण्डों का संग्रह किया गया था । बैलों के आभूषण पर्याणादि सामग्री भृत्यों द्वारा तैयार की गयी थी । नवीन निर्मित तम्बुओं के कोनों में बड़े - बड़े कण्डाल रखे गये थे।आँगन में बोरियों के ढेर लगाये गये थे तथा घोड़ा, खच्चरों की भीड़ लगी थी ।[129] वृहत्कथाकोश में व्यापारियों के काफिले का वर्णन बहुतायत मिलता है ।[130] दशकुमारचरित में सार्थवाह व्यापारी का प्रसंग प्राप्त होता है ।[131]

प्रयाण के पूर्व नेता द्वारा विभिन्न प्रकार की घोषणा किये जाने का प्रसंग प्राप्त होता है । त्रिषष्टिशलाका पुरूषचरित में वर्णित है कि काफिले के नेता ने ढोल पिटवा कर यह घोषणा कराई कि जो व्यापारी माल लेना चाहेंगे, उन्हें वह माल देगा, जो माल ढोने की सवारी चाहेंगे,उन्हें सवारी, जो खाद्यान चाहेंगे,उन्हें खाद्यान्न प्रदान किया जायेगा, जंगली पशुओं और डाकुओं से सुरक्षा की जायेगी । उक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि काफिले का नेता सभी व्यापारियों के लिये समुचित व्यवस्था करता था ।[132] इन व्यापारियों को अभीष्ट स्थान तक पहुँचने में महीनों लग जाता था ।[133]

मेधातिथि से ज्ञात होता है कि बैल , खच्चर, भैंस और अन्य पशुओं को गाड़ियों से जोतकर और उनकी पीठ पर सामान {माल} लादकर एक स्थान से देसरे स्थान ले जाया करते थे ।[134] काव्य मीमांसा में यातायात हेतु घोड़े

ऊँट, बैलगाड़ियों का प्रयोग करते थे ।[135]

कभी-कभी इन व्यापारियों को मार्ग में अनेक कठिनाइयों और असुविधाओं का सामना करना पड़ता था । वर्षा ऋतु में सड़कों पर गाड़ियाँ चलाना दुष्कर होता था ।[136] सड़कें ऊँची नीची होती थी ।[137] मार्ग में लुटेरों का भय रहता था । दशकुमारचरित[138] में मातंग पुत्र कुत्सित ब्राह्मण लुटेरा का प्रसंग मिलता है जो भीलों की सेना के साथ जनपद में जाकर स्त्री, बच्चों के साथ धनिकों को गाँवो से जंगल में पकड़ कर लाता था और बन्धक में रख कर उसका समस्त धन छीन लेता था । अन्य ग्रन्थों में भी लुटेरों द्वारा व्यापारियों के लूटे जाने का प्रसंग मिलता है ।[138अ]

इस प्रकार उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि ये लम्बी-लम्बी यात्रायें करते थे तथा विपुल धन राशि अर्जित करते थे ।

सांयात्रिक व्यापारी :- समुद्र मार्ग से व्यापार करने वाला व्यापारी को सांयात्रिक पोत वणिक् की संज्ञा दी गई है ।[139] जिन्हें हम एक वर्ग में रख सकते हैं । इस प्रकार व्यापार में समुचित लाभ प्राप्त करने के लिये ये लोग जलयान के द्वारा समुद्र पारकर द्वीपों में व्यापार करते थे ।[140] ये व्यापारी राष्ट्रीय स्तर पर ही नहीं अपितु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यापारिक गतिविधियों में संलग्न थे । 1008ई0 एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि कोंकण का क्षेत्रकेवल तटीय इलाकों के साथ ही नहीं अपितु सुदूर विदेशों द्वीपान्तर के साथ भी खूब व्यापार करता था ।[141] एक अन्य लेख से ज्ञात होता है कि विदेश से आने वाले प्रत्येक जहाज से वह एक गदियाण स्वर्ण

और तटीय क्षेत्र में कण्डलमूलीय नामक स्थान से आने वाले प्रत्येक जहाज से एक धरण सोना वसूल करता था ।[142]

आन्ध्र प्रदेश से प्राप्त गणपति का मोटूपल्लि प्रस्तर स्तम्भ अभिलेख से ज्ञात होता है, राज्य के तटीय क्षेत्र में आने वाले व्यापारियों के जहाज से राजस्व गृहण किया जाता था ।[143]

आलोच्य कालीन साहित्यिक साक्ष्यों में द्वीपान्तर करने वाले व्यापारी - गण के विषय में पर्याप्त विवरण प्राप्त होता है । तिलकमंजरी में सुवर्णद्वीप के मणिपुर नगर के वासी वैश्रवन नामक सांयात्रिक का उल्लेख किया गया है । उसका पुत्र तारक सुवर्णद्वीप से अन्य सांयात्रिकों के साथ नाव पर विपुल सामग्री लादकर द्वीपान्तरों से व्यापार करता हुआ सिंहलद्वीप की रंगशाला नगरी में आया था ।[144] यशस्तिलक में प्रसंगित है कि पद्मिनी खेटपट्टन का निवासी भद्रमित्र अपने समान धन और चरित्र वाले वणिक् पुत्रों के साथ सुवर्णद्वीप व्यापार करने के लिये गया था ।[145] दशकुमारचरित में कालयवन द्वीप निवासी कालगुप्त नामक धनिक वैश्य का प्रसंग है वह गुणवान, श्रमशील, अतिसुन्दर तथा व्यापार कुशल था ।[146] दशकुमारचरित में ही एक अन्य स्थान पर ऐसे वणिक् का प्रसंग मिलता है जो रत्नोद्भव व्यापार करने समुद्र पारकर द्वीपान्तर चला गया ।[147] हर्षचरित में बाण ने द्वीपों से रत्नराशियों के ढेर कमाकर लाने वाले जहाजों का वर्णन किया है ।[148]

उपरोक्त विवरणों से समुद्रिक व्यापारियों के अस्तित्व का ज्ञान होता है

1- याज्ञवल्क्य स्मृति, 1·118; पराशर स्मृति, 1/66, अत्रि, 5·6

2- मेधातिथि, मनु ,1·9·31

3- कामन्दक नीतिसार, सर्ग 2, श्लोक 20 - 21·

4- शुक्रनीतिसार, अध्याय 1, श्लोक 42·

5- समराइच्चकहा, पृ0

6- गृहस्थकाण्ड, पृ0 199-212, दशावतारचरित, पृ0 160; एपि0 इण्डि0, 1, पृ0 184; एपि0 इण्डि0 1, पृ0 1073, एफ0 एफ0, मिताक्षरा, 3·35; अपरार्क 3·14, पराशयमाधवी, 2·14, पृ0 435, स्मृतिचन्द्रिका, आचार्यकाण्ड, पृ0 283·

7- नियोगी, इकोनामिक हिस्ट्री आँफ नार्दन इण्डिया, पृ0 250·

8- अत्रिस्मृति, 15, शूद्रस्य वार्ता, पराशर स्मृति, 1·72

9- शब्दानुशासन, 6·4·158

10- महाभाष्य, 3·1·101, 3·3·119, 6·1·82, पतंजलिकालीन भारत,

11- भारत, प्रभुदाय अग्निहोत्री, पृ0 325, 327, अध्याय 5, वही, 6·5·54, द्रव्यं विक्रेयं भवति, आपूषा: पण्यमस्य आपूणिक ।

12- इण्डि0 एपि0 ग्लोस0 पृ0 128; से0 इं0 2, पृ0 64, 68, 514, एपि0 इण्डि0 9, पृ0 277, 22, पृ0 750·

13(अ) शब्दानुशासन, 6·5·54·

(ब) तिलकमंजरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 223·

14- वही, पृ0 223, इण्डि0 एपि0 ग्लोस, पृ0 362·

15- यशस्तिलक उत्तरार्द्ध, पृ0 18.

16- एपि0 इण्डि0,19, पृ0 693, 76.

17- एपि0 इण्डि0, 19, पृ0 60.

18- एपि0 इण्डि0, 1, पृ0 159.

19- वही, पृ0 166.

20- एपि0 इण्डि0, 19, 52 एफ.

21- वही, 25, पृ0 331.

22- एपि0 इण्डि0, 1, पृ0 184.

23- कथाकोश प्रकरण, पृ0 87.

24- यशस्तिलक उत्तरार्द्ध, पृ0 18, सौगोन्धिकानां विपणि विस्तारेषु

25- भावनगर इन्सक्रिप्सन्स, 2, पृ0 67-68.

26- एपि0 इण्डि0, 9, पृ0 277, 279.

27- से0 ई0, 2, पृ0 511.

28- से0 ई0, 2, पृ0 64.

29- वार्टर्स, 1, पृ0 300;· 2, 252.

30- तिलकमंजरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 223, विपणि पथै: प्रसाधिता ।

31- एपि0 इण्डि0, 24, पृ0 336, एपि0 इण्डि0, 1, पृ0 167; इण्डि0 एपि0, ग्लोस, पृ0 379.

31अ अभिधान चिन्तामणि, चतुर्थ काण्ड, श्लोक 68

32- अमरकोष, 2.20

33- रघुवंश, 19.30.

34- नियोगी, इकोनामिक हिस्ट्री आँफ नार्दन इण्डि0, पृ0 158.

35- एपि0 इण्डि0, 19, न0 10, पंक्ति 13-17.

36- इन्सक्रिप्सन्स आँफ इम्पीरियल परमारज, पृ0 79.

37- एपि0 इण्डि0, 1, पृ0 167.

38- तिलकमंजरी, पृ0 124. सेहत पण्यवीथी वृथा, भ्रमद् गृहीतमूल्य क्रयिक लोके,
तिलकमंजरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 224.

39- वही, पृ0 67, निग्रहोन्मुखापणिक संवृत पण्यासुविपणि,
तीथाषु प्रत्यापण द्वर मघटत कालायस तालकानि ।

40- इण्डि0 इपि0 ग्लोस0, पृ0 195-196.

(अ) एपि0 इण्डि0, 14, पृ0 207.

41- एपि0 इण्डि0, 22, पृ0 126.

42- भारतीय सामंतवाद, हि0 अनुवाद, पृ0 245, एपि0 इण्डि0 , 1, पृ0 97.

43- वही, पृ0 245.

44- वही

45- इण्डि0 एपि0 ग्लोस0 पृ0 196.

46- वही

47- भारतीय सामंतवाद, हि0 अनुवाद, पृ0 247.

48- नीतिवाक्यामृत, 19.21, न्यायेनरक्षिता पण्यपुटमेद्रिनि पिण्ठा राशी

49- यशस्तिलक, उत्तरार्द्ध, पृ0 345.

50- मीराशि , का0 ई0 ई0 4, प्रारम्भिक, पृ0 170.

51- एपि0 इण्डि0, 10, पृ0 17-20, भावनगर इन्सक्रिप्सन्स, 3, पृ0 68-69

52- एपि0 इण्डि0 14, 70, 21, पृ0 69-79.

53- भारतीय सामंतवाद, हिन्दी अनुवाद, पृ0 252•

54- एपि0 इण्डि0, 11, पृ0 - 43•

55- समराइच्चकहा का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 166•

56- वही, पृ0 166•

57- तिलकमंजरी, पृ0 117, तिलक मंजरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 207•

58- निशीथ चूर्णी, 4, पृ0 111, सत्थविहाणं पुण गणमादिपउत्तिवधं गणियं पूगफलादि
धरियं जं तुलाय दिज्जति खंड सक्करादि मेजजं धृत
तुलादि पारिच्छ रयणमोति । पृ0 111•

देखिए, वृहत्कल्पभाष्यवृत्ति, 3, पृ0 834•

59- वृहत्कल्पभाष्यवृत्ति, 3, पृ0 864•

60-इण्डि0 एपि0 ग्लोस0, पृ0 362; एपि0 इण्डि0 1, पृ0 1749, 21, पृ0 48•

61- वही, पृ0 362, से0 इं0 2, पृ0 413=14, श्लोक 26•

62- वही, पृ0 362•

63- एपि0 इण्डि0, 15, 130, 133, से0 ई0, II, पृ0 291-93•

64- एपि0 इण्डि0, 15, 130, 133, 17, 193, से0 इं0 , 2, पृ0 291-93•

65- अभिधानचिन्तामणि, 3,867• सत्यानर्तं तु वाणिज्यं वाणिज्या वाणिणोकणिक ।
क्रय विक्रयिक: पण्याजीवा उपाणिक नैगमा: ।।

66- वृहत्तकथा श्लोक संग्रह, 4, 21,27, 18, 316, 321•

67- वृहत्संहिता, 31•4; समराइच्चकहा का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 97•

68- मालविकाग्निमित्रम, 1•7, वही, पृ0 97; तिलकमंजरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 207•

69- शाकुन्तलम्, पृ0 219 , समराइच्चकहा का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 97.

70- तिलकमंजरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 225, वृहत्संहिता, 4, 13.8 अमरकोष, 3.9.78; वृहत्कथाश्लोकसंग्रह, 18, 276.

71- वृहत्संहिता, 16.16.

72- वही, 5.21.

73- प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ0 139.

74- तिलकमंजरी सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 224; अभिधानचिन्तामणि, तृतीय काण्ड, श्लोक 5-39.

75- इकोनामिक हिस्ट्री ऑफ नार्दन इण्डिया, पृ0 251.

76- समराइच्चकहा का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 98.

77- वही, पृ0 98.

78- वही, पृ0 98.

79- यशस्तिलक, उत्तरार्द्ध, पृ0 18.

80- तिलकमंजरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 223.

81- दशकुमारचरित, प्रथमोच्छ्वास, पृ0 3.

82- एपि0 इण्डि0, जि0 29, पृ0 48.

83- एपि0 इण्डि0, जि0 20, पृ0 54-55.

84- इण्डि0 एपि0 ग्लोस0, पृ0 362.

85- से0 ई0, 2, पृ0 372-73.

86- से0 ई0, 2, पृ0 372-73. वणिक ग्राम लोहाटक ग्रामे प्रतित्रसतो येय {4}

87- आई0 ए0 (इण्डियन एन्टीक्यूरी), 20, पृ0 123 एफ0 एफ0, इकोनामिक हिस्ट्री ऑफ नार्दन इण्डिया, पृ0 251.

88- एपि0 इण्डि0, 28, पृ0 1101 एफ0 एफ0

89- एपि0 इण्डि0, 28, पृ0 26 एफ0 एफ0

90- इन्सक्रिप्सन्स ऑफ इम्पीरियल परमारज, पृ0 26. वाणिकाग्रामे समुपगान्समस्तराजपुरुषान्त्र (ब्रा) हाणो

91- एपि0 इण्डि0, 3 न0 - 4, पंक्ति 44.

92- इकोनामिक हिस्ट्री ऑफ नार्दन इण्डिया, पृ0 253.

93- समराइच्चकहा का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 99.

94- वही, पृ0 99.

95- वृहत्संहिता, 5, 21, 29, 10.6, 15.8, 29, 16.16.

96- इण्डि0 ऐज सीन, पृ0 315.

97- इकोनामिक हिस्ट्री ऑफ नार्दन इण्डिया, 253.

98- वृहत्कथा श्लोक संग्रह, 17, 276, 294, 360.

99- कुमारपाल चरित संग्रह काव्य, पृ0 32.

100- से0 ई0, 2, पृ0 270.

101- एपि0 ई0, 1, पृ0 159.

102- वही, 15, पृ0 130 एफ0

103- एपि0 इण्डि0, जि0 15, पृ0 138 एफ

104- का0 इं0 ई0, 4, कमांक 74, पृ0 390.

105- भंडारकर लिस्ट, पृ0 282.

106- वही, पृ0 110.

107- सेo ईo, 2, पृo 317.

108- सेo ईo, 2, पृo 503-504. प्रतिदीपोत्सव भंग व्यावहारूकश्रेष्ठ गंभुवकन्दुभ्भा: श्रोतके देया ।।

109- इन्सक्रिप्सन्स ऑफ इम्पीरियल परमारज, पृo 155.

110- हेमचन्द्र की देसीनाममाला, 6.59.

111- प्रबन्धचिन्तामणि, सं0 जिनविजयमुनि, पृo 70.

112- अभिधानचिन्तामणि, पृo 229.

113- तिलकमंजरी सांस्कृतिक अध्ययन, पृo 207

114- भावनगर इन्सक्रिप्सन्स, 2, पृo 67-68.

115- एपिo ईo, 18, नo 40, पंक्तियां, 127-31, 132-34 ।

116- इण्डo एपिo ग्लोसo, पृo 362.

117- समराइच्चकहा का सांस्कृतिक अध्ययन, पृo 98.

118- तिलकमंजरी सांस्कृतिक अध्ययन, पृo 225; इण्डo एपिo ग्लोसo, पृo 202.

119- इण्डo एपिo ग्लोसo, पृo 362.

120- वही

121- एपिo इण्डo, जिo 11, पृo 40-43.
अत्रेषु समस्त वनजारेषु {बनजार} देसी मिलित्वा वृषभ भारित जतुपाइलाल किराडउआ ।

122- एपिo इण्डo, 11, पृo 60, अभयमाग्रीव समायात सार्थ 32.10, वृष 20, उभयाद्वीप उर्द्ध सार्थप्रति ।

123- एपिo इण्डo, 15, पृo

124- एपिo इण्डo, 15, पृo 138.

125- एपिo इण्डo, 15, पृo 124 एफ

126- वही, 1, पृ0 159.

127- मृच्छकटिक, 1.6.8.

128- समराइच्चकहा, 6, पृ0 16.

129- तिलकमंजरी, पृ0 117; तिलकमंजरी सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 225.
आगृहीत द्वीजन्तरगामिभरिभाण्डेराभरण पर्याणि कादि वृषोपस्कर समास्वन संततव्यापृत - - - - - सार्थे स्थान स्थानेषु कृतावस्थानाम्

130- वृहत्कथाकोश, 55 - 200 के आगे

131- दशकुमारचरित, पृ0 86.

132- त्रिषष्टि शालाका पुरूषचरित्र, जि0 , 1.

133- कथासरितसागर, पृ0 85-88.

134- मेधातिथि टीका मनु - 8.290.

135- काव्यमीमांसा, पृ0 24.

136- त्रिषष्टि शलाका पुरूषचरित्र, जि0 पृ0 1, पृ0 7 के आगे

137- दोहाकोश, पृ0 311.

138- दशकुमारचरित, द्वितीय उच्छवास, पृ0 53.

138-अ- त्रिषष्टि शलाका पुरूष चरित्र, जि0 1, पृ0 7 के आगे.
उपमिति भवप्रपंच कथा, पृ0 863, कथासरित्सागर, 6, 3, 117, 7, 2.75.

139- तिलकमंजरी सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 224; अभिधानचिन्तामणि, तृतीयकाण्ड, श्लोक, 5.39.

140- समराइच्चकहा का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 98.

141- एपि० इण्डि० 3, पृ० 296-97 ; भारतीय सामन्तवाद, हिन्दी अनुवाद, पृ० 255.

142- एपि० ई०, 3, न० 4, पंक्ति, 56-57.

143- सै० ई०, 2, पृ० 55.

144- तिलकमंजरी, पृ० 71 ; तिलकमंजरी सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० 224.

145- यशस्तिलक, पृ० 345, उदधृत , गोकुल चन्द्र जैन, यशस्तिलक का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० 194.

146- दशकुमारचरित, पृ० 36.

147- हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० 122.

148- दशकुमारचरित, प्रथमोच्छ्वास, पृ० 9.

पंचम अध्याय

उद्योग से सम्बन्धित व्यवसायिक समुदाय

उद्योगों से सम्बन्धित व्यवसायिक समुदाय

तन्तुवाय :- वस्त्र उद्योग से सम्बन्धित व्यवसायिक वर्गों में तन्तुवाय का स्थान महत्वपूर्ण प्रतीत होता है । आधीत कालीन साहित्यिक एवं अभिलेखीय साक्ष्यों में तन्तुवाय के विषय में पर्याप्त साक्ष्य उपलब्ध होते हैं । इन्हें बुनकर, जुलाहा, तन्तुवाय, कुविन्द[1], पट्टैला[2], कौलिक[3] इत्यादि नामों से अभिहित किया गया है । अनंगभीम तृतीय के नगरी ताम्रपत्र अभिलेख (1230 ईसवी) में प्रसंगित विविध व्यवसायिक वर्गों में रेशम के बुनकरों तथा नागुजगाई नामक तन्तुवाय का उल्लेख मिलता है ।[4] श्री वल्लभकालीन लक्ष्मेश्वर अभिलेख में बुनकरों का प्रसंग मिलता है ।[5] अभिधान चिन्तामणि में बुनकरों के औजार तुर्क: (तकुआ) सूत्रवेष्टम् (ढरकी या सूत लपेटने का दण्डा) वानदण्ड (करघा) सूत्राणि (सूत या डोरा) आदि के उल्लेख से यह स्पष्ट होता है। इनके द्वारा तन्तुवाय अनेक प्रकार के वस्त्रों का निर्माण करते थे ।[6] मेधातिथि के अनुसार कपास ऊन और रेशम के तन्तुओं से विविध परिधान बनते थे ।[7] बाण ने हर्षचरित में वर्णित किया है, क्षुमा, रूई, दुकुल (छाल के रेशम) , (मलमल) अंशुक, और नेत्र रेशम के वस्त्र निर्मित किए जाते थे ।[8] तिलकमंजरी में सात प्रकार के वस्त्रों का उल्लेख किया गया है यथा अंशुक, दुकुल, चीन, नेत्र, क्षौम, पट्ट, अम्बर ।[9] ह्वेनसांग ने रूई, क्षुमा, ऊन से निर्मित वस्त्रों का उल्लेख किया है ।[10] कल्चुरि अभिलेखों में रेशमी वस्त्र[11], ध्वजपट[12], कौपीन वस्त्र[13], कपास[14] आदि का प्रसंग मिलता है । विग्रहपाल तृतीय के एक दानपत्र में रेशमी वस्त्र का उल्लेख मिलता है ।[15] सारंगदेव कालीन

चिंतर प्रशस्ति में महीन वस्त्रों का प्रसंग मिलता है ।[16] ऐसा ज्ञात होता है कि तन्तुवाय सूती, रेशमी, ऊनी सभी प्रकार के वस्त्रों का निर्माण करते थे । इनके द्वारा निर्मित वस्त्रों की उच्चता की पुष्टि साक्ष्यों से होती है । रघुवंश से विदित होता है, तन्तुवाय वस्त्र निर्माण में इतने निपुण होते थे कि उनके कपड़े फूँकमात्र से उड़ जाते थे ।[17] हर्षचरित में वस्त्रों की उत्कृष्टता के संदर्भ में उल्लिखित है, वस्त्र साँप की केंचुली के तरह महीन, छोटे केले के अन्दर स्थित गामे की तरह मुलायम, फूँकमात्र से उड़ जाने योग्य हल्के तथा कुछ तो ऐसे सूक्ष्म हुआ करते थे कि केवल स्पर्शमात्र से ही जाने जाते थे ।[18] अरब यात्री सुलेमान ने भी भारतीय वस्त्रों की प्रशंसा करते हुये लिखा है कि बंगाल के वस्त्र इतने महीन और अच्छे किस्म के होते थे, वस्त्र अंगूठी से पार हो जाते थे ।[19]

प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर तन्तुवाय व्यवसायी की सामाजिक - आर्थिक स्थिति का अवलोकन किया जा सकता है । अभिधान चिन्तामणि, देसीनाममाला, तथा वैजयन्ती इत्यादि ग्रन्थों में उल्लिखित सूची में तन्तुवाय की परिगणना प्रमुख व्यवसायिक समुदायों में करते हुये इन्हें शूद्र जाति के अन्तर्गत अनुगृहीत किया गया है ।[20] वृहद धर्म पुराण में प्रसंगित मिश्रित जातियों की तालिका में तन्तुवाय को उत्तम श्रेणी में सूचीबद्ध किया गया है ।[21] अलबीरूनी ने बुनकरों की गणना अंत्यजों में की है तथा इनकी श्रेणि का उल्लेख किया है ।[22] विज्ञानेश्वर ने बुनकरों की श्रेणि का उल्लेख किया है ।[23] स्मृतिचन्द्रिका में देव - ण्णभट्ट ने बुनकरों की श्रेणि का वर्णन किया है ।[24] अन्य ग्रन्थ त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित[25] और जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति [26] में विभिन्न समुदाय की श्रेणि के साथ

बुनकरों की श्रेणि का प्रसंग मिलता है । कुमारगुप्त के मन्दसौर अभिलेख में रेशम के बुनकरों की श्रेणि द्वारा सूर्य के भव्य मन्दिर के निर्माण एवं पुनः जीर्णोद्धार कराये जाने का उल्लेख मिलता है ।[27] श्री वल्लभ कालीन लक्ष्मेश्वर अभिलेख में बुनकरों की श्रेणि के प्रधान द्वारा धार्मिक दान दिये जाने का प्रसंग मिलता है ।[28]

उपरोक्त विवरणों से स्पष्ट होता है कि तन्तुवाय व्यवसायियों की आर्थिक स्थिति अच्छी थी । यद्यपि मध्यकालीन कतिपय शास्त्रकारों द्वारा इनकी गणना शूद्रों एवं अंत्यजों में की है जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टिकोण से इनकी स्थिति अधिक उच्च नहीं थी ।

ऊनी वस्त्र बुनकर जीविका चलाने वाले समुदाय का भी उल्लेख मिलता है । इन्हें कम्बल कारक की संज्ञा दी गई है ।[29] राजतरंगिणी में प्रसंगित है, कश्मीर में पाटन् प्रसिद्ध ऊनी वस्त्रों का शहर था [30], जहाँ उनी कपड़ों का व्यापार होता था ।[31] अभिधान चिन्तामणि में ऊन से बुने कपड़े को उत्तम, प्रोतम् की संज्ञा दी गई है ।[32] उपीमतिभवप्रपंचाकथा में वर्णित है, कम्बल, ऊनी वस्त्र था जिसका प्रयोग जाड़ों में किया जाता था ।[33] समयमातृका में तुष्ण कम्बल का उल्लेख किया गया है ।[34]

<u>रंगरेज :-</u> रंगाई छपाई का कार्य करने वाले लोगों को हम एक व्यवसायी वर्ग के अन्तर्गत मान सकते हैं । इन्हें रंगरेज की संज्ञा दी गई है ।[35] पूर्वमध्य कालीन साक्ष्योंमेंरंगाई छपाई के विषय में पर्याप्त साक्ष्य उपलब्ध होते हैं । मैत्रक वंशीय विष्णुसेन का ताम्रपत्र अभिलेख (592 ईस्वी) में छिम्पक शब्द रंगरेजों के लिए

प्रयुक्त हुआ है ।[36] हेमचन्द्र ने शब्दानुशासन में इन्हें द्यातन के नाम से अभिहित किया है ।[37] विज्ञानेश्वर ने एक स्थान पर रजाकोंका अर्थ रंगरेजों से लगाया है ।[38] हर्षचरित में नगर की वृद्ध स्त्रियों के द्वारा बांधनू की रंगाई के लिये वस्त्र बांधे जाने का प्रसंग मिलता है ।[39] विभिन्न रंगों की रंगाई के अतिरिक्त कपड़े रंगने में लहर और बुंदकी भी डाली जाती थी ।[40] कालिदास के साहित्य में नीलांशुक[41], काषाय[42], कुसुम रागारूणितेदुकूले[43], श्यामस्तनांशुक[44] इत्यादि रंगीन वस्त्रों का उल्लेख हुआ है । तिलक मंजरी में लाल रंग के नेत्र वस्त्र की पताकाओं का उल्लेख है ।[45] मानसोल्लास में वस्त्रों की रंगाई के सन्दर्भ में प्रमाण प्राप्त होते हैं ।[46] शुक्रनीतिसार , देसीनाममाला से रंगाई के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण सूचनायें प्राप्त होती है ।[47] लेखपद्धति से ज्ञात होता है, सम्भवतः राजा को भेजने वाले पत्रों पर केसरिया रंग से छीटे दिये जाने की परम्परा थी।[48] रंगों में रक्त (लाल), नीला, श्वेत, कुसुंभ ,(केसरिया), हरित (हरा), श्वेतरक्त (गुलाबी), पीतरक्त (पीला लाल मिश्रित) कुर्बर: (चितकबरे) इत्यादि रंगों का उल्लेख मिलता है, जिससे स्पष्ट होता है, उपरोक्त रंगों के वस्त्रों का प्रचलन समाज में था ।[49]

रंगाई के साथ वस्त्रों पर छपाई का कार्य करने वाले लोगों का समुदाय भी समाज में विद्यमान था । जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में छपाई व्यवसायी को चिम्पायस की संज्ञा दी गई है ।[50] तथा इसी ग्रन्थ में इनकी श्रेणियों का भी उल्लेख मिलता है ।[51] हर्षचरित में छपाई के सन्दर्भ में उल्लिखित है, वस्त्रों पर फूल - पत्ती की आकृतियों वाले ठप्पे से आड़े, टेढ़े - मेढ़े ढंग से छपाई की जाती

थी ।[52] इसी ग्रन्थ में वर्णित है, राजश्री के विवाह के अवसर पर छापेदार नेत्र खम्भों पर लटकाये गये थे ।[53] एक अन्य स्थान पर बाण ने लिखा है, दिग्विजय को प्रस्थान करते समय हर्ष ने दुकूल वस्त्रों का जोड़ा पहना था जिसके कोने पर हंस मिथुन छपे थे ।[54] दशकुमारचरित में सूक्ष्म छापे की साड़ी का प्रसंग मिलता है ।[55]

उपरोक्त उद्धरणों से ज्ञात होता है, तत्कालीन समाज में रंगाई-छपाई का व्यवसाय प्रचलित था ।

<u>दर्जी :-</u> दर्जियों की भूमिका भी महत्वपूर्ण प्रतीत होती है । साक्ष्यों में इन्हें तुन्तवाय[56] तथा सौचिक[57] की संज्ञा दी गई है । हर्षचरित में प्रसंगित है, सम्राट ने नवीन नेत्र या रेशम से बना अंगों से सटा हुआ कंचुक धारण किया था ।[58] मानसोल्लास में राजा के उपभोग में आने वाले विविध परिधानों का उल्लेख मिलता है ।[59] तुन्नवायों द्वारा निर्मित विविध परिधानों में स्यूतम, उत्तम, तन्तुसन्ततम्[60] (कोट - कमीज - कुर्ते) अपपदीनम् (पायजामा)[61], चोल कंचुलिका, अंगिका, कञ्चुक[62] (ब्लाउज) चलनक[63], (लंहगे) इत्यादि का उल्लेख मिलता है । उपरोक्त परिधानों की पुष्टि गुप्तकालीन सम्राटों की मुद्राओं में अंकित चित्रों से भी होती है ।[64] तिलकमंजरी में उद्धृत है मेघवाहन ने वृतावस्था में चाँदी के समान धुले हुये श्वेत दुकूल का जोड़ा पहना था ।[65] कृष्ण तृतीय के कन्धार अभिलेख (939 - 67 ईसवी) में वन्दिजनों तथा वेदों का उच्चारण करने वाले लोगों को प्रतिवर्ष राजा द्वारा एक जोड़ा वस्त्र दिये जाने का प्रसंग मिलता है ।[66] संरगदेव कालीन चिन्तर प्रशस्ति में दुकानदारों द्वारा भगवान सोमनाथ के राजकीय यात्रा के अवसर पर महीन वस्त्रों का जोड़ा

दान दिये जाने का विवरण मिलता है ।[67] तिलकमंजरी में एक अन्य स्थान पर वर्णित है कि मलयसुन्दरी ने हारीत पक्षी के समान हरे रंग का कंचुक पहना था ।[68] हर्षचरित में राजाओं की वेष-भूषा के सन्दर्भ में कूर्पासक का उल्लेख मिलता है । जो कमर से ऊँचा और आधी आस्तीन का कोटनुमा वस्त्र था, जिसे स्त्री-पुरुष दोनों ही पहनते थे ।[69]

अधीतकालीन साहित्यिक ग्रन्थ अभिधान चिन्तामणि, देसीनाममाला, वैजयन्तीकोष इत्यादि में शूद्र वर्ण के अन्तर्गत प्रमुख व्यवसायिक वर्गों में इनका उल्लेख मिलता है ।[70] इससे यह अनुमान लगाना अनुचित न होगा कि सिले हुये परिधानों का प्रचलन समाज में काफी मात्रा में होता था ।

<u>रजक:</u> - इन्हें वस्त्र शोधक[71] निर्णेजक[72] की संज्ञा दी गई है । अभिलेखीय प्रमाणों में श्रीचन्द्र के पश्चिमबाग ताम्रपत्र अभिलेख ‖ 925 - 75 ईसवी ‖ में मंदिर के सेवार्थ दान दिये भूमि खण्डों के साथ रजकों को भी दिये जाने का प्रसंग है ।[73] उड़ीसा से प्राप्त अनंगभीम तृतीय के नगरी ताम्रपत्र अभिलेख में उल्लिखित विभिन्न व्यवसायिक समुदायों की तालिका में रजकों का उल्लेख मिलता है ।[74] रट्टराज की रत्नगिरि प्रशस्ति में ‖ 1008 ईसवी ‖ में राजा द्वारा दिये गये प्रजाजनों में रजकों के परिवार का प्रसंग प्राप्त है ।[75] अभिधान - चिन्तामणि, देसीनाममाला तथा वैजयन्तीकोष में रजकों की गणना शूद्र जाति में निहित व्यवसायी वर्ग में की गई है ।[76] वृहद्धर्म पुराण में उल्लिखित मिश्रित जातियों की सूची में रजकों की गणना मध्यम संस्कार युक्त वर्ग में की गई है ।[77] साक्ष्यों में इन्हें कारूवर्ग के अन्तर्गत ग्रहीत किया गया है ।[78] स्मृतिकारों ने

विभिन्न व्यवसायिक समुदायों की सूची में सुवर्णकार का प्रसंग मिलता है ।[89] हर्षचरित में वर्णित है, राजश्री के विवाह के अवसर पर राजद्वार की ड्योढी के बाहर कोठे पर सुवर्णकार सोना गढने में रत थे ।[90]

स्वर्णकारों द्वारा निर्मित विभिन्न वस्तुओं में आभूषण घरेलू बर्तन, मूर्तियाँ इत्यादि उल्लेखनीय है । तिलकमंजरी में अनेक स्वर्ण आभूषणों का उल्लेख मिलता है यथा शिरोभूषणो में मौलि, किरीट, चूडारत्न मुकुट, कर्णाभूषणों में कुण्डल, कर्णाभरण, कर्णपूर, हार निष्क, एकावली, अंगुलियक, मेखला, रसना नुपुर, हंसक मंजीर इत्यादि ।[91] अभिधान चिन्तामणि में स्वर्णाभूषण ललाटभूषण, कर्णिका (कर्णभूषण) कुण्डल, कर्णिन्दु (स्वर्ण जंजीर) बलिका, मंठा, चन्द्रहार, प्रालम्बिका, बाहूभूषा, उर्मिका, नूपुर, श्रृंखलम् (पुरूषों की करधनी) इत्यादि की चर्चा की गई है ।[92] अभिलेखीय साक्ष्यों में विजयसेन के देवपाड़ा अभिलेख में हार, कुण्डल, पायजेब, स्वर्णकंगन इत्यादि आभूषणों का उल्लेख मिलता है ।[93] कल्चुरि अभिलेखों में स्वर्ण के आभूषण[94], कर्णाभूषण[95], कंगन,[96], गले का हार,[97] रत्नजड़ित मेखला[98], मोतियों की माला[99], जड़ाउ कर्णभूषण[100], जड़ित मुकुट[101] इत्यादि का उल्लेख है । भोजदेव निर्मित वाग्देवी मूर्ति अभिलेख से ज्ञात होता है, सरस्वती की प्रतिमा मुकुट, मणिपट्टो, मणिमाला, केशबंध, कर्णकुण्डल, मेखला, भुजबंध, कंकण से आवृत थी ।[102] युवराजदेव द्वितीय के बिलहरी प्रस्तर अभिलेख से ज्ञात है कालियानाग की प्रतिमा स्वर्ण व रत्नों से आवृत थी ।[103] अभिधान चिन्तामणि में स्वर्ण प्रतिमा को हरिणी, हिरण्यमयी, कनकमयी इत्यादि नामों से अभिहित किया गया है ।[104]

नैषधचरित में स्वर्णपात्रों में जग, तश्तरियाँ, कप, धूपदान इत्यादि का विवरण मिलता है ।[105] चौलुक्य नरेश कुमारपाल ने जावालिपुर के कुबरमिहिर जैन मंदिर में दापोत्सव पर स्वर्ण कलश की स्थापना करायी थी ।[106] देवपाड़ा अभिलेख में मंदिर के शिखरभाग स्वर्णकलश स्थापित किये जाने का प्रसंग प्राप्त होता है ।[107] इसके अतिरिक्त साक्ष्यों में स्वर्ण आसन[108], लेखनी[109], रत्नजड़ित स्वर्ण पलंग[110] इत्यादि का भी उल्लेख मिलता है ।

स्वर्णकारों का एक वर्ग राजकीय कार्यों में भीसंलग्न दृष्टिगत होता है । जिनका मुख्य कार्य ताम्रपत्र उत्कीर्ण करना था । दूतिवर्मन के तालेश्वर ताम्रपत्र अभिलेख में स्वर्णकार अनन्त द्वारा प्रशस्ति उत्कीर्ण किये जाने का प्रसंग है ।[111] प्रतिहार वंशीय बायुक कालीन जोधपुर प्रस्तर अभिलेख से ज्ञात होता है, कृष्णेश्वर नामक हेमकार ने लेख उत्कीर्ण किया था ।[112] इसी प्रकार का उद्धरण प्रतिहार कक्कुक कालीन धटिमाला स्तम्भ लेख में भी प्राप्त होता है ।[113]

स्वर्णकारों के अतिरिक्त स्वर्णवीथी अधिकारी का प्रसंग साक्ष्यों में प्राप्त होता है, जो स्वर्ण व्यापार के प्रमुख हुआ करते थे,[114] जिनका कार्य देख रेख करना था । साक्ष्यों में इनकी सामाजिकार्थिक स्थिति पर प्रकाश पड़ता है । अभिधान चिन्तामणि, देसीनाममाला, वैजयन्ती आदि ग्रन्थों में स्वर्णकारों का शूद्र वर्ग में ग्रहीत किया गया है तथा इन्हें पुमुख व्यवसायिक जाति में माना गया है ।[115] इस प्रकार वृहद्धर्म पुराण में प्रसंगित मिश्रित जातियों की सूची में स्वर्ण - कारों की गणना मध्यम संस्कार युक्त श्रेणि में की गई है ।[116] जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में स्वर्णकारों की श्रेणि का उल्लेख मिलता है ।[117] अहार अभिलेख से ज्ञात होता

है कि स्वर्ण वणिक् महाजन पक्की ईंटों से निर्मित तीन कमरों से युक्त एक मकान 99 वर्ष की लीज पर खरीदा था, जो तत्तान्दनपुर नगर के बाजार के मध्य भाग में स्थित था।[118] (1110 ईसवी) एक अन्य लेख में स्वर्णकारों की श्रेणि द्वारा संयुक्त दान का प्रसंग मिलता है।[119] उपरोक्त उद्धरणों से ऐसा संकेत मिलता है कि इनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ थी।

<u>मणिकार :-</u> धातु उद्योग से सम्बन्धित व्यवसायिक समुदायों में मणिकार को भी ग्रहीत किया जा सकता है। इन्हें वैकटिक की भी संज्ञा दी गई है।[120] जिनका मुख्य कार्य जवाहरात अर्थात रत्नों को सान पर चढ़ा कर सुडौल बनाना था।[121] आलोच्यकालीन कोशकारों ने मणियों की विस्तृत सूची प्रस्तुत की है, यथा हीरा, मोती, पन्ना, पद्मराग, नीलम, लाजवर्त, मूँगा, स्फटिक, चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त इत्यादि।[122] मानसोल्लास में विभिन्न मणियों के प्राप्ति स्थानों और उनके गुणों का भी विवेचन किया गया है।[123] स्पष्ट है विभिन्न प्रकार के रत्नों का प्रयोग मुख्य रूप से आभूषणों में किया जाता था।[124] हर्षचरित में रत्नजड़ित मुकुट का प्रसंग है।[125] तिलकमंजरी में वर्णित है, महादण्डनायकों ने मणियों से युक्त मुकुट धारण किये थे।[126] इसी ग्रन्थ में मणि जड़ित आभूषणों का अनेक प्रसंग मिलता है। हरिवाहन ने चन्द्रकांत मणि निर्मित कुण्डल कानों में धारण किया था।[127] तथा गन्धर्वक ने इन्द्रनीलमणि युक्त कर्णाभरण पहना था।[128] एक अन्य स्थान पर उद्धृत है, समरकेतु ने नौयुद्ध में जाते समय नाभिपर्यन्त लटकती हुई बड़ी - बड़ी मोतियों की माला धारण किया था।[129] उपरोक्त मणि - जड़ित आभूषणों के अतिरिक्त, मणिवलय[130], मरकत उर्मिका[131], मणिनुपुरों[132],

रत्नजड़े कुण्डल[133], कंगन[134], रत्नजड़ित सिंहासन[135], रत्नजड़ित पलंग[136] इत्यादि का प्रसंग मिलता है। दशकुमारचरित में मणियों के आभूषणों को धारण किये हुई एक श्रेष्ठ विनीत कन्या का उद्धरण प्राप्त होता है।[137] दशकुमारचरित में रत्न व्यवसाय के सन्दर्भ में प्रसंगित है, निरन्तर असंख्य दुकानों में फैलाकर रखे हुये मणियों आदि के द्वारा रत्नों के माहात्म को प्रकाशित करने वाली पुष्पापुरी नगरी थी। उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है, पुष्पपुरी नगरी में मणि व्यापार होता था।[138]

साहित्यिक साक्ष्यों के अतिरिक्त पुरातात्त्विक प्रमाणों से भी विभिन्न प्रकार की मणियों की पुष्टि होती है। अजन्ता के भित्ति चित्रों में रत्नजड़ित विभिन्न प्रकार के मुकुट अंकित किये गये हैं।[139] तंजोर मंदिर के अभिलेखों में हीरा, माणिक तथा मोतियों की विभिन्न किस्मों के साथ उनके गुणों का भी विवेचन किया गया है।[140] कलचुरि अभिलेखों में रत्नजड़ित मेखला[141], मोतियों की माला[142], जड़ित कर्णभूषण[143], जड़ित मुकुट[144] इत्यादि का उल्लेख मिलता है। बिलहरी प्रस्तर अभिलेख से ज्ञात होता है, कालियानागर की प्रतिमा रत्नों से आवृत थी।[145]

उपरोक्त कथनों से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज में रत्नों का पर्याप्त प्रचलन था। तथा रत्न व्यवसाय से समाज का एक वर्ग जीविकोपार्जन करता था।

कतिपय साक्ष्यों में रजतकार का भी उल्लेख मिलता है, जो सम्भवत: चाँदी का कार्य करते थे। यद्यपि कि यह भी संभव है, स्वर्णकार ही अधिकांशतय:

चाँदी का भी कार्य करते होंगे । सम्राट जयसिम्भदेव के जब्बलपुर लेख में पालहन के पुत्र तान्हन नामक रजतकार द्वारा लेख उत्कीर्ण किये जाने का प्रसंग मिलता है ।[146]

<u>ताम्रकार :-</u> साहित्यिक साक्ष्यों में ताम्रकार को शौल्वक, ताम्रकुट्टक भी कहा गया है ।[147] अभिलेखों में इन्हें ताम्रहार की भी संज्ञा दी गई है ।[148] ताम्र-व्यवसायियों द्वारा निर्मित मूर्तियाँ, बर्तन इत्यादि के उदाहरण प्राप्त होते हैं । हुवेनसांग ने सम्राट पुण्यवर्मा द्वारा नालन्दा में निर्माण की गई 80 फिट ऊँची ताम्र बुद्ध प्रतिमा का विवरण प्रस्तुत किया है ।[149] अलबीरूनी ने भी थानेश्वर में निर्मित चक्रस्वामिन की ताम्र प्रतिमा का वर्णन किया है ।[150] अभिलेखीय प्रमाणों में राजा चोल के द्वारा तंजोर मंदिर के शिखर ढकने के लिये 3083 वाट वजन का ताम्र कलश दान दिये जाने का प्रसंग प्राप्त है ।[151] मलाकपुर प्रस्तर स्तम्भ लेख में पुरजन वासियों के साथ ताम्रकारों का उल्लेख है । प्रस्तर लेख से यह भी ज्ञात होता है दान की गई भूमि में एक पुट्टिका भूमि ताम्रकारों को भी दी गई थी ।[152] (725 ई0) के लक्ष्मणेश्वर अभिलेख में ताम्र व्यवसायियों की श्रेणि का उल्लेख है ।[153] (1110 ई0) के अभिलेख में ताम्रकारों की श्रेणि द्वारा दिये गये संयुक्त दान का प्रसंग मिलता है ।[154] नरसिम्भ द्वितीय के कैंदुपटन प्रशस्ति से ज्ञात होता है, ताम्रकार को लेख उत्कीर्ण करने पर श्रम राशि के रूप में जलयुक्त एक वाटिका भूमि प्रदान की गई थी ।[155]

ऐसा प्रतीत होता है कि ताम्र व्यवसाय भी एक संघठित व्यवसाय के रूप में समाज में प्रचलित था ।

कांस्यकार :- ताम्रकारों की भांति कांस्यकारों[156] का भी एक वर्ग था । इन्हें कांसार, कंस्यकार, कांसार, कांसारक, कांस्यकार[157], रीतिकार[158] घंट निर्माणक इत्यादि नामों से अभिहित किया गया है । भास्कर वर्म्मन के नीधान - पुर ताम्रपत्र अभिलेख ﴾ 400 - 50 ईस्वी ﴿ में ताम्रकार के लिये सेक्यकार शब्द प्रयुक्त हुआ है । प्रस्तुत लेख में ताम्रकार द्वारा लेख उत्कीर्ण किये जाने का प्रसंग मिलता है ।[159] सियादोनी अभिलेख में कांस्यकार तथा कांसार वीथी का प्रसंग प्राप्त होता है ।[160] अनंगभीम तृतीय के नगरी ताम्रपत्र अभिलेख में राजा द्वारा अनुदानित ग्राम के साथ वहाँ रहने वाले विभिन्न वणिक् समुदाय में कांस्यका का भी विवरण प्राप्त होता है ।[161] सिलहट जिले से प्राप्त ।।वी सदी के मध्य के एक अनुदान पत्र से ज्ञात होता है, राजा गोविन्द केशवदेव द्वारा भगवान शिव के सेवार्थ दान की गई भूमि के साथ वहाँ रहने वाले घंटकार को भी उनके अधीन कर दिये गये थे ।[162] (725 ई0) के लक्ष्मणेश्वर अभिलेख में कांसे का काम करने वालों की श्रेणि का उल्लेख है ।[163] (1110 ईस्वी) के अभिलेख में कांस्यकारों की श्रेणि द्वारा संयुक्त दान का उल्लेख है ।[164]

लोहकार :- धातु उद्योग से सम्बंधित पेशेवर वर्ग में लोहकार भी एक प्रमुख समुदाय के रूप में परिलक्षित होते हैं । साक्ष्यों में इन्हें व्योकार[165], कर्मार[166], अयस्यकार[167] की संज्ञा प्राप्त है । इनकी गणना कारू वर्ग के अन्तर्गत की गई है ।[168] जयसिंह के रीवापत्र अभिलेख ﴾ वर्ष 926 ﴿ में कूके व कीकक नामक लोहकारों द्वारा प्रशस्ति उत्कीर्ण किये जाने का प्रसंग है ।[169] श्रीचन्द्र के पश्चिम

भाग ताम्रपत्र (925 - 75) में मंदिर के सेवार्थ दान की गई 120 पातक भूमि के साथ 22 कर्मकारों को भी सौपा गया था तथा प्रत्येक को 1/2 पातक भूमि दिये जाने का विवरण प्राप्त है ।[170] मैत्रक वंशीय विष्णुसेन के ताम्रपत्र अभिलेख में लोहकारों का प्रसंग प्राप्त होता है ।[171]

लोहकार द्वारा निर्मित विभिन्न वस्तुओं का प्रसंग साक्ष्यों में प्राप्त होता है । परमारों की राजधानी धारा में स्थित प्रसिद्ध लौहस्तम्भ लोहकारों की महत्वपूर्ण उपलब्धि का उदाहरण है ।[172] इसके अतिरिक्त लोहकार कृषि उपकरण यथा दात्रम् (हँसिया), गोदारणम् (कुदाल), खनित्रम् (खन्ती)[173] तथा अन्य विविध उपकरणों में वृक्षादन: (कुल्हाड़ी) वक्षभित् (वसूला) पाषाण दारण, टंक: (छेनी), चर्मप्रभेदिका (चमड़ा काटने का औजार)[174] युद्धक हथियार में सर्वलोह (लोहे के बाण) कृपाण, खंग (तलवार) कलकम्, आवरणम् (ढाल) कृपाणिका (छुरी) पत्रपाल (कटार) करवालिका (गुप्ती) कुठार (फरसा) परिध:, परिधातन (लोहामढ़ी लाठी), शल्यम् (भाला), शूल (त्रिशूल) इत्यादि का निर्माण करते थे ।[175]

ऐसा प्रतीत होता है कि समाज में लोहे का प्रयोग व्यापक पैमाने पर किया जाता था; जिससे लोहकारों की विस्तृत क्षेत्र में प्रचलित व्यवसायिक स्थिति का अंकन किया जा सकता है । कतिपय साक्ष्यों में लोहकारों के आर्थिक संगठन का विवरण प्राप्त होता है[176] तथा उनके द्वारा दान दिये जाने का भी प्रसंग मिलता है ।[177] जिससे उनकी स्वछन्द आर्थिक स्थिति का भान होता है ।

<u>शाखिक</u> :- शंख सीप से विभिन्न प्रकार की कलात्मक वस्तुयें बनाने वालों का एक समुदाय था जिन्हें शाखिक: काम्बविक: की संज्ञा दी गई है ।[178] हर्ष - चरित में हर्ष को भेटस्वरूप प्राप्त विभिन्न सामग्री में अनेक प्रकार के पानभाजन, मधुपीने के चषक इत्यादि का उल्लेख है जो सीप, शंख और गल्वर्क के बने हुये थे और जिन पर चतुर शिल्पियों ने भाँति - भाँति की नक्काशी का कार्य किया था ।[179] शाखिक समुदाय के संदर्भ में अनेक अभिलेखीय प्रमाण उपलब्ध होते हैं । 1230 - 31 (ईसवी) नगरी ताम्रपत्र में प्राप्त व्यवसायिक वर्ग की सूची में शंख व्यवसायी का प्रसंग मिलता है ।[180] नरसिम्भ द्वितीय के केंनदुपटन लेख में सम्राट नरसिम्भ द्वारा 100 वाटी भूमि दान किये जाने का उल्लेख है । इस अनुदान के साथ स्थायी तौर पर वहाँ रहने वाले प्रजाजनों में शंखकारों का भी प्रसंग मिलता है ।[181] कमन प्रस्तर अभिलेख से ज्ञात है भद्रेण नामक शाखि के किले के बाह्य भाग में स्थित दो आवारी दान की थी ।[182] सोमनाथ मंदिर अभिलेख में वर्णित है, लक्ष्मीधर नाम के शाखिक ने उत्तम निवास स्थान प्रदान किया ।[183]

<u>दन्तकार</u> :- पूर्वमध्य काल में हाथी दाँत की विभिन्न कलात्मक वस्तुएं बनाने वाले समुदाय को दन्तकार की संज्ञा दी गई है ।[184] गोविन्द केशव के मत्रा लेख में राजत्रिशा नाम के दन्तकार का उल्लेख है ।[185] इसके अतिरिक्त पूर्वमध्यकालीन अनुदान पत्रों में दान दी गई भूमि के साथ ग्रहीता को अन्य वस्तुओं के साथ गज - दन्त का उपभोग करने का अधिकार दिये जाने के प्रमाण प्राप्त होते हैं ।[185अ] करन के रत्नागिरि ताम्रपत्र अभिलेख (1100 - 10 ईसवी) में ये ग्रहीता को गजदन्त उपभोग का अधिकार प्राप्त था ।[186]

दन्तकारों के अद्भुत हस्त कौशल और कलात्मकता का परिचय विभिन्न आभूषणों, खिलौने तथा अन्य वस्तुओं से प्राप्त होता है । तिलकमंजरी में हाथी दाँत के कंगन निर्माण करने को "वलयकार " कहा गया है ।[187] इस प्रकार आभूषणों में कंगन[188], पायजेब[189] इत्यादि बनाये जाते थे । मानसोल्लास में उल्लिखित है कि राजा के सुकआसन (बैठने के आसन) में हाथी दाँत के डंडे लगे होते थे [190] तथा पलंग के पाये भी गजदन्त के बने होते थे ।[191] हर्षचरित में वर्णित है हाथी दाँत के शफरन में कतरी सुपाड़ी और सुगन्धित सहकार तेल में भीगा हुआ खैर भरकर रखा था ।[192] क्षमेन्द्र ने लिखा है कि दन्तकार हाथी दाँत से विभिन्न प्रकार की आकृतियाँ बनाया करते थे ।[193] ऐसा प्रतीत है कि गजदन्त का प्रयोग राजसी व सम्भ्रांत वर्ग के सदस्यों द्वारा अधिक किया जाता होगा ।

<u>कुम्हार</u> :- आलोच्य कालीन साहित्यिक एवं अभिलेखीय साक्ष्यों में कुम्हारों के अनेक प्रसंग उपलब्ध होते हैं जिनके आधार पर कुम्हारों के व्यवसायिक पक्ष का अवलोकन किया जा सकता है । अभिधान चिन्तामणि तथा अन्य ग्रन्थों में इन्हें कई उपनामों से अभिहित किया गया है यथा कुलाल, कुम्भकार, दण्डभृत, चक्रजीवक ।[194] यशस्तिलक में कुम्हार को निपाजीव की संज्ञा दी गई है ।[195] अनंगभीम तृतीय के नगरी ताम्रपत्र अभिलेख में अर्जुन और विसू नामक कुम्भहारों का प्रसंग प्राप्त होता है ।[196] रट्टराज का रत्नगिरि प्रशस्ति में कुम्भहार परिवार का विवरण उपलब्ध है ।[197] नरसिम्भ द्वितीय कालीन केन्दुपटन अभिलेख में सम्राट द्वारा दी गई भूमिखण्डों के साथ वहाँ रहने वाले अन्य वर्गों के

साथ कुम्भहारों को भी ग्रहीता को सौपे जाने का प्रसंग है ।[198] विष्णुसेन के ताम्रपत्र अभिलेख में कुंभकारों का उल्लेख है ।[199] शशांक कालीन मिदनापुर ताम्र - पत्र अभिलेख (600 - 25 ईसवी) में महाकुम्भहार का उल्लेख मिलता है जिसका आशय बड़े कुम्भहार से है जो सम्भवत: क्षेत्र में एक हुआ करते थे ।[200] इसी संदर्भ में शशांक कालीन एक अन्य लेख में लघु कुम्भहार का प्रसंग प्राप्त होता है ।[201] उपरोक्त तथ्य से स्पष्ट होता है कि लघुकुम्भहार तथा महाकुम्भहार के रूप में समाज में दो वर्ग विद्यमान था ।

कुम्भहारों के मुख्य उपकरण के रूप में ~~चाक~~, शलाका का उल्लेख मिलता है ।[203] पात्र बनाने या पकाये जाने वाले घर को आवां[204], कुम्भशाला, पाककुटी[205] कहा गया है ।

कुम्भहार द्वारा निर्माण किये गये विविध प्रकार के मृदभाण्डों, खिलौने, इत्यादि की पुष्टि प्राप्त साक्ष्यों के आलोक में की जा सकती है । इस संदर्भ में विस्तृत विवरण प्रस्तुत करते हुये बाण ने हर्षचरित में लिखा है, खिलौना बनाने वाले मछली, कछुवा, मगरमच्छ, नारियल, केला आदि के वृक्ष तथा भांति - भांति के मृदभाण्ड निर्माण में रत थे ।[206] हर्षचरित में मिट्टी के पात्रों में कर्करी, कलशी, अलिंजर, उदकुम्भ घट का उल्लेख मिलता है ।[207] और जलपात्र के रूप में धड़ोंचियों, ~~लम्बोत्तर~~ मिट्टी की लम्बोत्तर गगरियों का भी प्रसंग प्राप्त होता है ।[208] पुरातात्त्विक उत्खननों में प्राप्त विभिन्न प्रकार के मृदभाण्ड भी कुम्भहार कला को इंगित करते हैं ।[209]

मृदभाण्डों के साथ मिट्टी की मूर्तियों का भी प्रचलन था । हर्षचरित में उल्लिखित है, वेदी के आस-पास मिट्टी की मूर्तियां हाथों में मांगल्य कलश लिये हुई रची गई थी, जिन्हें अंजलिकारिका कहा गया है ।[210]

प्राप्त साक्ष्यों के आलोक में कुम्भकारों के सामाजिकार्थिक पक्ष का विवेचन किया जा सकता है । तिलकमंजरी में प्रजापति की कुलाल से तुलना की गयी है ।[211] अभिधानचिन्तामणि, देसीनाममाला, वैजयन्ती इत्यादि ग्रन्थों में वर्णित व्यवसायिक समुदायों की श्रृंखला में कुम्भकार को प्रमुख वर्ग में गृहीत करते हुये शूद्र जाति का कहा गया है ।[212] जिनेश्वर सूरी ने कुम्भकारों की श्रेणि का उल्लेख करते हुये इन्हें अधम जाति में विहित किया है ।[213] कामन प्रस्तर अभिलेख में कुम्भकारों की श्रेणि के सन्दर्भ में विवरण प्राप्त होता है ।[214] श्रीचन्द्र के पश्चिमबाग ताम्रपत्र अभिलेख से ज्ञात है सम्राट द्वारा दान की गई ।20 पाटक भूमि में से पाँच पाटक भूमि कुम्भकारों को प्रदान की गई थी ।[215] प्रबन्ध चिन्तामणि में प्रसंगित है कुमारपाल ने आलिग नामक एक कुम्भकार को चित्रकूट नाम की पट्टिका अनुदान में दी थी जिसमें 600 ग्राम शामिल थे ।[216] भुवनेश्वर के लिंगराज मंदिर अभिलेख में कुम्भकारों का प्रसंग मिलता है, जो मंदिरों को रसोई के पात्र दिया करते थे ।[217] एक अन्य अभिलेखीय विवरण से ज्ञात होता है, भगवान लिंगराज के भोग हेतु प्रतिदिन रसोई के पात्र देने पर एक कुम्भकार को दो वाटी भूमि दी गई थी ।[218]

उपरोक्त साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कुम्भकार वर्ग मंदिरों से जुड़े थे और इन्हें श्रमराशि के रूप में भूमि प्राप्त होती थी । इसमें सन्देह नहीं है कि

मृदभाण्ड व्यवसाय काफी विस्तृत क्षेत्र में था और पर्याप्त संख्या में लोग मृदभाण्ड बना कर अपना जीवन यापन करते थे ।[219]

काष्ठकार :- प्राचीन काल से ही काष्ठकला प्रमुख कला के रूप में मानी जाती रही है मध्य युग में काष्ठ कला के सन्दर्भ में अनेक उदाहरण प्राप्त होतें हैं । काष्ठ का विभिन्न कार्य करने वाले व्यवसायी वर्ग को अभिलेखों में वर्धकी[220], तक्षायस्य - कार[221], सूत्रधार[222] इत्यादि संज्ञायें प्रदान की गई है । आलोच्य कालीन कोषकारों ने काष्ठकार को बढ़ई, रथकृत, रथपति, त्वष्टा, काष्टतक्ष, तक्षा, वर्द्धकि इत्यादि नामों से अभिहित किया है[223] जिन्हें हम एक दूसरे के पर्याय के रूप में ग्रहण कर सकते हैं ।

अभिधान चिन्तामणि में काष्ठकारों के दो वर्ग का उल्लेख मिलता है । प्रथम ग्रामतक्षः जो कृषकों के अधीन रहकर हल आदि का कार्य करता था । द्वितीय को कौटतक्षः कहा गया है, जो स्वतन्त्र रहकर काम करते थे ।[224]

काष्ठकारों द्वारा निर्माण की गई विभिन्न वस्तुओं में कुर्सी, पलंग[225], नाव[226], द्रोणी[227] (छोटी नाव) नौकादण्ड[228] इत्यादि का उल्लेख साक्ष्यों में प्राप्त होता है । कोल्हापुर अभिलेख में काष्ठ के सामानों में स्टूल, तिपाई, इत्यादि का प्रसंग मिलता है ।[229] काष्ठ स्टूल विभिन्न आकारों में भी प्राप्त होत हैं ।[230] इसके अतिरिक्त मंदिरों के आकारचित्रों में काष्ठ के मेज, आसन, चित्रपट, पलंग, बैलगाड़ी,रथ इत्यादि काष्ठकारों की उपलब्धि के रूप में प्राप्त होते हैं ।[231] उक्त वस्तुओं के अतिरिक्त काष्ठ व्यवसायी काष्ठ के गृह[232], मंदिर[233], दरवाजे[234], खिड़कियों[235] के निर्माण में भी कुशल होते थे ।

काष्ठ व्यवसायिक समुदाय में एक वर्ग रथकारों का भी दृष्टिगत होता है । विभिन्न प्रकार के रथों के निर्माण में रथकारों की महत्वपूर्ण भूमिका होती थी । अभिधानचिन्तामणि में कई प्रकार के रथों का उल्लेख मिलता है ।(1) पुष्प - रथ (क्रीड़ा या उत्सवादि के लिये निर्माण किया गया रथ), (2) मरूद्रथ (देवता को विराजमान करने वाला रथ), (3) योग्यारथ (शस्त्र की शिक्षा या अभ्यास हेतु बनाया गया रथ), (4) अध्वरथ (सामान्य यात्रा हेतु बनाया गया रथ), (5) कर्णीरथ, प्रवहणम् (पर्देयुक्त रथ जिन्हें कहार कन्धे पर ढोते थे), (6) काम्बल दुकूल (कम्बल, वस्त्र आदि से ढके या मढ़े हुये रथ,(7) पाण्डु कम्बली (पाण्डववर्ण के कम्बल से ढके रथ होते थे) ।[236] केल्हनदेव के एक अभिलेख (1164 ईसवी) में वर्णित है, रथकार राजस्थान में सानद्राव का निवासी था ।[237] विष्णु सेन के ताम्रपत्र में व्यवसायिक वर्ग में रथकारों का प्रसंग मिलता है ।[238] अभिलेखों में रथ यात्रा का विवरण प्राप्त होता है ।[239]

<u>बांसकार</u> :- अधीत कालीन साक्ष्यों के अनुशीलन से ज्ञात होता है, बांस के व्यवसाय में संलग्न लोगों का एक समुदाय समाज में विद्यमान था । इन्हें वंशकार की संज्ञा दी गई है ।[240] मुख्य रूप से बांस का प्रयोग बासुरी, डलिया, चटाई, बांस के पंखे इत्यादि के निर्माण किया जाता था ।[241] अभिधान चिन्तामणि में बांस की विभिन्न वस्तुओं में कट किलिंज (चटाई)[242], कण्डोलक, पिटम, (डाली टोकरी)[243] शर्पम, प्रस्फोटनम् (सूप)[244], वेणुकम् (छोटी छड़ी)[245], वेत्रासनम् आसन्दी (आसन, कुर्सी[246] तथा पर्णशाला[247] (घास फूस की कुटी) इत्यादि का वर्णन मिलता है । तिलकमंजरी में तृणमय गृह अर्थात घास फूस के गृह

निर्माण में कुशल व्यक्ति को कार्म की संज्ञा दी गई है ।[248] इन्हें बाँस व्यवसायिक वर्ग के अन्तर्गत ग्रहीत कर सकते हैं । प्रस्तुत ग्रन्थ कार्म वर्ग के सन्दर्भ में वर्णित है, राजा जब सैनिक प्रयाण के लिये निकलते तो जगह - जगह पर सैनिक पड़ाव हेतु घास फूस के राजमन्दिर बनाये जाते थे ।[249] पूर्वमध्य कालीन अभिलेखीय प्रमाणों से भी उक्त वर्ग की पुष्टि होती है । कन्नौज के राजा गोविन्द चन्द्र के ताम्रपत्र अभिलेख में प्रसंगित काष्ठ शब्द चटाई निर्माण के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।[250] महेन्द्रपाल द्वितीय के परतापगढ़ प्रस्तर अभिलेख में प्राप्त "किटिका:" शब्द चटाई के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है तथा प्रस्तुत लेख से यह भी ज्ञात होता है, शासन द्वारा पाँच चटाई दी गई थी ।[251] एक अन्य अभिलेख में डलिया बनाने का विवरण प्राप्त होता है । प्रस्तुत लेख में उल्लिखित "द्वारा" शब्द का प्रयोग एक विशेष आकार की डलिया के लिये किया गया है ।[252]

स्पष्ट है कि बाँसकार अपने हस्त कौशल से विभिन्न प्रकार की वस्तुयें एवं गृह निर्माण करते थे ।

<u>मालाकार</u> :- अन्य व्यवसायों की भाँति पुष्प व्यवसाय भी तत्कालीन समाज में अत्यधिक प्रचलित था । इस व्यवसाय से सम्बन्धित समुदाय को मालाकार, मालिक, पुष्पाजीव की संज्ञा दी गई है ।[253] हलायुधकोश में मालाकार के लिये पुष्तिहारिक भी प्रयुक्त है ।[254] वर्णरत्नाकर में पुष्पभट्ट शब्द का प्रयोग फूलों को सजाने वाले के अर्थ में किया गया है, अत: इन्हें हम मालाकार का ही एक पर्याय मान सकते हैं ।[255] तिलकमंजरी में वर्णित है, काँची नगरी में मालाकारों की बहुलता थी ।[256] इसी ग्रन्थ में पुष्पों एवं पत्तों के अनेक आभूषणों का उदरण

प्राप्त होता है । मेघवाहन ने मालती पुष्पों से गुंथित शेखर (केशों में बांधने वाली माला) लक्ष्मी की प्रतिमा को पहनाया था,[257] तथा हरिवाहन ने शिरीषपुष्प का कर्णपूर तथा कदम्ब पुष्पों का प्रालम्ब (घुटने तक लम्बी माला) धारण किया था ।[258] उपरोक्त आभूषणों के साथ पुष्पों तथा पत्ते से बने अवतंस, मेखला, नुपुर इत्यादि का उल्लेख मिलता है ।[259] इसके अतिरिक्त द्वार पर मंगलार्थ वन्दनमालायें लगाये जाने की प्रथा थी । समराइच्चकहा में प्रसंगित है कि राजा के प्रसाद में तोरण और वन्दन मालायें लटक रही थी, सुगन्धित श्वेत आकर्षक पुष्प मालायें इसके सौन्दर्य में निरन्तर वृद्धि करती थी ।[260]

ऐसा प्रतीत होता है तत्कालीन समाज में स्त्री, पुरूष न केवल आभूषणों तथा सजीले वस्त्रों से ही अपना श्रृंगार करते थे अपितु विभिन्न ऋतुओं में खिलने वाले अनेक प्रकार के पुष्पों से अपने शरीर के विभिन्न अवयवों का प्रसाधन करते थे । स्पष्ट है कि ये पुष्पाभूषण वन्दन मालायें मालाकारों की व्यवसायिक कला कुशलता को व्यक्त करते हैं ।

अभिलेखीय साक्ष्यों में प्राप्त विभिन्न उद्धरणों से भी मालाकारों की पुष्टि होती है । अनंगभीम तृतीय के नगरी ताम्रपत्र अभिलेख में मनु तथा महादेव नामक मालि का उल्लेख मिलता है ।[261] श्रीचन्द्र के पश्चिमभाग ताम्रपत्र अभिलेख में मंदिर के सेवार्थ दान में दी गई भूमि में से पांच पाटक भूमि मालाकारों को दान दिये जाने का उद्धरण प्राप्त है ।[262] मध्यकालीन अभिलेखों में पुष्पवाटिका हेतु भूमिखण्ड दान दिये जाने के भी प्रसंग प्राप्त होते हैं । भोजदेव कालीन यशोवर्मन का कालवन ताम्रपत्र लेख में पुष्पवाटिका हेतु 2 निर्वर्त्तन भूमि दान दिये

जाने का उल्लेख मिलता है ।[263] भोजदेव कालीन ग्वालियर अभिलेख से ज्ञात होता है, 187 हस्त चौड़ी भूमि खण्ड पुष्प वाटिका हेतु दान दिया गया था ।[264] प्रस्तुत लेख में गोपगिरि निवासी माल्कि महर (श्रेणि प्रधान) और सम्पूर्ण श्रेणि के दूसरे सदस्यों द्वारा पूजा हेतु प्रतिदिन 50 फूलों की माला दिये जाने का उल्लेख प्राप्त है ।[265] कमन अभिलेख में मालाकारों की श्रेणि द्वारा भगवान विष्णु के मंदिर को 34 फूलों की माला दिये जाने का विवरण प्राप्त है ।[266] इसी संदर्भ में सरंगदेव की चिनतर प्रशस्ति में प्रसंगित तथ्य इस प्रकार है । प्रस्तुत लेख में मालाकारों की श्रेणि द्वारा प्रतिदिन 200 श्वेत गुलाब दिये जाने का उल्लेख है ।[267] महेन्द्रपाल द्वितीय के परतापगढ़ प्रस्तर अभिलेख में वणिक् संस्था द्वारा वटयक्षिणी देवी के पूजा हेतु वारलड़ी की सौ पुष्प मालाओं को दिये जाने का विवरण प्राप्त होता है ।[268] साक्ष्यों से स्पष्ट होता है सामान्य रूप से पुष्पों का उपयोग विशेष रूप से धार्मिक कृत्यों, पूजा अर्चन शरीर सज्जा तथा विशेष उत्सवों पर किया जाता था । यह व्यवसाय भी संघटित ईकाई के रूप में समाज में प्रचलित था ।

गंधिक :- साक्ष्यों में विभिन्न प्रकार की सुगन्धित इत्रों का व्यवसाय करने वाले वर्ग को गंधिक या गन्धी नाम से अभिहित किया गया है ।[269] ऐसा प्रतीत होता है ये गंधिक वर्ग अनेक प्रकार के इत्रों के साथ-साथ धूप हेतु सुगन्धित अगर - बत्तियों का भी निर्माण करते थे, जिनका प्रयोग मंदिरों में पूजा अर्चना हेतु किया जाता था । मध्यकालीन अनुदानों में देवता के निमित्त सन्दल लेप तथा सुगन्धित धूप दिये जाने के प्रसंग प्राप्त होते हैं ।[270] सरंगदेव कालीन चिनतर

प्रशस्ति में देवता के धूप अर्पण हेतु प्रत्येक मास दो मन गुग्गुल दिये जाने का उल्लेख मिलता है ।[271] सोमनाथ मंदिर अभिलेख में वणिकों द्वारा मंदिर में धूप, बत्ती और सन्दन हेतु दान दिये जाने का विवरण प्राप्त होता है ।[272] अहार प्रस्तर अभिलेख से ज्ञात होता है माथुर जाति का माधव नामक वणिक गंधिक ने स्वयं के धन से एक गृह क्रय किया था ।[273] दुतिवर्मन का तलेश्वर ताम्रपत्र में प्रसंगित गौग्गुलिक शब्द धूप व्यापारी के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । प्रस्तुत लेख में भगवान की पूजा हेतु धूप, गन्ध के प्रयोग का भी प्रसंग मिलता है ।[274] अनंगभीम तृतीय के नगरी ताम्रपत्र अभिलेख में विभिन्न प्रकार के वणिक् समुदाय में गंधिक का उल्लेख मिलता है ।[275]

अधीत कालीन ग्रन्थ अभिधानचिन्तामणि में विभिन्न प्रकार के सुगन्धित चूर्ण[276] (चन्दन) श्रीखण्ड, मलयज[277], (कस्तूरी), मृगनीय[278] इत्यादि का विवरण प्राप्त होता है । दशकुमारचरित में उल्लिखित है कि सोने के घड़े में मलयगिरि, चन्दन, खस, कपूर मिश्रित जल तैयार किया गया था ।[279] हर्षचरित में राजश्री के विवाह के अवसर पर राजकुल की ओर से सुगन्धित पटवास, या इत्र का कोटा वितरित किये जाने का प्रसंग प्राप्त होता है[280] जिससे स्पष्ट होता है विशेष उत्सवों, अवसरों पर इत्र देना एक प्रथा थी । कभी-कभी गर्मी के दिनों में संभ्रांत परिवार के लोग अपने शरीर पर सन्दल का चूर्ण मलते थे । क्षमेन्द्र ने गर्मियों में सन्दल लेप के उपयोग करने का उल्लेख किया है ।[281] काव्यमीमांसा में विभिन्न ऋतुओं में प्रयोग किये जाने वाले सुगन्धित लेप की विस्तृत सूची प्राप्त होती है ।[282] ह्वेनसांग ने लिखा है, भारतीय पुरुष स्नान के उपरान्त सन्दल का इत्र प्रयोग करते थे ।[283]

उपरोक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि समाज में इत्रों का प्रचलन अत्यधिक था। विशेष रूप से समाज के संभ्रान्त वर्गों द्वारा इत्रों की माँग अधिक होती थी।

<u>ताम्बूलिक</u> :- समाज में पान के व्यवसाय में संलग्न समुदाय को तम्बूलिक की संज्ञा दी गई है।[284] कतिपय लेखों में इन्हें वागुलिक भी कहा गया है।[285] हर्ष-चरित में ताम्बूलिक का प्रसंग मिलता है।[286] उड़ीसा से प्राप्त अनंगभीम तृतीय के नगरी ताम्रपत्र अभिलेख में महानाद, सोमाइरण्डु नाम के ताम्बूलिक का प्रसंग प्राप्त होता है।[287] सियादोनी अभिलेख में ताम्बूल व्यापारियों के विषय में पर्याप्त सूचना प्राप्त होती है। प्रस्तुत लेखानुसार वटेश्वर सुत ताम्बूलिक केशव ने चतुहट्ट के दक्षिण ओर स्थित अपनी पुश्तैनी वीथी को श्री विष्णु भट्टारक के सेवार्थ दान दी थी। और ताम्बोलिक महर केशव पुत्र सवर तथा इच्छुपुत्र माधव ने मिलकर विष्णु भगवान को दान दिया था।[288] श्री सारंगदेव की चिनतर प्रशस्ति में महर द्वारा प्रतिदिन 50 पान के पत्ते दिये जाने का विवरण प्राप्त होता है।[289] बंगाल के चन्द्रवंशीय गोविन्दचन्द्र के बेतक बासुदेव मूर्ति अभिलेख में गाँव के निवासियों द्वारा ताम्बूल की खेती किये जाने का प्रसंग प्राप्त है। प्रस्तुत लेख से यह भी ज्ञात होता है कि इनका मुख्य व्यवसाय ताम्बूलकी खेती एवं विक्रय करना था।[290]

आलोच्य कालीन विभिन्न ग्रन्थों में भी ताम्बूल-व्यवसाय के प्रमाण उपलब्ध होते हैं। हर्षचरित में प्रसंगित है, लटकते हुये बीड़ों से लदे हुये छोटे-छोटे ताम्बूल की झाड़ लिये हुये परिजन लोग चलते थे।[291] हर्षचरित में ताम्बूलिक वाहिनी का उल्लेख मिलता है।[292] तिलकमंजरी में उल्लिखित है, उत्तम वस्त्र की थैली में ताम्बूल के बीड़ों की टोकरी रखी गयी थी।[293] दशकुमारचरित में

कस्तूरी मिश्रित चन्दन, कपूर युक्त पान भेंट किये जाने का प्रसंग मिलता है ।[294] देसीनाममाला में उल्लिखित है प्राय: दासियाँ ताम्बूल तैयार करती थी ।[295] राजा द्वारा राज सभा में ताम्बूल तथा कपूर दान अत्यधिक सम्मान जनक माना जाता था ।[296] कान्यकुब्ज नरेश जयचन्द्र द्वारा दिये गये पान के दो बीड़े से महाकवि श्री हर्ष सम्मानित हुये थे ।[297] पान का आग्रह सम्मान सूचक माना जाता था, इसकी पुष्टि गुप्तकालीन अभिलेख में उल्लिखित विवरण से होती है ।[298] अभिधान चिन्तामणि, वैजयन्ती कोश, में शूद्र व्यवसायिक वर्ग के अन्तर्गत मालाकार का उल्लेख किया गया है ।[299] वृहद्धर्म पुराण में वर्णित सूची में मालाकारों का उल्लेख उत्तम संस्कार युक्त श्रेणि में प्राप्त होता है ।[300]

उपरोक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट होता है कि पान का व्यवसाय समाज में अत्यधिक प्रचलित था । जैसा कि साक्ष्यों से स्पष्ट है, पान का प्रयोग पूजा अर्चना में होने के कारण ताम्बूल व्यवसायियों का मंदिर से जुड़े होने के अधिक प्रमाण मिलते हैं ।

<u>सुराकार :-</u> अधीत कालीन अभिलेखीय साक्ष्यों में मद्य विक्रेता के लिये सुराकार,[301] कल्लपाल, कल्लवपाल, कलयपाल, कल्यापाल इत्यादि शब्द प्रयुक्त हुये हैं ।[302] अभिधानचिन्तामणि में सुराकारों को अनेक नामों से अभिहित किया गया है : यथा कल्मपाल, सुराजीवी, शौरिडक, भण्डहारक, वारिवास, पानवणिक्, ध्वज, ध्वजी, आसुतीवल इत्यादि ।[303] सियादोनी अभिलेख में कल्लपालों द्वारा भगवान विष्णु के सेवार्थ मद्यदान किये जाने का उल्लेख मिलता है ।[304] अलवर से प्राप्त एक अभिलेख से ज्ञात होता है, भगवान के सेवार्थ दो सुराही मद्य प्रदान किया जाता था ।[305]

कल्चुरि लक्ष्मणराज द्वितीय का करितलाई प्रस्तर अभिलेख (10वीं शता0) में कल्लपालों की श्रेणि का प्रसंग मिलता है ।[306]

आलोच्यकालीन ग्रन्थों से विदित होता है, समाज में अनेक प्रकार की मदिरायें प्रचलित थी, जिनमें गौड़ी, माध्वी, भैरव, आसव, मधु इत्यादि प्रसिद्ध थी ।[306अ] ये मदिरायें तंडुल, यव[307], गुड़, शहद[308] इत्यादि से बनायी जाती थी । कथासरित्सागर और राजतरंगिनी में उल्लिखित है, प्राय: व्यापारी मदिरापान के आदी होते थे ।[309] उपरोक्त साक्ष्यों से स्पष्ट होता है, समाज में मद्यपान का काफी प्रचलन था । यद्यपि प्राचीन शास्त्रकार मनु ने ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, तीनों वर्गों को सुरापान से वंचित रखा है ।[310] परन्तु पूर्वमध्य कालीन विवरणों में तीनों ही वर्णों द्वारा मदिरा सेवन करने का साक्ष्य मिलता है । हृवेनसांग ने लिखा है क्षत्रिय ईख या अंगूर की मदिरा पीते, वैश्य चुआई हुई तीव्र मदिरा, बौद्ध भिक्षु, ब्राह्मण केवल अंगूर या ईख का शरबत पीते थे ।[311] हर्ष - चरित के अनुसार राजश्री के विवाह के उत्सव में ढोल बजाने वाले ढोलिया चमार को मद्य वितरित की गई थी ।[312]

तैलिक :- तैल व्यवसाय से सम्बंधित होने के कारण इन्हें तैलिक की संज्ञा दी गई है ।[313] अधीत कालीन ग्रन्थों में इन्हें धूसर, चाक्रिक, तैली के नाम से अभिहित किया गया है ।[314] पूर्व मध्य कालीन अभिलेखीय साक्ष्यों में तैलिक समुदाय के सम्बंध में पर्याप्त प्रमाण प्राप्त होते हैं । ग्वालियर अभिलेख में मंदिर में दीप हेतु सर्वेश्वरपुर में निवास करने वाले तौलिक महत्तक मोचाकसुतसर्त्व, माधवसुतज्याशक्ति शिवधरिसुतसाद्गुल, तथा सँगाकसुत गमोक तथा श्री वत्सस्वामिपुर निवासी तैलिक

महतक सिंधाक, खोहडाकर तथा चच्चिकाहट्टिका तथा निवादित्यहट्टिका निवासी अज्जर, गोग्गाक, जम्वेक, जम्बहरि इत्यादि और सम्पूर्ण तेल घाणक श्रेणी के दूसरे सदस्यों द्वारा प्रत्येक तैल घाणक से एक पालिका तैल दिये जाने का प्रसंग है ।[315] सोमनाथ मंदिर अभिलेख में श्री सोमनाथ के दीप तैल निमित्त ठक्कुरदेव स्वामि तैलिक राज थाइयाक द्वारा तैल दिये जाने का उद्धरण है ।[316] इसी लेख में तैलिक थाइयाक द्वारा 'वासनिक' दिये जाने का भी उल्लेख है ।[317] जयचन्द्र कालीन बैजनाथ प्रस्तर अभिलेख (1204 ईसवी) में वणिक् पुत्र मन्युक तथा अहुक द्वारा कारे ग्राम में तैलोत्पीडनयन्त्र (तैल निकालने का यन्त्र) भगवान वैद्यनाथ के सेवार्थ दिये जाने का प्रसंग प्राप्त है ।[318] मदनपाल द्वितीय कालीन प्रस्तर अभिलेख (946 ईसवी) में व्यापारिक संस्था द्वारा भगवान त्रिलोक्य मोहनदेव के निमित्त प्रत्येक घाणक से स्थायी तौर पर एक पालिका तैल दिये जाने का विवरण है ।[319] 1132 के ऐ अभिलेख से ज्ञात होता है कि दो राजकुमारों और उनकी माता ने प्रत्येक घाणक (कोल्हू) से राजपरिवार को होने वाली आय में से दो - दो पल्लिका नादुल डागिका (नादलाइ) में तथा उसके बाहर रहने वाले साधुओं को दे देने का आदेश जारी किया ।[320]

उपरोक्त अभिलेखीय प्रमाणों से ऐसा प्रतीत होता है कि तैलिक समुदाय धार्मिक अनुदानों से जुड़े थे तथा इस समुदाय द्वारा धार्मिक प्रयोजन हेतु दान देने की प्रक्रिया से इनकी आर्थिक सम्पन्नता का अनुमान लगाया जा सकता है ।

नापित :- पूर्वमध्य कालीन कोशकारों ने नापित को चण्डिल:, क्षुरी, क्षुरिमुण्डी, क्षुरमर्दी, दिवाकीर्ति, मुण्डक, अन्तावसायी इत्यादि संज्ञायें प्रदान की है ।[321] इन्हें कारू वर्ग के अर्न्तगत अनुग्रहीत किया है ।[322] नापितशाला को वपनी, शिल्पा, खरकुटी कहा गया है ।[323] अधीत कालीन अभिलेखीय एवं साहित्यिक साक्ष्यों में नापितों के संदर्भ में प्रमाण प्राप्त होते हैं । श्रीचन्द्र के पश्चिमबाग ताम्रपत्र अभिलेख (925 - 75 ईसवी) में नापित का प्रसंग मिलता है ।[324] अनंगभीम तृतीय के नगरी ताम्रपत्र लेख ।230-3। ईसवी) में विभिन्न व्यवसायिक समुदाय में नापित का भी उल्लेख मिलता है ।[325] विष्णुषेन के ताम्रपत्र अभिलेख (592 ईसवी) में लोहकार, रथकार, नापित तथा कुंभकार द्वारा वृष्टि किये जाने का प्रसंग है ।[326] रूद्राम्भा कालीन मल्कापुरम् प्रस्तर स्तम्भ अभिलेख में नापित को एक पुट्टिका भूमि दिये जाने का विवरण है ।[327]

सूत्रधार :- प्रस्तर उद्योग से सम्बधित समुदायों में सूत्रधारों का उल्लेख विशेष उल्लेखनीय है । डी0 सी0 सरकार ने सूत्रधारों का उल्लेख प्रस्तरकार, शिल्पी के रूप में किया है जिनका मुख्य कार्य प्रस्तर अभिलेख उत्कीर्ण करना था ।[328] कल्चुरि अभिलेखों में प्रयुक्त सूत्रधार शब्द शिल्पी के अर्थ में प्राप्त होता है ।[329] सूत्रधारों की कार्य विधि के विषय में ज्ञात होता है। लेख उत्कीर्ण करने के पूर्व ये प्रस्तर को तराशते तत्पश्चात लेखक के निरीक्षण में स्याही से अक्षरों को अंकित कर उत्कीर्ण करते थे ।[330] कभी-कभी ये स्वयं अक्षरों को लिखते और उत्कीर्ण करते थे । कोदीनारा अभिलेख से ज्ञात होता है; प्रहलाद गोविन्द का पुत्र सूत्रधार कलाद ने स्वयं लिखा और उत्कीर्ण किया था ।[331] कल्चुरि कालीन युवराज द्वितीय का

बिलहरी प्रस्तर अभिलेख में वर्णित है, करणिक धीर का पुत्र नाई ने स्तुति लिखी थी और सूत्रधार संगम के पुत्र ने प्रशस्ति उत्कीर्ण की थी।[332] जयसिंह के जबलपुर प्रस्तर अभिलेख में नामदेव नामक सूत्रधार द्वारा सुन्दर अक्षरों में प्रशस्ति उत्कीर्ण किये जाने का प्रसंग है।[333] नरसिंह के भेड़ाघाट प्रस्तर अभिलेख में सूत्रधार महीधर का उल्लेख मिलता है जिसने तारों की भांति सुन्दर अक्षरों में प्रशस्ति उत्कीर्ण की थी।[334] विजय सिम्भदेव कालीन रीवा अभिलेख में सूत्रधार अनन्त द्वारा प्रशस्ति उत्कीर्ण किये जाने का प्रसंग मिलता है।[335] गुहिल वंशीय बालादित्य कालीन चाटसु अभिलेख में रजुक पुत्र सूत्रधार भाइल द्वारा प्रशस्ति उत्कीर्ण किये जाने का विवरण प्राप्त है।[336] नरसिंह के अल्हाघाट अभिलेख में कई सूत्रधारों का नाम उल्लिखित है यथा कमलसीहा, कमलसिंह सोमे, कोकास, पाल्हण तथा उल्हण जिन्होंने प्रशस्ति उत्कीर्ण किया था।[337]

साक्ष्यों से ज्ञात होता है सूत्रधारों की प्रशस्ति उत्कीर्ण करने के अतिरिक्त मंदिर, मंडप इत्यादि के निर्माण में भी महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। जयचन्द्र कालीन बैजनाथ प्रस्तर अभिलेख के अनुसार सूत्रधार नायक ने देवालय का निर्माण किया था।[338] चालुक्यों के एक अभिलेख से ज्ञात होता है, श्री गुनद सूत्रधार ने रानी विक्रमादित्य द्वितीय का मंदिर निर्माण किया था।[339] ब्रह्मदेव के रायपुर प्रस्तर अभिलेख में नागदेव नामक सूत्रधार का पुनः उल्लेख है जिसने मंडप का निर्माण किया था।[340] तिलकमंजरी में प्रसंगित है मेघवाहन ने जीर्ण मन्दिरों के पुनः निर्माण के लिये सूत्रधारों की नियुक्ति की थी।[341] भोजदेव द्वारा निर्मित वाग्देवी मूर्ति अभिलेख में चार फीट ऊँची काले संगमरमर की सरस्वती प्रतिमा का उल्लेख

है ।[342] जिसे परमार कालीन मूर्तियों का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण कहा गया है ।[343] उपरोक्त साक्ष्यों से स्पष्ट है कि सूत्रधार केवल लेख उत्कीर्ण करने की कला में ही निपुण नहीं होते थे अपितु मंदिर मण्डप, प्रस्तर मूर्तियों के निर्माण में पारंगत होते थे ।

रूपकार :- पूर्वमध्य कालीन अभिलेखों में प्रसंगित रूपकार, रूपकारक, रूपकारिन् शब्द मूर्तिकार के रूप में प्रयुक्त हुआ है ।[344] चन्देलों के एक अभिलेख से ज्ञात होता है । रूपकार लाहद ने नीलकंठ की प्रतिमा का निर्माण किया था ।[345] कल्चुरि वंशीय जयसिम्भा कालीन जबलपुर प्रशस्ति में पालहन का पुत्र ताल्हन रूपकार का प्रसंग प्राप्त होता है ।[346] बंगाल के सूर्य प्रतिमा के विषय में नगरी अभिलेख में वर्णित है, प्रस्तर पर उत्कीर्ण यह प्रतिमा बुद्धिमान उन्व मूर्तिकार इन्द्र नील मणि के शिष्य अमृत द्वारा निर्माण की गई थी ।[347] रत्नपुर प्रस्तर अभिलेख के अनुसार रूपकार दतियन अपनी वैज्ञानिक ज्ञान और दूसरी योग्यताओं के लिए प्रशंसनीय था ।[348] पृथ्वी देव द्वितीय के रत्नपुर प्रस्तर अभिलेख में रूपकार देवगण द्वारा भगवान शिव बिल्वपाणि का मंदिर निर्माण किये जाने का विवरण प्राप्त है । प्रस्तुत लेख में इसे शिरोमणि कहा गया है ।[349] चालुक्यों के एक अन्य लेख में एक ऐसे मूर्तिकार शिल्पी का प्रसंग मिलता है जिसने सम्पूर्ण दक्षिणीय देशों को अपने मंदिरों से सजा दिया था । प्रस्तुत लेख में इसे सर्वसिद्ध आचार्य की उपाधि से विभूषित किया गया है ।[350] जयदेव द्वितीय के मल्लार प्रस्तर अभिलेख में शिल्प निर्माण कला में निपुण रूपकार सापुल का प्रसंग मिलता है जिसने सावधानी पूर्वक यह प्रशस्ति उत्कीर्ण की थी ।[351]

कतिपय लेखों मे प्रस्तर व्यवसायियों के लिये शिलाकूट, शिलकूट, शिल करमानन इत्यादि शब्द प्रयुक्त हुये हैं।[352] सियादोनी अभिलेख में सिलकूटों का प्रसंग मिलता है। प्रस्तर लेख में एक विग्रहपाल धर्म का 1/3 भाग भुगतान के रूप में ग्रहण किये जाने का उल्लेख है।[353]

चूर्णकार :- समाज में चूने आदि से पुताई करने वाले व्यक्तियों का समुदाय भी विद्यमान था। जिन्हें चूर्णकार[354] के अतिरिक्त पलगण्ड:, लेत्यकृत[355] इत्यादि नामों से अभिहित किया है। गुजरात से प्राप्त अर्जुन कालीन वीरावल प्रस्तर अभिलेख में चूर्णकार का प्रसंग मिलता है।[356] कमन अभिलेख में वीथी से प्राप्त किराये से मन्दिरों की पुताई और रोशनी का प्रबन्ध किये जाने का उल्लेख है।[357] उक्त कथन से चूर्णकार व्यवसाय की पुष्टि होती है। हर्षचरित में प्रसंग प्राप्त होता है कि राजश्री के विवाह के अवसर पर पुताई करने वाले कारीगर हाथ में कूची लिये, कंधों पर चूने की हाडी लटकाये सीढ़ी पर चढ़ कर राजमहल पौरी पर सफेदी कर रहे थे।[358]

शिल्पी :- अधीत कालीन सामाजिक धरातल पर शिल्पियों का भी एक समुदाय दृष्टिगत होता है। शिल्प शब्द के व्यापक अर्थानुसार यह विभिन्न प्रकार के शिल्पकला का सूचक है। यथा वास्तुकला, मूर्तिकला, काष्ठकला, स्वर्णकला, लोहकला और चित्रकला इत्यादि।[360] इस प्रकार शिल्प शब्द के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के कारीगर तथा शिल्पी सम्मिलित हैं। पूर्वमध्य कालीन अनुदान पत्रों में शिल्पी द्वारा राजाज्ञा उत्कीर्ण किये जाने का अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं। यादव कृष्ण के मेथी अभिलेख में शिल्पी हेमदेव द्वारा लेख उत्कीर्ण किये जाने का प्रसंग है।

प्रस्तुत लेख में अन्य व्यक्ति कश्यप वंशीय सिद्धसारस्वत का उल्लेख है जिसने लेख उत्कीर्ण करने के लिये प्रस्तर खण्ड को काटा था ।[361] छठी शताब्दी के एक दूसरे लेख में कश्यप वंशीय शिल्पी का प्रसंग है जिसने शिल्प कला विद्यालय खोला था ।[362] जमनाथ खोह का ताम्रपत्र अभिलेख में शिल्प प्रमुख शर्वदत्त का प्रसंग मिलता है ।[363] कुमारदेवी सारनाथ प्रस्तर अभिलेख में आठ भाषाओं का ज्ञाता वामन नामक शिल्पी द्वारा प्रशस्ति उत्कीर्ण किये जाने का विवरण प्राप्त होता है ।[364] महिपाल का बानगढ़ ताम्रपत्र अभिलेख में श्री महीधर शिल्पी द्वारा प्रस्तुत लेख उत्कीर्ण किये जाने का साक्ष्य प्राप्त है ।[365] मदनपाल देव कालीन मनहली ताम्रपत्र अभिलेख में शिल्पी तथागतसरो द्वारा ताम्रपत्र उत्कीर्ण किये जाने का प्रसंग उपलब्ध होता है ।[366] विजयसेन के देवपाड़ा अभिलेख से ज्ञात होता है, राणकशूलपाणि ने प्रशस्ति उत्कीर्ण की थी। प्रस्तुत लेख में उसे वारेन्द्र शिल्प - गोष्ठी चूड़ामणि कहा गया है ।[367]

उपरोक्त कथनों से स्पष्ट है कि राजकीय अनुज्ञा को उत्कीर्ण करने वाले स्वतन्त्र शिल्पियों का एक वर्ग समाज में विद्यमान था जिन्हें राजशिल्पिन् (राजाओं से प्रतिबद्ध शिल्पिन) की संज्ञा दे सकते हैं । इसमें सन्देह नहीं है शिल्पियों का यह समुदाय लौकिक दृष्टिकोण से अधिक प्रतिष्ठित रहा होगा ।

अप्रतिबद्ध अथवा स्वतन्त्र शिल्पियों के समुदाय की भाँति प्रतिबद्ध, आश्रित शिल्पियों का भी एक समुदाय दृष्टिगत होता है । उक्त समुदाय की पुष्टि पूर्वमध्य कालीन दान पत्रों में प्रसंगित उन उद्धरणों से होती है जिसके अन्तर्गत भूमिखण्डों तथा ग्राम के साथ ग्रामीण शिल्पियों को भी ग्रहीता के सेवार्थ सौंप दिय

जाता था । उड़ीसा से प्राप्त अनंगभीम तृतीय के नगरी ताम्रपत्र में सम्राट द्वारा जयनाग ग्राम में दशवाटी वास्तुभूमि तथा पूरण ग्राम में 20 वाटी भूमि दान दिये जाने का प्रसंग है । प्रस्तुत लेख में वहाँ के निवासियों में कुंभकार, नापित, शिल्पियों तथा रजक का उल्लेख है ।[368] मैत्रक वंशीय विष्णु सेन का ताम्रपत्र अभिलेख से ज्ञात होता है, लोहकार, रथकार, नापित, कुम्भकार को अधीनस्थ विष्टि कार्य करने का निर्देश दिया गया था ।[369] इस प्रकार अस्वतन्त्र अथवा प्रतिबद्ध शिल्पियों का यह समुदाय अधिकांशतय: ग्राम में रहता था । इस समुदाय के सदस्य किसी न किसी ग्राम से प्रतिबद्ध होते थे । इन्हें ग्राम शिल्पिन् की संज्ञा दी जा सकती है ।[370] लगभग प्रत्येक ग्राम पाँच शिल्पकार यथा लोहकार, कुम्भ - कार, काष्ठकार , नापित एवं रजक की गणना की गई जिन्हें कारूक वर्ग में अनु - ग्रहीत किया गया है ।[371] अभिधान चिन्तामणि में उल्लिखित ग्रामतक्ष या कौट - तक्ष का प्रसंग उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है ।[372]

उपरोक्त विवरणों से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि ग्राम शिल्पियों की लौकिक सामाजिक-आर्थिक स्थिति अधिक अच्छी नहीं रही होगी ।

<u>चर्मकार</u> :- चर्म व्यवसाय में संलग्न समुदाय को पादुकाकृत चर्मकृत की संज्ञा दी गई है ।[373] अभिलेखीय साक्ष्यों में चर्मकार[374] पदुकार[375] शब्द प्रयुक्त हुआ है । श्रीचन्द्र के पश्चिम बाग ताम्रपत्र अभिलेख में उल्लिखित विभिन्न व्यवसायिक वर्गों में चर्मकारों का प्रसंग प्राप्त होता है । प्रस्तुत लेख में चर्मकारों को 1/2 पातक भूमि खण्ड दिये जाने का भी विवरण है ।[376] राजतंरगिणी में चर्मउपानहों का प्रसंग मिलता है ।[377] क्षमेन्द्र ने मयूर आकार युक्त विशेष प्रकार के उपानहो का

उल्लेख किया है ।[378] उपानहो के अतिरिक्त चर्मकार चमड़े की अन्य विविध वस्तुओं का भी निर्माण करते थे ; यथा चर्मदण्ड[379] (चाबुक), सेकपात्रम्[380] (चमड़े का थैला), कुतू:[381] (घी या तेल रखने के चमड़े के पात्र), करकपत्रिका[382] (कमण्डल), धवित्र (मृगचर्म के पंखे)[383] इत्यादि । यशस्तिलक में चर्मकारों के साथ उनके एक उपकरण द्रति का उल्लेख मिलता है ।[384] द्रति का अर्थ मशक अर्थात पानी रखने के थैले से लगाया जाता था ।[385]

अभिधान चिन्तामणि, देसीनाममाला, वैजयन्ती इत्यादि ग्रन्थों में चर्मकारों की गणना शूद्र वर्णान्तर्गत व्यावसायिक वर्गों में की गई है ।[386] समराइच्च-कहा में चर्मकारों को शूद्रों की एक शाखा कहा गया है ।[387] राजतरंगिणी में प्रसंगित है कि चर्मकार ग्राम के बाहर निवास करते थे ।[388] इसी प्रसंग में अलबीरूनी ने मत प्रतिपादित किया है, केवल चण्डाल ही नहीं अपितु चर्मकार भी अन्त्यज की कोटि में थे और ग्राम के बाहर निवास करते थे ।[389] व्यास स्मृति में चर्मकारों को अन्त्यजों में रखा गया है ।[390] अत्रि तथा यम ने भी इन्हें अस्पृश्य जातियों में सूचीबद्ध किया है ।[391] जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में चर्मकारों को अस्पृश्य जाति के अन्तर्गत माना गया है ।[392]

उपरोक्त साक्ष्यों के अनुशीलन से स्पष्ट होता है कि पूर्वमध्य कालीन सामाजिक धरातल पर चर्मकारों की स्थिति निम्नतम् थी ; तथा मध्यकालीन शास्त्रकारों ने इन्हें शूद्र जाति के अन्तर्गत अनुग्रहीत कर अंत्यज, अस्पृश्य माना है । चर्मकारों की सामाजिक स्थिति के संदर्भ में विवेकानन्द का मत प्रतिपादित किया है, इसमें सन्देह नहीं है कि पूर्वमध्य कालीन सामाजिक धरातल पर अस्पृश्यता की प्रवृत्ति

में वृद्धि हो रही थी और इस वृद्धि के फलस्वरूप अस्पृश्य जाति के अन्तर्गत कई नई जातियों का समावेश हुआ जिनमें चर्मकार एक थे ।[393]

रसोइया :- पाकशास्त्र में कुशल रसोइयों को सूपकार की संज्ञा दी गई है ।[394] रसोइये को आरालिक तथा पौरोगव भी कहा गया है ।[395] वर्णसमुच्चय में सूपकार का पाठान्तर सूयकार और पृथ्वीराजचरित में रसोईया है ।[396] इसके अतिरिक्त अभिधान चिन्तामणि में इन्हें पाचक, सूद, औदनिक, गुणा, भक्तकार, सूपकार, सूप, आरालिक, वल्लव इत्यादि विविध नामों से अभिहित किया गया है ।[397] सोमेश्वर ने रसोइया को पाकच, सूद कहकर इनके लक्षणों का उल्लेख किया । वह पकवान का परीक्षक अन्नपान विशेषज्ञ, शाक तथा मांस पकाने की कला में पारंगत, पान व्यंजन के तत्व में निपुण तथा साथ ही साथ कटे हुए नाखून एवं बालों वाला होना चाहिए ।[398] मलकापुरम् प्रस्तर अभिलेख में दो ब्राह्मण सूपकारों का विवरण प्राप्त होता है ।[399] सोमवर्मन देव के चम्बा प्रान्त प्रशस्ति में राजकीय सूपकार सुराम भट्ट का प्रसंग प्राप्त होता है ।[400]

सूपकार के साथ सूपकार पति का प्रसंग मिलता है जिसे मुख्य रसोइया की संज्ञा दी गई है ।[401] मुख्य रसोइया के अर्थ में सूपकारपति का उल्लेख तलेश्वर के ताम्रपत्र अभिलेख में मिलता है ।[402] लेख में सूदाध्यक्ष का भी प्रसंग प्राप्त होता है जो रसोइया का प्रमुख अधिकारी हुआ करता था ।[403]

शिकारी :- समाज में शिकारियों का भी एक समुदाय था जो विभिन्न प्रकार के जानवर , पशु,पक्षी इत्यादि का शिकार कर उन्हें बाजारों में बेचते थे । अभिधान

चिन्तामणि शिकारी को व्याध , मृगवधाजीवी, लुब्धक, मृगयु: इत्यादि नामों से अभिहित किया है ।[404] कहीं-कहीं आखेट करने वाले को मृगया बिहारी कहा गया है । शाकुन्तलम् में दुष्यन्त को मृगया बिहारी की संज्ञा दी गई है ।[405] शिकारियों में एक वर्ग जाल बिछाने वाले का भी प्राप्त होता है जिन्हें जालिक लुब्धक कहा गया है ।[406] इसके अतिरिक्त शब्दानुशासन में शिकारियों के कई वर्गों का उल्लेख किया गया है यथा पाक्षिक[407], (पक्षी पकड़ने वाले), मायूरिक[408] (मयूर पकड़ने वाले), तैत्तिरिक[409] (तीतर पकड़ने वाले) इत्यादि ।

हर्षचरित में उल्लिखित है कि जंगल में तरह तरह के शिकारी थे । तथा खूँखार जानवरों का शिकार करने वाले व्याध जंगल में विचर रहे थे। उनके हाथ में पशुओं की ताँत की डोरियाँ, जाल और फन्दे थे तथा वन हिंसक जानवरों के शिकार में चुकने के लिये टट्टियाँ (व्यवधान) खूब मोटी लगाई गई थी ।[410] दूसरी तरह के बहेलिये चिड़िया फँसाने वाले शाकुनिक थे ।[411]

स्पष्ट है कि समाज में काफी संख्या में लोग जानवरों का शिकार कर अपना जीविकोपार्जन करते थे ।

<u>मत्स्यकार</u> :- पूर्वमध्य कालीन समाज में कुछ ऐसे व्यक्तियों का समुदाय था जो नदी, तालाब आदि से मछली पकड़ते और विक्रय करते थे । इस समुदाय का प्रधान व्यवसाय मत्स्योबन्ध था । कालिदास ने ऐसे समुदाय को धीवर, जलोपजीवी की संज्ञा दी है ।[412] इसके अतिरिक्त अभिधान चिन्तामणि, हलायुधकोष में धीवर, दाश: कैवर्त[413] तथा जालिक[414] शब्द प्रयुक्त हुये हैं । मत्स्यकार द्वारा प्रयोग में लाये जाने वाले उपकरणों एवं वस्तुओं का उल्लेख भी प्राप्त होता है यथा मत्स्य -

वेधनम्[414अ] (वंशी) जिससे मछली फँसाते हैं, आनाय[415] (जाल), कुवेणी, मत्स्य - बन्धनी[416] (मछली पकड़ कर रखने वाली टोकरी) अभिलेखीय प्रमाणों में गोविन्द चन्द्र का कमौली ताम्रपत्र अभिलेख (1125 ईसवी) में गोविन्द चन्द्र द्वारा जल, स्थल, लोह, लवणकार तथा मत्स्यकारों सहित ग्राम दान दिये जाने का प्रसंग है।[417] उड़ीसा से प्राप्त अनंगभीम तृतीय के नगरी ताम्रपत्र अभिलेख में उल्लिखित विभिन्न व्यवसायिक वर्ग की सूची में राजु-वासू-पद्य नामक कैवर्त्त का प्रसंग मिलता है।[418] गोविन्द केशवदेव के भाटेरा अभिलेख में (1049 ईसवी) में वर्णित है कि गोविन्द केशवदेव ने भगवान शिव के सेवार्थ भूमि और विभिन्न गाँवों में 296 गृह दान दिये थे। इस दान में व्यक्तिगतरूप से व्यवसाय में निहित संलग्न लोगों के गृहों में मत्स्यकार का भी प्रसंग मिलता है।[419]

__नट__ :- नट शब्द का तात्पर्य नृत्यक से है।[420] जो अपने अद्भुत कला से लोगों को आकर्षित करते थे। विवेच्य कालीन कोशकारों ने इन्हें शैलूष, भरत, सर्वकेशी, भरतपुत्रक, धर्मीपुत्र, रंगजीव, जायाजीव, कृशाश्वी, शैलाली इत्यादि संज्ञायें दी हैं।[421] हर्षचरित में बाण ने नटों के संदर्भ में लिखा है कि आर्यभटी शैली से नाचते हुये नट चुने बालों को इधर - उधर फटकारते हुये नृत्य का आरम्भ करते थे।[422] तिलकमंजरी में मदिरावती को रागरूपी नट की रंगशाला कहा गया है।[423] श्रीचन्द्र के पश्चिमबाग ताम्रपत्र में नट को द्विपाटक भूमि दान दिये जाने का उल्लेख मिलता है।[424] कभी-कभी अधिकारियों की सूची में मुख्य नृत्यक के रूप में इनका उल्लेख मिलता है।[425]

नटों की लौकिक सामाजिक स्थिति के सन्दर्भ में मध्यकालीन शास्त्रकारों ने चर्मकार, रजकों की भाँति नटों को भी अस्पृश्य जाति की सूची में ग्रहीत किया है।[426] वृहस्पति ने नटों के भोजन को ब्राह्मणों के लिये निषिद्ध कहा है।[427] ह्वेनसांग ने भी इन्हें अस्पृश्य की श्रेणी में स्वीकार किया है।[428] आर्थिक दृष्टि से पिछड़े एवं उच्च सामाजिक अधिकारों से रहित नटों की गणना पूर्वमध्य काल में अस्पृश्य वर्ग के अन्तर्गत दिखायी देती है। जैसा कि विवेकानन्द झा ने भी स्वीकार किया है।[429]

<u>जादूगर</u> :- विभिन्न प्रकार के करतब दिखाने में प्रवीण जादूगरों का उल्लेख अधीत कालीन साक्ष्यों में प्राप्त होता है, जिन्हें इन्द्रजालिक[430], प्रतिहारिक, मायाकार इत्यादि नामों से जाना जाता था।[431] दशकुमार चरित में इन्द्रजाल विद्या में प्रवीण विद्येश्वर नाम के ब्राह्मण का प्रसंग मिलता है।[432] बाण के मित्रों में कई इन्द्रजालिक थे।[433] रत्नावली के चौथे सर्ग का नाम ही ऐन्द्रजालिक रखा गया है।[434] उज्जयनि का समर सिद्ध नामक व्यक्ति विख्यात इन्द्रजालिक था।[435]

इस प्रकार ये इन्द्रजालिक राजा तथा प्रजा के सामने प्रायः पृथ्वी पर चन्द्रमा, आकाश पर पर्वत, जल में अग्नि आदि विभिन्न कला दिखाकर लोगों का मनोरंजन करते थे।[436] ह्वेनसांग ने इन्द्रजाल का वर्णन करते हुये लिखा है कि थानेश्वर के लोग इन्द्रजाल विद्या में प्रवीण थे।[437]

<u>गणिका</u> :- पूर्वमध्य कालीन साक्ष्यों में गणिकाओं के विषय में अनेक साक्ष्य प्राप्त होते हैं। साधारण स्त्री वेश्या, परांगना, भुजिष्या, लज्जिका, रूपजीवी इत्यादि अनेक नाम इनके व्यवहृत हुए हैं।[438] समाज का ऐसा वर्ग जो इनके सान्निध्य

में जाकर इनके व्यवसाय को प्रोत्साहित करता था ।[439] गणिका के सन्दर्भ में अनेक अभिलेखीय प्रमाण भी प्राप्त होते हैं । बसन्तगढ़ अभिलेख में उल्लिखित वटपुर नगर को पुराणपाठी ब्राह्मण, गणिकाओं और सैनिक से सुशोभित बताया गया ।[440] महाराज जोजलदेव के साढ्डी और नाडोल अभिलेखों में देवयात्रा से सम्बधित आदेशा - नुसार किसी देवता विशेष की यात्रा के दिन अन्य देवताओं की प्रमदाओं (गणिकाओं) को भी सुन्दर वस्त्रों और अलंकारों से सुसज्जित होकर उपस्थित होने का विवरण है ।[441] हर्षनाथ अभिलेख से ज्ञात होता है कि सामंत अपने स्वामी को सुन्दर गणिकायें भेट कर प्रसन्न करते थे ।[442] साहित्यिक साक्ष्यों से भी इनकी पुष्टि होती है । मृच्छकटिक की बसन्तसेना एक उच्च चरित्रा गुण सम्पन्न गणिका थी ।[443] हर्षचरित में हर्ष के जन्म उत्सव के अवसर पर उपस्थित मदमस्त कुटहारिता या कुम्भ - दासी नामक वेश्याओं का प्रसंग मिलता है ।[444] इस प्रकार गणिकाओं को समाज का अभिन्न अंग माना जाता था । धनी वर्ग, राजसभा में इनको सम्मान प्राप्त था ।[445] व्यक्तिगत और सार्वजनिक महोत्सवों में उनका स्थान प्रथम रहता था । कला और कुशलत्व की शिक्षिकायें मानी जाती थी । वात्स्यायन के कामसूत्र में उल्लिखित है कि वेश्यायें सभी प्रकार की कलायें सीखतीं थीं तथा राजाओं की तरफ से उन्हें सम्मान मिलता था ।[446] बाणभट्ट ने भी वेश्याओं का उल्लेख किया है जो हर्षवर्धन के राजदरबार में रहा करती थी ।[447] इसके अतिरिक्त प्रबन्ध चिन्तामणि,[448] राजतरंगिनी जैसे ग्रन्थों में इनका उल्लेख मिलता है ।[449]

कुमारपाल चरितसंग्रह में उल्लिखित है कि वेश्या व्यसन बहुत निंदनीय नहीं समझा जाता था । समाज के शिष्ट कहलाने वाले वर्ग के साथ वेश्याओं का

सम्बन्ध रहता था ।[450] इनका स्थान समाज में एक प्रकार से उच्च समझा जाता था । राजदरबार में हमेशा उनकी उपस्थिति रहती थी । स्वयं कुमारपाल का पितृकुल भी ऐसे ही एक वेश्यावर्ग से अवतीर्ण कलानिधि राजरानी की संतति थी ।[451]

देवदासियाँ : गणिकाओं के अतिरिक्त देवदासियों का भी एक वर्ग उत्पन्न हो गया है । जो स्त्रियाँ देवमंदिर के निमित्त नियुक्त की जाती थीं वे देवदासी कहलाती थी । इनका मुख्य कार्य देवमंदिर में नृत्यगान और संगीत का चित्ताकर्षक कार्यक्रम प्रस्तुत करना था । उज्जयनि के महाकाल मंदिर में अनेक देवदासियाँ नृत्यगान में व्यस्त रहा करती थी ।[452] पद्मपुराण में यह निर्देश दिया गया है कि मंदिर सेवा के लिए अनेक सुन्दरीयों को क्रय कर के प्रदान करना चाहिये ।[453] अधीत कालीन अभिलेखीय प्रमाणों से भी इनकी पुष्टि होती है । भवदेव का भुवनेश्वर प्रस्तर अभि - लेख (1090 - 1110 ई0) से ज्ञात होता है भवदेव द्वारा निर्माण कराये गये नारायण मंदिर में भगवान नारायण की सेवा में 100 दासियाँ नियुक्त की गई थी ।[454] नाणा में प्राप्त ताम्रपत्र में विलासिनी और मेहरी नामक देवदासियों का उल्लेख हुआ है ।[455] करन के रत्नगिरि ताम्रपत्र अभिलेख में बौद्ध मंदिर से जुड़ी महारी नाम की देवदासी का प्रसंग मिलता है ।[456]

संगीत कला से सम्बन्धित व्यवसायिक समुदायों का भी उल्लेख साक्ष्यों में प्राप्त होता है । इनमें मार्दंगिक[457] (मृदंगवादक), वैणिक[458] (वीणावादक), वैणविक[459] (वंशीवादक) इत्यादि है ।

1- अभिधानचिन्तामणि, तृतीय काण्ड, श्लोक 577, शब्दानुशासन, 7·1·55·

हलायुध कोश, 2·590

2- जम्बूद्वीप प्रशस्ति, पृ0 193·

3- इण्डि0 एपि0 ग्लोस0, पृ0 159; यशस्तिलक, पृ0 126, कौलिक नल काकारे ते जंघे सांप्रतं जाते ।

4- से0 ई0, 2, पृ0 191·

5- एपि0 इण्डि0, जि0 6, पृ0 163·

6- अभिधानचिन्तामणि, तृतीय काण्ड, पृ0 227·

7- मेधातिथि, 2, 98, 8, 321, 4·326·

8- हर्षचरित का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 76·

9- तिलकमंजरी का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 157·

10- वार्टस, 1, 148, 2·151, 267, 340

11- का0 ई0 इं0, भाग 4, क्रमांक, 90, क्रमांक, 42, श्लोक, 12, क्रमांक, 107, श्लोक 12·

12- वही, क्रमांक 42, श्लोक 23, क्रमांक, 42, श्लोक 21·

13- वही, क्रमांक, 58 श्लोक 8·

14- से0 ई0, 2, पृ0 319·

15- सोसो इकोनामिक हिस्ट्री आफ नार्दन इण्डिया, पृ0 194·

16- एपि0 इण्डि0, जि0 1, पृ0 279·

17- रघुवंश, 17/162

18- हर्षचरित का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 74·

19- इलियट एण्ड डाउसन, 1, पृ0 14·

20- अभिधानचिन्तामणि, तृतीय काण्ड, वैजयन्ती, पृ0 136-47; तलनार्थ देखिये, सोसायटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इण्डिया, पृ0 39·

21- वृहद्धर्म पुराण, 3, 13, हजारा स्टडी इन दि उपपुराणास, 2, पृ0 437·

22- साचाओ, जि0 1, पृ0 101

23- याज्ञवल्क्य, 2, 30·

24- स्मृतिचन्द्रिका, 1 , पृ0 223·

25- त्रिषष्टिशलाका पुरूषचरित, 1, 258, 3, 316·

26- जम्बूद्वीपज्ञप्ति, 43, पृ0 193·

27- सी0 आई0 आई0, 3, पृ0 79·

28- एपि0 इण्डि0, जि0 6, पृ0 163·

29- शब्दानुशासन, 7·3·181·

30- राजतरंगिणी, 5, 162·

31- वही, 7, 122·

32- अभिधानचिन्तामणि, षष्ठम काण्ड, श्लो0 123

33- उपमितिभवप्रपंचकथा, पृ0 33,56

34- समयामातृका, 8·124

35- नैषधीयचरित, 12, 49; याज्ञवल्क्य स्मृति, 2·289-90 टीका

36- सेo ई0, 2, पृ0 375·

37- शब्दानुशासन, 5·3·135

38- विज्ञानेश्वर, याज्ञवल्क्य स्मृति, व्यवहार अध्याय, 2, 48.

39- हर्षचरित का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 74.

40- कुमारसंभव, 5.30.

41- विक्रमोर्वशीय, पृ0 68.

42- रघुवंश 15/77

43- ऋतुसंहार 6.4

44- विक्रमोर्वशीय 6.17

45- तिलकमंजरी का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 162.

46- मानसोल्लास, 2, पृ0 89.

47- शुक्रनीतिसार, 4, 3, 85, देसीनाममाला, 1, 98.

48- इण्डि0 एपि0 ग्लो0, पृ0 276.

49- अभिधानचिन्तामणि, षष्टम काण्ड, पृ0 335.

50- जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, 43, पृ0 193; तुलनार्थ इकोनामिक लाइफ इन नार्दन इण्डिया, पृ0 88-89

51- वही,

52- हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 75.

53- हर्षचरित, पृ0 31.

54- हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 139.

55- दशकुमारचरित, पृ098

75- एपि० इण्डि० , 3, पृ०

76- वैजयन्ती, पृ० 136-47; अभिधानचिन्तामणि, तृतीय काण्ड, तुलनार्थ देखिये सोसायटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इण्डिया, पृ० 39.

77- वृहद्धर्म पुराण,3, 13, हजारा आर० सी० स्टडीस इन दि उपपुराणास, भाग 2, भाग 2, पृ० 437 एफ एफ

78- आदि पुराण, 16.185; इण्डि० एपि० ग्लोस० पृ० 149

79- प्राचीन भारत का सामाजिक परिवर्तन, पृ० 85

80- सावाओ, 1, पृ० 101

81- प्राचीन भारत का सामाजिक परिवर्तन, पृ० 78

82- कथाकोश प्रकरण, पृ० 116.

83- "नाडिन्धम स्वर्णकार: कलादोमुष्टिश्च स:", अभिधानचिन्तामणि, तृतीयकाण्ड, श्लो० 7.572, पृ० 226, हलायुधकोश, 3.588

84- इण्डि० एपि० ग्लोस० पृ० 328; सें० इं० 2, पृ० 575, 190, 220

85- सें० इं० 2, पृ० 237-40; भण्डारकर लिस्ट पृ० 7

86- इण्डि० एपि० ग्लोस०, पृ० 130.

87- से० ई०, 2, पृ० 190

88- वही, 2, पृ० 575

89- एपि० इण्डि०, 27, पृ० 190-91

90- हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० 70-71.

91- तिलकमंजरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० 172

92- अभिधानचिन्तामणि, तृतीय काण्ड, पृ0 162, 164

93- सी0 बी0 आई, पृ0 252·

94- का0 ई0 ई0, भाग 4, क्रमांक, 104, श्लोक 2

95- वही, क्रमांक 66, पंक्ति 7, क्रमांक 704, श्लोक 11

96- वही, क्रमांक 114

97- वही, क्रमांक 23, श्लोक 20

98- वही, क्रमांक, 54, श्लोक 4, क्रमांक 77, श्लोक 11

99- वही, क्रमांक, 67, श्लोक 51, क्रमांक 93, श्लोक 9

100- वही, क्रमांक 93, श्लोक 11

101- वही, क्रमांक 54, श्लोक 11

102- इन्सक्रिप्सन्स आफ इम्पीरियल परमारस, पृ0 68

103- का0 ई0 ई0, भाग 4, क्रमांक 103

104- अभिधानचिन्तामणि, षष्टम काण्ड, श्लोक 9·100

105- नैषधीयचरित 16, 22, 57, 16, 92, 15, 29

106- एपि0 इण्डि0 भाग 11, पृ0 55

107- सी0 बी0 आई0, पृ0 256

108- अभिधानचिन्तामणि, तृतीय काण्ड, श्लोक 9·381

109- ज्येष्ठ वर्णिका रूप जातरूपस्य, तिलकमंजरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 227

110- दशकुमारचरित, पृ0 98

111- उत्कीर्ण्णान्यक्षराणि सौ वीर्ण्णकान्ते नेति, से0 ई0 2, पृ0 220

112- वही, पृ0 237 - 40

113- भण्डारकरलिस्ट, पृ0 7

114- इण्डि0 एपि0 ग्लोस0 पृ0 329 ; अभिधानचिन्तामणि, तृतीय काण्ड, श्लोक 1·387

115- अभिधानचिन्तामणि, तृतीय काण्ड; वैजयन्तीकोश, पृ0 136-47, तुलनार्थ सोसायटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इण्डिया, पृ0 39·

116- वृहद्धर्म पुराण, 3, 13; हजारा आर0 सी0, स्टडीज इन दि उपपुराणाज, भाग 2, पृ0 437 एफ एफ

117- जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, 43, पृ0 193

118- एपि0 इण्डि0, जि0 19, पृ0 56

119- वही, भाग 1, पृ0 233

120- इण्डि0 एपि0 ग्लोस0, पृ0 197; अभिधानचिन्तामणि तृतीय काण्ड 14·575, पृ0 226; हलायुधकोश 2·588

121- अभिधानचिन्तामणि, तृतीय काण्ड, पृ0 226·

122- वही, चतुर्थ काण्ड, पृ0 261-62,· वैजयन्ती, 44, 37, 41

123- मानसोल्लास, 2·403 के आगे

124- हर्षचरित, 5; कादम्बरी, 296, 313

125- हर्षचरित का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 161·

126- तिलकमंजरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 172

127- वही, पृ0 173

128- वही, पृ0 173, इन्द्रनीलवर्णाभिरणयो

129- वही, पृ0 175

130- वही, पृ0 176

131- वही, पृ0 177

132- वही, पृ0 178

133- दशकुमारचरित, पृ0 130

134- वही, पृ0 96

135- वही, पृ0 54

136- वही, पृ0 98

137- दशकुमारचरित, द्वितीय उच्छ्वास, पृ0 60

138- वही, प्रथम उच्छ्वास, पृ0 3

139- प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृ0 22

140- साउथ इण्डि0 इन्सक्रिप्सन्स, 2, सं0 1, 2, 29, 30, 32, 34, 38, 39, 42-44, 46, 52, 55, 56, 79-81, 84-91.

141- का0 ई0 इं0 भाग 4, क्रमांक 54, श्लोक 4, क्रमांक 77, श्लोक 11, क्रमांक 25 श्लोक 71

142- वही, क्रमांक 67, श्लो 51, क्रमांक 93, श्लोक 9

143- वही, क्रमांक 93

144- वही, क्रमांक 54, श्लोक 11

145- वही, क्रमांक, 103

146- एपि0 इण्डि0 जि0 21, पृ0 15

147- अभिधानचिन्तामणि, तृतीय काण्ड, श्लोक 1.574

148- इण्डि0 एपि0 ग्लोस0 पृ0 335

149- वार्टस, 1, 171, 178, बलि, 119

150- ग्यारहवी सदी का भारत पृ0 10

151- साउथ इण्डियन इन्सक्रिप्सन्स, पृ0 2.2.91

152- से0 ई0, 2, पृ0 575

153- एपि0 इण्डि0 4, पृ0 188

154- एपि0 इण्डि0 1, पृ0 333

155- एपि0 इण्डि0, 28, पृ0 189

156- इण्डि0 एपि0 ग्लोस0 पृ0 150, एपि0 इण्डि0 भाग 23, पृ0 47

157- वही, पृ0 142

158- वही, पृ0 281

159- से0 ई0 2, पृ0 742

160- एपि0 इण्डि0, 1, पृ0 165

161- से0 ई0 2, पृ0 191

162- एपि0 इण्डि0 14, न0 49, पंक्ति 29-51

163- एपि0 इण्डि0 जि0 14 , पृ0 188

164- वही, 1, पृ0 333

165- अभिधानचिन्तामणि, तृतीय काण्ड, श्लोक 584

166- इण्डि0 एपि0 ग्लोस0 पृ0 148; अभिधानचिन्तामणि, तृतीय काण्ड, श्लोक 584, शब्दानुशासन, 6·3·194

167- डायनेस्टिक हिस्ट्री आफ नार्दन इण्डिया, पृ0 726

168- इण्डि0 एपि0 ग्लोस0 पृ0 149, कारूक के अन्तर्गत पाँच शिल्पी यथा काष्ठकार, लोहार, कुम्भहार, नाई, रजक इत्यादि का गणना की गई है ।

169- का0 ई0 इ0 भाग 4, क्रमांक, 65, पृ0 343

170- सें0 ई0, 2, पृ0 93·

171- वही, पृ0 375

172- आर्क0 सर्वे0 आ0 इण्डि0, 1902-03 , पृ0 205 - 12

173- अभिधानचिन्तामणि, तृतीय काण्ड, पृ0 222, 229

174- वही, श्लोक, 579

175- वही, तृतीय काण्ड, पृ0 194-95

176- एपि0 इण्डि0, 1, पृ0 333

177- वही,

178- अभिधानचिन्तामणि, तृतीय काण्ड, श्लो 2·574
शाखिका स्याय काम्बविक

179- हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 170

180- सें0 ई0 2, पृ0 191

181- इपि0 इण्डि0, 28, पृ0 190-91

182- इपि0 इण्डि0 , 24, पृ0 331, लेख्योविशोधितं कोटाइईहि:शाखिकोभद्रेण दितं

183- एपि0 इण्डि0 23, पृ0 139, 140, 141,

संत्शाखिक लक्ष्मीधरेण सत्वा वासीनकौ प्रदत्ता ।

184- एपि0 ग्राफि0 ग्लो0, पृ0 83

185- एपि0 इण्डि0 जि0 14, पृ0 286

185अ- एपि0 इण्डि0 28, पृ0 3241

186- सें0 ई0 2, पृ0 157

187- तिलकमंजरी, पृ0 89, क्वचिद्वलयकाराइव कल्पित करिविषाणा:

तिलकमंजरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 208

188- नैषधचरित, 11, पृ0 108

189- मानसोल्लास, 1, पृ0 956

190- वही, 3, 16, 1943 - 44

191- वही, 18·16, 70-71

192- हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 66

193- शृंगारमंजरीकथा, पृ0 46·

194- अभिधानचिन्तामणि, तृतीय काण्ड, श्लोक 580; हलायुध कोष, 2·590,

195- यशस्तिलक, पृ0 290, निपाजीव इव स्वामिनिस्थर कृत निजासन: चक्र: भ्रमय: ।

196- से0 ई0 2, पृ0 191·

197- एपि0 इण्डि0 3, पृ0 297-302

198- एपि0 इण्डि0 28, पृ0 190-91

199- से0 ई0 2, पृ0 175

200- से0 ई0 2, पृ0 27, महाकुम्भार वद्रको दत: सर्वमण्ड जवर्जित:

201- से0 ई0 2, पृ0 25, ग्रामे कुम्भारपद्रके:

202- वही

203- नैषधचरित, 2, 32, 4, 7

204- तिलकमंजरी, पृ0 245

205- अभिधानचिन्तामणि, चतुर्थ काण्ड 15·65

206- हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 72
लेप्यकाराद्व कम्बक क्रियमाण भृणामयमनि कूर्ममकर नारिकेर कदली पूग वृक्षकम् ।।

207- वही, पृ0 72

208- हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 184

209- एंश्यंट इण्डिया, जि0 1, 1946, पृ0 44, 46, 47, 49, ; आर्कलाजिकल सर्वे आँव इण्डिया, 1911-12, पृ0 84

210- हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 85

211- तिलकमंजरी, पृ0 216, प्रजापति कुलालस्य

212- अभिधानचिन्तामणि तृतीय काण्ड, तुलनार्थ सोसाइटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इण्डिया, पृ0 39

213- कथाकोशप्रकरण, पृ0 116

214- एपि0 इण्डि0 24, पृ0 331

215- से0 ई0 2, पृ0 97

216- प्रबन्धचिन्तामणि, पृ0 80

217- जे0 बी0 आर0 एस0, जि0 50 , पृ0 55

218- वही, पृ0 59

219- वही, पृ0 56

220- एपि0 इण्डि0 ग्लोस0, पृ0 364

221- वही, पृ0 332

222- से0 ई0 2, पृ0 87, 991, 93, 97

223- अभिधानचिन्तामणि, तृतीय काण्ड, श्लोक 581

224- वही, श्लोक 581-82

225- सोशल एण्ड कल्चर हिस्ट्री आँव नार्दन इण्डिया, पृ0 145

226- युक्तिकल्पतरु, 120-121, पृ0 224

227- अभिधान चिन्तामणि, तृतीय काण्ड, श्लोक 1·541

228- वही, श्लोक 2•54।

229- एपि० इण्डि० 19, पृ० 30

230- जे० बी० आर० एस० जिल्द 1, पृ० 54

231- खुजराहो, स्कल्पचर एण्ड देयर सिगनीफीकेन्स, प्लेट 7

232- राजतरंगिणी 8, 2390, एपि० ग्लो० पृ० 150

233- इलियट एण्ड डाउसन, 1, पृ० 98

234- जे० बी० आर० एस०, जि० 50, पृ० 55•

235- अभिधानचिन्तामणि, चतुर्थ काण्ड, 10•78

236- अभिधानचिन्तमणि, तृतीय काण्ड, श्लोक 416-417

237- एपि० इण्डि० 11, पृ० 47

238- से० ई० 2, पृ० 375

239- एपि० इण्डि०, 11, पृ० 41

240- इण्डि० एपि० ग्लो०, पृ० 36।

241- इकोनामिक हिस्ट्री आँव नार्दन इण्डिया, पृ० 246

242- अभिधानचिन्तामणि, काण्ड चतुर्थ, श्लोक 83

243- वही, श्लोक 83

244- वही, श्लोक 84

245- वही, चतुर्थ, श्लोक 296

246- वही, तृतीय काण्ड, श्लोक 348

247- वही, चतुर्थ काण्ड, श्लोक 960

248- तिलकमंजरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० 208

249- वही

250- जे0 ऐ0 एस0 बी0, 13, पृ0 318 एफ एफ

251- से0 ई0 2, 2, पृ0 253

252- एपि0 इण्डि0 11, पृ0 29 एफ एफ

253- अभिधानचिन्तामणि, तृतीय काण्ड, श्लोक 565

254- हलायुधकोश, 2·591

255- जे0 बी0 आर0 एस0, जिल्द 51, पृ0 145

256- तिलकमंजरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 208

257- वही, पृ0 185

258- वही, पृ0 185

259- वही, पृ0 186

260- समराइच्चकहा 1, पृ0 43

261- से0 ई0, 2, पृ0 191

262- वही

263- इन्सक्रिप्शंस ऑफ इम्पीरियल परमारज, पृ0 79

264- एपि0 इण्डि0, 1, पृ0 160

265- वही

266- एपि0 इण्डि0 , 24, पृ0 331

267- एपि0 इण्डि0, 1, पृ0 277

268- से0 ई0 ,2, पृ0 250

269- इण्डि0 एपि0 ग्लोस0 पृ0 111; शब्दानुशासन, 7·26

270- जे0 बी0 ओ0 आर0 एस0, 2, पृ0 426-27; जे0बी0आर0एस0, 51, पृ0 57

271- एपि0 इण्डि0 1, पृ0 277

272- वही, 23, पृ0 138

273- वही, 19, पृ0 56

274- से0 ई0, 2, पृ0 218

275- से0 ई0, 1, पृ0 176, 191

276- अभिधानचिन्तामणि, तृतीय काण्ड, श्लोक 2·301

277- वही, श्लोक 305

278- वही, श्लोक 307

279- दशकुमारचरित, पृ0 121

280- हर्षचरित का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 70-71

281- कर्पूरमंजरी, दशावतारचरित, बुद्धविलास, पृ0 69

282- काव्यमीमांसा, 12, पृ0 70

283- एस0 बील , जि0 2, पृ0 135

284- इण्डि0 एपि0 ग्लोस0 पृ0 335

285- वही, पृ0 358

286- हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 187

287- से0 ई0 2, पृ0 191

288- इपि0 इण्डि0, 1, पृ0 166 एफ एफ

289- एपि0 इण्डि0, 1, पृ0 279

290- एपि0 इण्डि0, 28, पृ0 26

291- हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० 61

292- वही, पृ० 187

293- तिलकमंजरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० 170

294- दशकुमारचरित, पृ० 98

295- देशीनाममाला 4•42

296- तिलकमंजरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० 204

297- नैषधचरित, पृ० 518

298- फ्लीट, गुप्ता इंस्क्रिप्सन्स, न० 18

299- अभिधानचिन्तामणि, तृतीय काण्ड; वैजयन्तीकोश, 136-47

300- वृहद्धर्मपुराण, 3, 13, हजारा आर० सी० स्टडीज इन दि उपपुराणास , भाग 2, पृ० 437 एफ एफ

301- इण्डि० एपि० ग्लोस, पृ० 328

302- वही, पृ० 140

303- अभिधानचिन्तामणि, तृतीय काण्ड, श्लोक, 5•65

304- एपि० इण्डि० , 1, पृ० 167

305- भण्डारकरलिस्ट न० 1405, पृ० 192

306- का० ई० इं०, 4, पृ० 191

306अ- देशीनाममाला, 31, 41, 45, 8•41, 46, 2•2, 4•4, 5•24, 6•35, 41•50, कृत्यकल्पतरु नियत काल काण्ड, पृ० 393-95, गृहस्थरत्नाकर, पृ० 390-96

307- शब्दानुशासन, 5•1•156, 2•3•10

308- अभिधानचिन्तामणि, तृतीय काण्ड, श्लोक 568

309- कथासरितसागर, 54•160, राजतरंगिणी, 4, 18 6

310- प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ0 463

311- वार्टस, 1, पृ0 178 ; कृत्यकल्पतरू नियत काण्ड, पृ0 331

312- हर्षचरित का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 70-71

313- इण्डि0 एपि0 ग्लोस0 पृ0 332

314- अभिधानचिन्तामणि, तृतीय काण्ड, श्लोक, 581

315- एपि0 इण्डि0, 1, पृ0 159 एफ एफ

316- वही, जि0 23, पृ0 139

317- वही, पृ0 140-141

318- से0 ई0 2, पृ0 421

319- वही, 2, पृ0 250

320- एपि0 इण्डि0, 2, न0 4, पंक्ति 1-9

321- अभिधानचिन्तामणि, तृतीय काण्ड, श्लोक 586-87
नापित चण्डिल क्षुरी क्षुरीमर्दी दिवाकीर्ति मुण्डको न्तावसाभ्यापि ।

322- इण्डि0 एपि0 ग्लोस, पृ0 149

323- अभिधानचिन्तामणि, चतुर्थ काण्ड, श्लोक 1•66

324- से0 ई0 2, पृ0 93

325- वही, पृ0 177

326- वही, पृ0 375

327- वही, पृ0 575

328- इण्डि0 एपि0 ग्लोस0 पृ0 329

329- मिराशी का0 ई0 ई0, 4, क्रमांक 65, पृ0 336

330- मिश्र, आर0 एन0, एंशियंट आरटिस्ट और आर्ट एक्टविटि, पृ0 42

331- भण्डारकरलिस्ट, पृ0 577

332- से0 ई0 , 2, पृ0 323

333- का0 ई0 इं0, भाग 4, क्रमांक 65, पृ0 336

334- वही, क्रमांक 66, पृ0 317

335- भण्डारकरलिस्ट, पृ0 169

336- वही, पृ0 211, न0 1537

337- का0 ई0 इं0, भाग 4, क्रमांक 62, पृ0 324

338- से0 ई0 , 2, पृ0 413-14

339- इण्डि0 एन्टी0 10, पृ0 164, नोटस, 6·10

340- का0 ई0 इं0, भाग 4, क्रमांक 107, पृ0 573

341- तिलकमंजरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 208

342- इन्सक्रिप्सन्स आँव इम्पीरियल परमारास, पृ0 69

343- वही, इण्डियन स्कल्पचर, पृ0 107

344- इण्डि0 एपि0 ग्लोस, पृ0 282, भंडारकरलिस्ट, पृ0 559

345- एपि0 इण्डि0 , 31, पृ0 166

346- काO ईO ईO, 4, पृ0 329

347- चन्द्र, आर0 पी0, इण्डियन स्कल्पचर, पृ0 66; आर्टिस्ट एण्ड आर्ट एक्टिविटिस ड्यूरिंग द गुप्ता पीरियड, पृ0 50

348- काO ईO ईO, 2, पृ0 557

349- वही, 4, क्रमांक 93, पृ0 588, देवगणविता रूपकार शिरोमणि ।

350- आर्टिस्ट एण्ड आर्ट एक्टिविटिस ड्यूरिंग द गुप्ता पीरियड, पृ0 46

351- काO ईO ईO, 4, क्रमांक 97, पृ0 515

352- इण्डि0 एपि0 ग्लोस0, पृ0 311

353- इपि0 इण्डि0, 1, पृ0 168

354- सेO ईO 2, पृ0 403

355- अभिधानचिन्तामणि, तृतीय काण्ड, श्लोक, 586

356- सेO ईO, 2, पृ0 403, 406

357- इपि0 इण्डि0 24, पृ0 332

358- हर्षचरित का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 70-71

359- इण्डि0 एपि0 ग्लोस0, पृ0 312

360- शिल्प प्रकाश, 1.59

361- एपि0 इण्डि0 27, पृ0 320 एफ एफ

362- भट्टाचार्य, टी0 पी0, कैनन्स ऑव आर्ट, पृ0 178

363- भारतीय अभिलेख, पृ0 150-51

364- सेO ईO, पृ0 293-94

365- कापर्स आॅव बंगाल इन्सक्रिप्शंस, पृ0 204•

366- वही, पृ0 217•

367- वही, पृ0 249•

368- से0 ई0 2, पृ0 191•

369- वही, पृ0 375•

370- काशिका, 6•2•6, 5•4•95•

371- एपि0 ग्लोस0, पृ0 149•

372- अभिधान चिन्तामणि, तृतीय काण्ड, श्लोक 581-82

373- वही, श्लोक 578

374- एपि0 ग्लोस0, पृ0 67•

375- वही,

376- से0 ई0 2, पृ0 93

377- राजतरंगिणी, 5, 6, 7, 8, पृ0 137•

378- देशोपदेश, 6•

379- अभिधान चिन्तामणि, चतुर्थ काण्ड, श्लोक 318•

380- वही, श्लोक 542.

381- वही, श्लोक 91.

382- वही, श्लोक

383- वही, तृतीय काण्ड, पृ0 351.

384- यशस्तिलक, पृ0 125

385- आप्टे संस्कृत हिन्दी कोश, पृ0 470

386- अभिधान चिन्तामणि, तृतीय काण्ड; वैजयन्ती, पृ0 137-41, तुलनार्थ, सोसाइटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इण्डिया, पृ0 39.

387- समराइच्चकहा का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 103.

388- राजतरंगिणी, 4, पृ0 55.

389- सचाओ, जि0 1, पृ0 101.

390- वेद व्यास स्मृति, 1.11, पृ0 357.

391- अत्रि, 196.

392- सोसाइटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इण्डिया, पृ0 42.

393- झा विवेकानन्द, लेदर वर्करस इन एंशियन्ट अर्ली मीडिवल इण्डिया, इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, सेशन, 1979, 99 से 108, पृ0 104.

394- तिलकमंजरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 209.

395- वही,

396- जे0 बी0 आर0 एस0, जि0 51, पृ0 150·

397- अभिधान चिन्तामणि, तृतीय काण्ड, श्लोक 14·386

398- मानसोल्लास, अध्याय 2, श्लोक 134 - 137·

399- ए0 ई0 2, पृ0 175·

400- भण्डारकर लिस्ट, पृ0 257

401- एपि0 इण्डि0, जि0 13, पृ0 109, 115·

402- वही

403- जे0 बी0 आर0 एस0, जि0 51, पृ0 150·

404- अभिधान चिन्तामणि, तृतीय काण्ड, श्लोक 2·591·

405- शाकुन्तलम्, अंक 1, 'प्रत्यासन्न: किलमृगयाबिहारी पार्थिवो दुष्यन्त:'।

406- अभिधान चिन्तामणि, तृतीय काण्ड, श्लोक 4·591·

407- शब्दानुशासन, 6·4·31·

408- वही

409- वही

410- हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 184-185·

411- अभिधान चिन्तामणि, तृतीय काण्ड, 3·591·

412- अभिज्ञान शाकुन्तलम् , पृ0 183·

413- अभिधान चिन्तामणि, तृतीय काण्ड, 7·593·

414- तिलकमंजरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 210

414अ अभिधान चिन्तामणि तृतीय काण्ड 8·593

415- वही

416- वही

417- सै0 ई0 2, पृ0 283.

418- वही, पृ0 191.

419- एपि0 इण्डि0 , पृ0 279 , 286.

420- इण्डि0 इपि0 ग्लोस, पृ0 212.

421- अभिधान चिन्तामणि, द्वितीय काण्ड, श्लोक, 3.242, हलायुधकोश, 2.892.

422- हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 54,
चटुलशिखानर्त्त नारम्भार भटीन्टिा: ।।

423- तिलकमंजरी, पृ0 22, 'रंगशालाराग शैलूषस्य' ।

424- सै0 ई0 2, पृ0 91 - 97.

425- इण्डि0 एपि0 ग्लोस0 पृ0 212.

426- अत्रि, 196 , 44, 33, हारीत अपरार्क 9.279

427- पराशरमाधवी, 2भाग 1, पृ0 380.

428- कार्टस, पृ0 147.

429- डा0 विवेकानन्द 'दि नट इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, मुजफ्फरपुर सेशन, 1972,

430- दशकुमारचरित, पृ0 130-31, हर्षचरित , पृ0 33.

431- अभिधानचिन्तामणि, तृतीय काण्ड, श्लोक, 12.589.

432- दशकुमारचरित, पृ0 130-131.

433- हर्षचरित, पृ0 33.

434- रत्नावली, अंक 4

435- प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ0 496.

436- प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ0 496.

437- वार्टर्स, 1, पृ0 314.

438- अभिधानचिन्तामणि, तृतीय काण्ड, श्लोक, 8.196

439- प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ0 831.

440- एपि0 इण्डि0, जि0 9, पृ0 12-15.

441- वही, जि0 9, पृ0 158, 162.

442- वही, जि0 2, पृ0 121 - 122.

443- मृच्छकटिक,

444- हर्षचरित का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 66.

445- नाट्यशास्त्र, 17.37.

446- कामसूत्र, 113.

447- हर्षचरित, 2, पृ0 75, कादम्बरी, पृ0 172.

448- प्रबन्धचिन्तामणि, पृ0 108.

449- राजतरंगिणी, पृ0 7/858.

450- कुमारपालचरित संग्रह, पृ0 31.

451- वही, पृ0 31.

452- मेघदूत, पृ0 1, श्लोक 35.

453- पद्मपुराण, 52, 97.

454- एपि0 इण्डि0, जि0 6, पृ0 203 एफ0

455- एपि0 इण्डि0, 33, पृ0 240.

456- से0 ई0 2, पृ0 156-157.

457- अभिधानचिन्तामणि, तृतीय काण्ड, श्लोक 588, से0 ई0 2, पृ0 93, 97.

458- वही, श्लोक 588.

459- वही, श्लोक 589.

षष्ठ अध्याय

धर्म से सम्बन्धित व्यवसायिक समुदाय

धर्म से सम्बन्धित व्यवसायिक समुदाय

भारतीय जीवन हमेशा से ही धर्म प्रधान रहा है । धर्म भारतीय जीवन का मूलाधार है । समाज में ऐसा कोई कार्य नहीं होता था जिसका धर्म से किसी न किसी प्रकार सम्बन्ध न रहा हो । जन्म से मृत्यु तक समग्र जीवन धार्मिक संस्कारों की श्रृंखला से गुथा हुआ था । सामाजिक जीवन का प्रत्येक क्षेत्र धर्म अनुप्राणित था । पूर्वमध्य युग में भी हम ऐसी ही स्थिति पाते हैं । समाज में धर्म का व्यापक प्रचलन था । यहाँ तक कि कृषि कार्य प्रारम्भ करने के पूर्व धार्मिक अनुष्ठान किये जाते थे ।[1] व्यापारियों द्वारा सार्थों का प्रस्थान शुभदिन, शुभ मुहूर्त के अनुसार तथा अधिष्ठाती देवी - देवता के उपासना के उपरान्त किया जाता था ।[2] ऐसी परिस्थिति में जिन सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश में जहाँ धार्मिक अनुष्ठानों की जड़े इतनी गहराई तक थी, वहाँ समाज के एक बड़े समुदाय द्वारा धार्मिक क्रिया कलापों एवं अनुष्ठानों द्वारा अपनी जीविका निर्वाह करना स्वाभाविक प्रतीत होता है । ऐसा प्रतीत होता है कि सामाजिक जीवन के साथ साथ धर्म ने आर्थिक धरातल को भी काफी प्रभावित किया था ।

प्राचीन काल से ही धार्मिक क्रिया कलापों एवं अनुष्ठानों को सम्पन्न कराने का अधिकार ब्राह्मणों को प्राप्त था ।[3] अपने इसी विशेषाधिकार के कारण समाज में पूज्य थे । यहाँ तक कि वे देव तुल्य माने जाते थे ।[4] अधीतकाल में भी ब्राह्मण वर्ग अपने उक्त विशेषाधिकार से वंचित नहीं हुये थे । पूर्वमध्य युगीन स्मृतिकारों ने ब्राह्मणों के इस विशेषाधिकार का समर्थन करते हुये मत[5] प्रस्तुत किया

है कि यजन-याजन द्वारा देवों एवं पितरों की तुष्टि, अध्ययन-अध्यापन द्वारा वेदों की रक्षा तथा अनुष्ठान एवं उपदेशादि कर्मों से धर्म की रक्षा का भार ब्राह्मणों को सौंपा गया था ।[6] इसके अतिरिक्त साक्ष्यों में ब्राह्मणों द्वारा विभिन्न संस्कार अनुष्ठान, पूजा-अर्चना, इत्यादि सम्पादित किये जाने के प्रमाण प्राप्त हैं । तिलक -मंजरी में वर्णित है कि यज्ञ मण्डप के निकट बैठे द्विज मन्त्रोच्चारण कर रहे थे ।[7] दशकुमारचरित में ब्राह्मण पुरोहित द्वारा कृत्यवित् जात कर्म संस्कार किये जाने का प्रसंग है ।[8] बराकपुर ताम्रपत्र लेख में उदयकरदेव शर्मन नाम के ब्राह्मण द्वारा यज्ञ - सम्पन्न किये जाने का उल्लेख है ।[9]

अध्ययन काल में विविध प्रकार के धार्मिक अनुष्ठानों एवं धर्म विहित कार्यों को सम्पन्न कराने वाले व्यक्तियों को कई वर्गों में विभक्त किया जा सकता है, जिन्हें अपनी विशिष्टता के कारण समाज में सम्मान जनक स्थान प्राप्त था । इनमें प्रमुख व्यवसायिक समुदाय इस प्रकार है -

<u>पुरोहित :-</u> धार्मिक व्यवसायिक वर्गों की चर्चा हम पुरोहित वर्ग से प्रारम्भ कर सकते हैं । धर्म के विकास परिरक्षण में पुरोहित वर्ग की भूमिका महत्वपूर्ण थी । शुक्रनीति सार का यह उल्लेख महत्वपूर्ण है "पुरोधाः प्रथमं श्रेष्ठतः सर्वेभ्यो राजराष्ट्र भृतः"[10] कामन्दकीय नीतिसार में भी यही महत्व प्राप्त है ।[11] तिलकमंजरी में पुरोहितों को समस्त वेदों का ज्ञाता, प्रजापति के समान कहा गया है ।[12]

अधीत कालीन अभिलेखों में पुरोहितों के कई वर्गों का उल्लेख मिलता है । यथा राजपुरोहित[13], कुलपुरोहित[14] तथा पुरोहित[15] ।

राजपुरोहित के विषय में अनेक साक्ष्य उपलब्ध हैं । याज्ञवल्क्यस्मृति में उल्लिखित है, ज्योतिषशास्त्र के ज्ञाता, सर्वशास्त्र समृद्ध, अर्थशास्त्र कुशल, शांति इत्यादि कर्म में निपुण व्यक्ति को पुरोहित नियुक्त करना चाहिए ।[16] उक्त कथन से पुरोहित के गुणों का संकेत मिलता है, ये मुख्यत: राजपुरोहित का गुण होना चाहिए । मानसोल्लास में राजपुरोहित को त्रयी विद्या दण्डनीति शक्ति कर्म इत्यादि गुणों का ज्ञाता कहा गया है ।[17]

अधीतकालीन अभिलेखों में पुरोहित वर्ग के विषय में अनेक प्रसंग हैं । कन्नौज के चन्द्रदेव के चन्द्रवती ताम्रपत्र[18], गोविन्दचन्द्र देव का सेहत मेहत ताम्रपत्र[19] (1029 ईसवी), राजाधिकारियों की तालिका में, तथा लक्ष्मणसेन[20] एवं वल्लाल - सेन[21] के अनुदानों में पुरोहित शब्द का उल्लेख है । गहड़वाल के अभिलेख में भी मन्त्री के बाद दूसरा क्रम पुरोहित का ही मिलता है ।[22] उपरोक्त प्रमाणों से उनकी राजकीय सामाजिक एवं अनुष्ठानिक प्रतिष्ठा का ज्ञान होता है । गोविन्द चन्द्र देव के कामौली ताम्रपत्र में महापुरोहित को जागूशर्म्मण को ग्राम दान दिये जाने का प्रसंग है ।[23] ऐसा प्रतीत होता है कि राजपुरोहित को कभी-कभी महापुरोहित की उपाधि से विभूषित किया जाता था । पिपलिया नगर से प्राप्त अर्जुनवर्मन प्रथम के ताम्रपत्र अभिलेख में पुरोहित गोविन्द शर्मा ब्राह्मण को सभी प्रकार के आय से युक्त ग्राम दान का उल्लेख है ।[24] राजा और राज्य के कल्याण हेतु राजपुरोहित द्वारा मंत्र पाठ किये जाने का प्रसंग है ।[25] युद्ध के लिये सैनिक प्रयाण करने के पूर्व राजपुरोहित द्वारा शुभ मुहूर्त का निर्धारण किया जाता था ।[26] तथा विशेष अवसरों पर उनकी उपस्थिति अनिवार्य थी । हर्षचरित में राजश्री

के विवाह के अवसर पर उपस्थित पुरोहित तथा कर्म कर्त्ता मुख्य ब्राह्मणों का उल्लेख है ।[27] राजपुरोहित द्वारा आशीर्वाद दिये जाने का प्रसंग है ।[28]

कतिपय अभिलेखों, धार्मिक कृत्यों के साथ पुरोहित की आज्ञा से राजआज्ञा उत्कीर्ण कराये जाने का विवरण उपलब्ध है । गोविन्द चन्द्र देव के बसाही ताम्रपत्र अभिलेख में पुरोहित जगुका की आज्ञा से राज आज्ञा उत्कीर्ण कराने का प्रसंग है ।[29] देवधर्म का गंगयालेख में इसी प्रकार का उल्लेख प्राप्त होता है ।[30]

साक्ष्यों में कुल पुरोहित[31] के विषय में भी साक्ष्य उपलब्ध है । हर्षचरित में बाण ने कुलपुरोहित के सन्दर्भ में लिखा है कि अभिषेक सम्बंधी सभी मंगल कार्य कुल - पुरोहित से कराये जाते थे ।[32]

साक्ष्यों के अनुशीलन से ऐसा ज्ञात होता है,साधारण पुरोहित की अपेक्षा राजपुरोहित तथा कुलपुरोहित को प्रतिष्ठा एवं सम्मान अधिक प्राप्त था ।

<u>पुजारी :-</u> भक्ति और पूजा पद्धति के विकास के परिणाम स्वरूप पूर्वमध्य कालीन समाज में विभिन्न देवी देवताओं की मूर्तिपूजा की प्रथा काफी प्रचलित थी । मूर्ति - पूजा के फलस्वरूप ब्राह्मण समाज में एक विशेष वर्ग का जन्म हुआ, जो मंदिरों, देवालय की पूजा-अर्चना से सम्बंधित हो गया था । अभिलेखीय एवं साहित्यिक साक्ष्यों में देवपूजन कर जीविका निर्वाह करने वाले समुदाय को पूजक[33], पुजारी,[34] देवलक[35], देवाजीव[36], देवल[37] इत्यादि संज्ञायें प्रदान की गई हैं । इनका मुख्य कार्य मंदिरों में देवपूजन तथा पूजा अर्चना करना था । चाहमान कालीन लोहरी अभिलेख में पशुपत पुजारी विश्वेश्वर का प्रसंग है ।[38] कपिलेन्द्रदेव कालीन गोपीनाथपुर अभिलेख में महापात्र

वंशीय पुजारी लक्ष्मण का उल्लेख मिलता है ।[39]

<u>पुण्यवाचक :-</u> पुजारी वर्ग के अन्तर्गत कई वर्गों का उदय हुआ जिनमें पुण्यवाचक[40] तथा वाचक[41] का प्रसंग मिलता है । जिनका मुख्य कार्य मंत्रों का उच्चारण कर धार्मिक अनुष्ठान कराना था । पूर्वमध्य युगीन साहित्य में श्रोत्रिय ब्राह्मणों की चर्चा मिलती है ।[42] श्रोत्रिय को जप में अनुरक्त कहा गया है ।[43] अत: श्रोत्रिय ब्राह्मण को हम उक्त वर्ग में सम्मिलित कर सकते हैं । तिलकमंजरी में प्रसंगित है, श्रोत्रिय प्रात:काल राजा से भेंट करने जाते थे ।[44] इसी ग्रन्थ में एक अन्य स्थान पर वर्णित है, श्रोत्रियों के दानार्थ लाई गई गायों से ब्राह्मणकक्ष भर गया था ।[45]

साक्ष्यों में ग्राम पुजारी का भी प्रसंग प्राप्त होता है जिनकी पुष्टि अभिलेखों में प्रसंगित ग्रामदेवता,[46] ग्रामदेव[47] से होती है । इसके अतिरिक्त अन्य वर्गों में घंटवादक तथा शंख वादक का उल्लेख है । देवता के सम्मुख घंटा बजाकर स्तुति करने वालेको घण्टिका, चक्रिका: की संज्ञा दी गई है ।[48] शंखवादक के प्रसंग में श्रीचन्द्र के पश्चिमबाग ताम्रपत्र में विवरण मिलता है ।[49]

<u>सांख्यवारिक :-</u> पुजारी वर्ग में सांख्यवारिक[50] का भी एक वर्ग दृष्टिगत होता है । ये पुजारी धार्मिक अनुष्ठान, यज्ञादि के अवसर या किसी विशेष अवसर पर पवित्र जल छिड़कते थे । हर्षचरित में हर्ष के दिग्विजय के लिए प्रस्थान करते समय पुरोहित द्वारा शांति जल छिड़कने का प्रसंग प्राप्त होता है ।[51] तिलकमंजरी में वर्णित है, पुरोहित हरा कुश हाथ में लेकर स्वर्णमय पात्र से शांतिजल छिड़क रहा था ।[52]

देववारिक :- पुजारी वर्ग के अतिरिक्त मंदिरों की व्यवस्था से सम्बंधित वर्गों में देववारिक[53], देवागारिक[54] इत्यादि शब्दों का उल्लेख अभिलेखों में प्राप्त होता है । ये मंदिरों के मुख्य पुजारी एवं व्यवस्थापक हुआ करते थे । इन अधिकारियों का मुख्य कार्य मंदिरों की देख रेख एवं समुचित व्यवस्था करना था । यादववंशीय कृष्ण तृतीय के ताम्रपत्र अभिलेख में देववारिक का विवरण प्राप्त है ।[55]

धर्मलिखिन् :- अधीत कालीन अनुदानों में धर्मलिखिन्[56] का अनेक प्रसंग प्राप्त होता है । धर्मलिखिन को हम व्यवसायिक वर्ग के अन्तर्गत स्वीकार कर सकते हैं । जिनका मुख्य कार्य प्रशासनिक एवं धार्मिक अनुदान पत्रों को लिपिबद्ध करना था । परमार वंशीय उदयदित्य कालीन मंदिर प्रस्तर अभिलेख में पंडित श्री महिपाल द्वारा श्लोक रचे जाने का उल्लेख है ।[57] वि० सं० 693 के कसवां ﴾सिरोही﴿ से प्राप्त अभिलेख का लेखक ब्राह्मण शिवगुप्त था ।[58] वि० सं० 1003 के परतापगढ़ अभिलेख का लेखक पुरोहित त्रिविक्रमनाथ का उल्लेख है ।[59] इसी प्रकार अन्य उदाहरण परमार शासक पूर्णपाल के वि० सं० 1099 के अभिलेख में प्राप्त है । प्रस्तुत लेख का रचयिता ब्राह्मण था ।[60] थकरडा ﴾डूंगरपुर﴿ से प्राप्त प्रतिहार शासक सूर्यपाल देव का वि० सं० 1212 के अभिलेख का रचयिता पंडित श्रीधर का पुत्र पंडित मईध था ।[61]

उपरोक्त विवरणों से स्पष्ट होता है कि ब्राह्मण राजकीय प्रशस्तियों व अभिलेखों के लेखक तथा उत्कीर्णकर्त्ता हुआ करते थे । जिन्हें हम ब्राह्मणों को एक वर्ग के रूप में स्वीकार कर सकते हैं ।

इसके अतिरिक्त मंगलपाठ करने वाले बन्दीजनों का उल्लेख साक्ष्य में प्राप्त है ।[62] अभिधानचिन्तामणि में इन्हें सूत: वन्दी, मंगलपपठक इत्यादि की संज्ञा दी गई है ।[63] कृष्ण तृतीय के कन्धार प्रस्तर स्तम्भ अभिलेख (939 - 67 ईसवी) में दिन में चार समय पाठ करने वाले व्यक्तियों के समुदाय में प्रत्येक को 100 द्रम्म तथा एक जोड़ा वस्त्र दिये जाने का प्रसंग मिलता है ।[64]

<u>वन्दिगण :-</u> राजाओं की स्तुति करते हुये प्रात:काल जगाने वाले वर्ग को वन्दिगण कहा गया है ।[65] अभिधानचिन्तामणि इन्हें वैतालिका, बोधकरा, अर्थिका, सौरव सुप्तिका इत्यादि नामों से अभिहित किया है ।[66] कृष्ण तृतीय के कन्धार प्रस्तर स्तम्भ लेख में राजा के महानगुणों की प्रशंसा करने वाले वन्दिजनों को प्रत्येक वर्ष 200 द्रम्म और एक जोड़ा वस्त्र दिये जाने का उल्लेख है ।[67]

इसके साथ वर्तिका[68] का भी उल्लेख मिलता है । यह राजा को कहानी सुनाने वाला व्यक्ति होता था । सभाश्रृंगार में इसे कथोबोला[69] और कथक[70] भी कहा गया है ।

<u>ज्योतिषी : -</u> धार्मिक समुदाय के अन्तर्गत ज्योतिषी की भी गणना की जा सकती है । आचार्य हेमचन्द्र ने ज्योतिष विद्या के पेशे करने वाले को ज्योतिषी कहा है ।[71] तथा इन्हें विभिन्न नामों से अभिहित किया है : यथा - सांवत्सर:, ज्योतिषक, मौहूर्तिक, दैवज्ञ,गणक, आदेशी, ज्ञानी, कार्तान्तिक:, विप्रश्निक: ईक्षणिक: ।[72] सोमेश्वर ने अमात्याध्याय प्रकरण के 'पंचागनिर्णय' तथा ज्योतिर्विद् गणक लक्षण' प्रसंग में विस्तार से राज्याभिषेक, विवाह, यात्रा, गृहपवेश आदि के हेतु इनके परामर्श को राजा के लिए हित कहा है ।[73] हर्षचरित में हर्ष के जन्म के अवसर पर तारक नामक

ज्योतिषी को बुलाकर ग्रह दिखलाने का प्रसंग है ।[74] इसी ग्रन्थ में एक अन्य स्थल पर वर्णित है कि राजश्री के विवाह के अवसर पर गणना में लगे ज्योतिषी विवाह योग्य सुन्दर लग्न शोध रहे थे ।[75] तिलकमंजरी में नैमित्तिक शब्द ज्योतिषी के लिए प्रयुक्त हुआ है ।[76] पुरूदेशा नामक राज नैमित्तिक द्वारा राजकार्यों के लिए मुहूर्त शोधन किये जाने का उल्लेख है ।[77] दशकुमार चरित में उल्लिखित है, ज्योतिषियों ने देवी को पुत्र जन्म के समय बताया था कि तुम्हारी कोख से शत्रुओं को दमन करने वाला, चक्रवर्ती मनोहर, कोमल कुमार का जन्म होगा ।[78] अभिलेखीय प्रमाणों से भी इनकी पुष्टि होती है जोधपुर प्रस्तर अभिलेख में ज्योतिष शास्त्र का प्रसंग मिलता है ।[79] चाहमान वंशीय दिल्ली सीवालिक प्रस्तर स्तम्भ अभिलेख में ज्योतिष श्री तिलक राज के उपस्थिति में राज्याज्ञा लिखे जाने का उल्लेख है ।[80] कांगर से प्राप्त बैजनाथ प्रशस्ति में व्यक्तिगत रूप से दान दिये भूमि खण्डों में ज्योतिष द्वारा बीजवपन का प्रसंग प्राप्त है ।[81] इसी प्रकार अन्य अभिलेखों में ज्योतिषो के विषय में प्रसंग प्राप्त होते है ।[82]

विद्वान वर्ग :- धार्मिक परम्परा और शिक्षा ज्ञान के सृजन एवं प्रचार-प्रसार में विद्वान वर्ग की भूमिका सराहनीय प्रतीत होती है । विद्वत ब्राहमणों को उनके ज्ञान-विज्ञान, योग्यता के आधार पर भिन्न-भिन्न संज्ञायें प्राप्त थी । यथा चतुर्वेदी,[83] द्विवेदी,[84] त्रिवेदी,[85] त्रिपाठी[86] इत्यादि जिन्हें हम पृथक-पृथक कोटि में रख सकते थे ।

चर्तुर्वेदी ब्राहम्ण को चारो वेद का ज्ञाता कहा गया है। लोकनाथ ताम्रपत्र (664 ईसवी) में चातुर्विद्या ज्ञाता ब्राहम्णों का प्रसंग मिलता है।[87] परतापगढ़ प्रस्तर अभिलेख में दशपुर के चर्तुविद ज्ञाता ब्राहम्णों को गाँव दान दिये जाने का उल्लेख है।[88] मोडासा का भोजदेव कालीन ताम्रपत्र (1011 ई0) मे श्री वत्सराज द्वारा चतुर्जातिक शास्त्र के अध्यन में सम्पन्न श्रेष्ठ ब्राहम्ण ददाक को दो हल भूमि दिये जाने का विवरण प्राप्त है।[89] द्विवेदी ब्राहम्ण द्विवेद ज्ञाता हुआ करते थे। जयवर्मदेव द्वितीय का मांधाता ताम्र पत्र अभिलेख में आश्वलायन शाखा का अध्यायी, द्विवेदी लाषु का पौत्र, द्विवेद लीमदेव का उल्लेख मिलता है।[90] त्रिवेदी ज्ञाता ब्राहम्णो के विषय में भी साक्ष्य उपलब्ध होते है। भोजदेव का उज्जैन ताम्रपत्र अभिलेख में तृचाश्वलायन शाखी, अगस्ति गोत्री त्रिप्रवरी ब्राहम्ण धनपति भट्ट को सभी आय सहित ग्राम दान दिये जाने का प्रसंग है।[91] नरवर्मन का देवास ताम्रपत्र अभिलेख में तीन प्रवरों वाले वेद की आश्वलायन शाखा के अध्यायी ब्राहम्ण विश्वरूप का उल्लेख है।[92] स्पष्ट है कि उक्त सभी विद्वान ब्राहम्णों को जीविका हेतु दान-दक्षिणा प्राप्त होता था। उदाहरण के रूप में 922 ई0 के कलिंगराज गंगराजा अनन्तवर्मन के एक ताम्र पत्र से ज्ञात होता है कि विद्वान ब्राहम्ण सोमाचार्य को शासक द्वारा भूमि दान दी गई थी।[93] इसी प्रकार अन्य उदाहरण प्राप्त होते है।[94]

विद्वान वर्ग के अर्न्तगत शिक्षक वर्ग की भूमिका काफी महत्वपूर्ण थी। समाज में इन्हें सम्मानीय स्थान प्राप्त था, जो मठो, बिहारों तथा अन्य शैक्षिक

संस्थाओं में शिक्षा देने का कार्य करते थे । अभिलेखीय साक्ष्यों में प्राप्त आचार्य,[95] उपाध्याय,[96] महाउपाध्याय,[97] दीक्षागुरु[98] इत्यादि संज्ञायें शिक्षक समुदाय को इंगित करते है ।

पूर्वमध्यकालीन अभिलेखीय एवं साहित्यिक साक्ष्यों के अध्यन से यह ज्ञात होता है, उक्तवर्गों की आर्थिक स्थिति सामान्य रूप से अच्छी थी । धार्मिक क्रिया-कलापों से जीविकोपार्जन करने वाले पुरोहित तथा अन्य वर्गों की आय का मुख्य स्त्रोत प्राथमिक रूप से यजमानों से प्राप्त होने वाली दान-दक्षिणा ही थी। यह भी सत्य है कि दान-दक्षिणा की मात्रा परिमाप, राशि यज्ञ एवं अनुष्ठान के प्रकार एवं यजमानों की आर्थिक-सामाजिक स्थिति पर निर्भर करती थी । यह स्पष्ट है कि आलोच्य काल में राजा, सामंत, राजकीय, अधिकारी, सेट्ठि, गृहपति इत्यादि कुलीन वर्ग के लोगों से प्रचुर मात्रा में दान दक्षिणा प्राप्त होता था । याज्ञवल्क्य समृति में पुरोहितो को दान दिये जाने वाली वस्तुओं में भूमि, स्वर्ण, गृह, रथ, गाय अन्यपशु, वस्त्र, खाद्य-द्रव्य इत्यादि का उल्लेख प्राप्त है ।[99]

अधीत कालीन अभिलेखों में उल्लिखित देवभाग,[100] देवदेय,[101], देवदाय[102] इत्यादि शब्द इस तथ्य को स्पष्ट करते है, मंदिरों को कर मुक्त भूमि तथा भूमिखंड दान में दिये जाते थे । जिससे प्राप्त आय जीवकोपार्जन का स्त्रोत था । साथ ही साथ धार्मिक दान के सन्दर्भ में अभिलेखों में प्रसंगित धर्मदान,[103] धर्मदेय,[104] इत्यादि शब्दों से ज्ञात होता है कि समाज मे दान देने की परम्परा अत्यधिक प्रचलित थी ।

प्राप्त साक्ष्यों के अनुशीलन से स्पष्ट होता है, दान-दक्षिणा की प्रथा से कुछ ब्राहम्ण पुरोहित वर्ग सम्पत्ति शाली हो गये थे । प्रचुर भूसम्पत्ति और वित्तशाली ब्राहम्णों का प्रादुर्भाव सम्भवतः इसी कारण हुआ होगा ।

1· देखिए कृषि पराशय

2· शर्मा बी0 एन0, सोशल एण्ड कल्चरल हिस्ट्री आँफ नार्दन इण्डिया, पृ0 150

3· वायु पुराण 29·244; गौ0 ध0 सू0, 10·2, मनु 1·99

4- तैत्तिरीय संहिता, 1·7·11, एते वै देवा: प्रत्यक्ष यद् ब्राह्मणा:,

5- याज्ञवल्क्य स्मृति, 1·118, पराशय स्मृति, 1·38, अत्रि स्मृति 13, शंख स्मृति 1·22

6- वही

7- तिलकमंजरी पृ0 64, तिलकमंजरी सांस्कृतिक अध्ययन पृ0 205·

8- दशकुमारचरित, प्रथम उच्छवास, पृ0 26·

9- इंस्क्रप्सन्स आँफ बंगाल, 3, पृ0 63-67·

10- शुक्रनीति सार, 2·74

11- जे0 बी0 आर0 एस0, जिल्द 2, पृ0 139·

12- तिलकमंजरी, पृ0 78; तिलकमंजरी सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 204·

13- इण्डि0 एपि0 ग्लोस0 , पृ0 266·

14- वही

15- इण्डि0 एपि0 ग्लोस0, पृ0 264; एपि0 इण्डि0, 30, पृ0 192·

16- याज्ञवल्क्य स्मृति, 1·313·

17- मानसोल्लास, भाग 1, विंशति 2, न0 2, श्लोक 61-84·

18- एपि0 इण्डि0, जि0 9, पृ0 305

19- सेo ईo, 2, पृo 288-289.

20- एपिo इण्डिo, जिo 62, पृo 6,9.

21- वही, जिल्द 14, पृo 160.

22- वही, जिo 4, पृo 105.

23- सेo ईo, 2, पृo 283.

24- इन्सक्रिप्सन्स आफ इम्पीरियल परमारज, पृo 237.

25- कुमारपालचरितसंग्रह काव्य, पृo 32.

26- समराइच्चकहा, 1, पृo 28-29.

27- हर्षचरित का सांस्कृतिक अध्ययन, पृo 85.

28- कुमारपाल चरित संग्रह काव्य, पृo 131.

29- सेo ईo, 2, पृo 279.

30- एपिo इण्डिo, जिo 13, पृo 213.

31- इण्डिo एपिo ग्लोसo, पृo 266.

32- कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृo 123.

33- इण्डिo एपिo ग्लोसo, पृo 265.

34- वही, 265.

35- तिलकमंजरी सांस्कृतिक अध्ययन, पृo 206.

36- अभिधानचिन्तामणि, तृतीय काण्ड, श्लोक 588.

37- वही,

38- भण्डारकर लिस्ट, पृo 45

39- भण्डारकर लिस्ट, पृ0 249.

40- इण्डि0 एपि0 ग्लोस0, पृ0 265.

41- वही, पृ0 356.

42- यशस्तिलक, पृ0 103, तिलकमंजरी सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 205.

43- तिलकमंजरी, पृ0 11, जपानुगामिभिरूपवनैरिव श्रोतिधजनैः ।

44- वही, पृ0 62

45- वही, पृ0 64.

46- इण्डि0 एपि0 ग्लोस, पृ0 120.

47- वही, पृ0 120.

48- अभिधानचिन्तामणि, तृतीयकाण्ड, श्लोक 9.458.

49- सें0 ई0, 2, पृ0 93.

50- इण्डि0 एपि0 ग्लोस0, पृ0 299.

51- हर्षचरित का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 139.

52- तिलकमंजरी, पृ0 63, तिलकमंजरी सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 205.

53- इण्डि0 एपि0 ग्लोस0, पृ0 89, एपि0 इण्डि0, जि0 27, पृ0 142, 35.

54- वही, पृ0 77.

55- से0 ई0, 2, पृ0 508.

56- इण्डि0 एपि0 ग्लोस0, पृ0 93.

57- इन्सक्रिप्सन्स ऑफ इम्पीरियल परमारज, पृ0 130.

58- एपि0 इण्डि0, जि0 36, पृ0 47.

59- वही, जि0, 14, पृ0 176.

60- वही, जि0, 9, पृ0 11.

61- वही, 46, पृ0 225.

62- अभिधानचिन्तामणि, तृतीय काण्ड, श्लोक 10, 458.

63- वही

64- से0 ई0 2, पृ0 511.

65- अभिधानचिन्तामणि, तृतीय काण्ड, श्लोक 8.458.

66- वही

67- से0 ई0, 2, पृ0 511

68- जे0 बी0 आर0 एस0, जि0 , पृ0 149.

69- वही, सभाश्रृंगार, पृ0 57.

70- वही, पृ0 58.

71- शब्दानुशासन, 63.199

72- अभिधानचिन्तामणि, तृतीय काण्ड, श्लोक 5.146.

73- मानसोल्लास, भाग 1 , विंशति 2, अ0 2, श्लोक 61-68.

74- हर्षचरित का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 64.

75- वही, पृ0 71, 2. 'गणनाभियुक्तागणक गृहयमाण लग्न गुणम ।"

76- तिलकमंजरी, पृ0 403.

77- वही, पृ0 64, 95, 131, 190, 193, 232, 263, 403

78- दशकुमारचरित, प्रथम उच्छवास, पृ0 19.

79- सेo ईo, 2, पृo 239.

80- वही, पृo 410.

81- इकोनामिक लाइफ आँफ नार्दन इण्डिया, पृo 6

82- एपिo इण्डिo 2, पृo 116, 24, 329 एफo एफo 30 - 210

83- इण्डिo एपिo ग्लोसo, पृo 70.

84- वही, पृo 105.

85- वही, 344.

86- वही, 344.

87- सेo ईo, 2, पृo 31.

88- सेo ईo, 2, पृo 252

89- इन्सक्रिप्सन्स आँफ इम्पीरियल परमारज, पृo 42.

90- वही, पृo 282.

91- वही, पृo 59.

92- वही, पृo 151.

93- जेo एo एचo आरo एसo भाग - 2, पृo 27.

94- देखिए प्रथम अध्याय, पृo

95- सेo ईo, 2, पृo 192, 538, 546.

96- इण्डिo एपिo ग्लोसo, पृo 357.

97- वही, पृo 192.

98- वही, पृo 97.

99- याज्ञवल्क्य स्मृति, 1, श्लोक 210-211, मध्य काल में दान के महत्व के शास्त्रीय विवेचन हेतु देखिए, काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, दान काण्ड, जि0 5, भाग - 2, पृ0 934 - 938, कृत्यकल्पतरू, दानकाण्ड,

100- इण्डि0 एपि0 ग्लोस0, पृ0 88.

101- वही, पृ0 88.

102- वही, पृ0 88; से0 ई0, 2, पृ0 76, 390 एन, 500 - 533.

103- वही, पृ0 93.

104- वही, पृ0 93.

सप्तम अध्याय

प्रशासन से सम्बन्धित समुदाय

प्रशासन से सम्बन्धित समुदाय

राजनीतिक पृष्ठभूमि में शासनतंत्र को सुव्यवस्थित एवं सुसंगठित ढंग से संचालित करने के लिये राज्य की ओर अनेक पदाधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी । पदाधिकारीगण राजा के अधीनस्थ कार्य करते थे तथा अपने कार्य क्षेत्र के अनुरूप पृथक-पृथक नामों से जाने जाते थे । पूर्वमध्य युगीन साहित्यिक एवं अभिलेखीय साक्ष्य में विभिन्न राजाधिकारियों का प्रसंग मिलता है । कल्हण कृत राजतरंगिणी में वर्णित है, कश्मीर में नरेश के अधीनस्थ महाप्रतिहार, महासांधिविग्रहिक, महाअश्व - पाल, महाभाण्डागार इत्यादि अधिकारियों की नियुक्ति की गई थी[1] । अभि - लेखीय प्रमाणों के अन्तर्गत गोविन्दचन्द्र देव का कामौली ताम्रपत्र § 1125 ईसवी[2] §, धर्मपाल का खलीमपुर ताम्रपत्र अभिलेख[3] § 775 - 812 ईसवी §, देवपाल का नालंदा ताम्रपत्र[4] § 812-50 ईसवी §, चन्द्रदेव का चन्द्रावती ताम्रपत्र अभिलेख[5] इत्यादि लेखों में विभिन्न राज्य पदाधिकाकरयों में मंत्री, अमात्य, सेनापति, भाण्डागारिक, अक्षपटलिक, प्रतिहार, महादण्डनायक, विषयपति इत्यादि का उल्लेख मिलता है ।

साक्ष्यों के अनुशीलन से स्पष्ट होता है कि उक्त राजकीय अधिकारी वर्ग केवल राजनीतिक पक्ष का ही प्रतिनिधित्व नहीं करते थे अपितु सामाजिक एवं आर्थिक गतिविधियों में भी इनकी अहम् भूमिका परिलक्षित होती है । सामान्य रूप से ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त वर्गों की लौकिक सामाजिक स्थिति का निर्धारण प्राप्त पदों के अनुसार होती थी ।

तत्कालीन समाज में राजकीय प्रशासन पर निर्भरशील वर्गों की संख्या कितनी थी।यह सुनिश्चित करना अत्यन्त कठिन है । यद्यपि कि विभिन्न कालों एवं राज्यों में प्रशासनिक प्रारूप में एकरूपता होते हुये भी हर राज्यों में आवश्यकता के अनुरूप ही पदाधिकारियों की नियुक्ति की जाती होगी । अत: इसमें सन्देह नहीं कि पृथक-पृथक राज्यों में पृथक-पृथक पदाधिकारी की परिगणना की गई है । मनु[6] और कौटिल्य[7] ने प्रत्येक राज्य की आवश्यकतानुसार ही मंत्रियों की संख्या निश्चित करने का विधान किया है । उक्त कथन की पुष्टि में प्राचीन एवं आद्यति कालीन साक्ष्यों में समरूपता दिखायी देती है । यशस्तिलक[8] में राजा को एक मंत्री पर पूर्ण रूप से निर्भर न रहने की सलाह दी गई है जिससे स्पष्ट होता है कि मंत्रियों की संख्या अवश्य ही अधिक रही होगी । एक अन्य ग्रन्थ समराइच्चकहा[9] में प्रशासनिक कार्यों में राजा की मदद के लिये एक से अधिक मंत्रियों की नियुक्ति पर बल दिया गया है । इस प्रकार उपरोक्त कथनों से यह ज्ञात होता है कि आलोच्चित काल में भी पूर्व अवधारणा के अनुसार आवश्यकता के अनुसार पदाधिकारियों की नियुक्ति की प्रथा विद्यमान थी । प्राप्त साक्ष्यों के आलोक में प्रमुख अधिकारियों की चर्चा इस प्रकार प्रस्तुत की जा रही है - मंत्री[10], महामंत्री[11], महामात्य[12], अमात्य[13], सेनापति[14], महासेनापति[15], दण्डनायक[16], महादण्डनायक[17], महासंधिविग्रहिक[18], संधिविग्रहिक[19], महा-प्रतिहार[20], प्रतिहार[21], अक्षपटलिक[22], महाक्षपटलिक[23], भाण्डागारिक[24], महाधर्माध्यक्ष[25], महाधर्माधिकारी[26], दण्डपाशिक[27], चौरद्धरणिक[28], दूतप्रेषणिक

शौल्किक[30], गौल्मिक[31], प्राप्तपाल[32], कोट्टपाल[33], दौसाध्यसाधनिक[34], वृहद उपरिक [illegible][35] ।

सिद्धान्तरूप में वर्ण अनुक्रम के अनुसार प्रशासन एवं प्रशासनिक कार्यों पर क्षत्रियवर्ण का आधिपत्य स्वीकार किया गया है तथा प्रशासन को क्षत्रियों का प्रधान कर्मक्षेत्र कहा गया है ।[35] किन्तु प्राप्त अभिलेखीय एवं साहित्यिक साक्ष्यों के आलोक में यह बात कुछ भिन्न से प्रतीत होती है । विवेच्यकाल में क्षत्रियवर्ण के अतिरिक्त अन्य वर्णों के सदस्यों द्वारा भी प्रशासन एवं प्रशासनिक कार्यों में रत होने के पर्याप्त प्रमाण प्राप्त होते हैं । कल्चुरी राजा पृथ्वी देव प्रथम और रत्नपुर के रत्नदेव ने भी ब्राह्मणों को मंत्री नियुक्त किया था ।[36] सेमरा - प्रशस्ति से ज्ञात होता है ब्राह्मण सेनापति कल्हण पुत्र अजल पाल देव भी सेनापति था ।[37] चन्देल शासकों ने भी पुश्तैनी तौर पर ब्राह्मणों के मंत्री होने का समर्थन किया है ।[38] कादम्बरी के उल्लेख से स्पष्ट होता है कि कुमारपाल, तथा शुकनास जो क्रमशः शूद्रक और तारापीड़ के ब्राह्मण मंत्री थे[39] । वैश्य जातीय वस्तुपाल और यशोवीर जालोर के शासक उदयसिंह के प्रमुख मन्त्रदाता थे ।[40] कुमारपाल चरित से ज्ञात है राजनीतिज्ञ, शूरवीर महामात्य वाग्भट्ट जाति से वणिग् थे ।[41] ब्राह्मण-वैश्यों के अतिरिक्त शूद्रों द्वारा क्षत्रिय वृत्ति अपनाने का प्रमाण उपलब्ध है । चोल सम्राट कुलतुंग प्रथम कालीन एक अभिलेख में शूद्र सैन्य अधिकारी का उल्लेख है ।[42] उपरोक्त कथन की पुष्टि ह्वेनसांग के विवरण से होती है । ह्वेनसांग के अनुसार कामरूप उज्जयिनी में ब्राह्मण शासक[43], कोशल,

महाराष्ट्र,मैं बल्लभी में क्षत्रिय शासक[44] तथा कन्नौज में वैश्य शासक[45] तथा मतिपुर और सिन्धु में शूद्र शासक राज्य कर रहे थे ।[46]

मंत्री :- शासनतंत्र के अन्तर्गत राजा के उपरान्त मंत्री का स्थान महत्वपूर्ण माना जाता था । सम्राट की भाँति वह भी राज्य की प्रत्येक गतिविधियों में भाग लेता था । राजाकी दृष्टि में मंत्री का पद सम्माननीय होता था ।[47] वह मंत्रियों को अपना हृदय समझता था ।[48] राज्य की राजनीतिक गतिविधियों के अतिरिक्त धर्म और अर्थ की वृद्धि में भी इनकी भूमिका की गणना की गई है । अभिलेख में वर्णित है, राज्यों में धर्म और अर्थ की समृद्धि इत्यादि मंत्रियों की कार्य पटुता पर निर्भर रहती थी ।[49] मंत्री का मुख्य कार्य राजा को राज्य सम्बन्धी परामर्श देना था[50] तथा मंत्रियों का यह भी कर्त्तव्य था कि राजा को उचित दिशा दिखाकर अनुचित कार्यों से बचाये[51] । इस प्रकार परमर्श तथा अन्य प्रकार के प्रशासनिक कार्यों में सहयोग के साथ-साथ मंत्री न्याय कार्य भी देखते थे ।[52]

मंत्रियों के विविध गुणों की चर्चा साक्ष्यों में की गई है । कौटिल्य के अनुसार मंत्री को स्वदेशी, उच्च कुलीन, कला में पारंगत, दूरदर्शी, बुद्धिमान , तेज, धीर, वाक्यकुशल, चतुर, उत्साही, सच्चरित्र, शक्तिशाली, साहसी, आरोग्यवान्, स्वतंत्रविचार युक्त, गर्वरहित तथा घृणा शत्रुत्वभाव से रहित होना चाहिए[53] । आलाच्य काल में सोमेश्वर ने भी मंत्रियों के लक्षण कौटिल्य के आधार पर बताया है ।[54] जैनग्रन्थों में मंत्रियों को साम,दाम, दण्ड और भेद नीति में कुशल

नीतिशास्त्र में पण्डित, गवेषण आदि में चतुर, कुलीन, श्रुतिसम्पन्न, पवित्र, अनुरागी, धीर, वीर, निरोग, प्रगल्भ, वाग्मी, प्राज्ञ, राग द्वेष रहित, सत्यसन्ध, महात्मा, दृढ़ चित्तवाला, निरामय, प्रजाप्रिय इत्यादि गुणों से युक्त होना आवश्यक बताया गया है ।[55] कथासरित्सागर में उल्लिखित है, मंत्री को राजा के प्रति स्वामीभक्त तथा जनता का शुभेच्छु होना चाहिए ।[56] यद्यपि राज्य के सभी कार्यों के प्रति अंतिम जिम्मेदारी राजा की होती थी, फिर भी वह मंत्रियों की परामर्श मानता था ।[57] प्रत्येक कार्य करने के पूर्व अपने मंत्रियों से विचार-विमर्श करता था ।[58] कुछ इस प्रकार का उद्धरण महाभारत में वर्णित है, राजा उसी प्रकार मंत्रियों पर निर्भर रहता था यथा - जीव जन्तु बादलों पर, ब्राह्मण वेदों पर, स्त्रियां अपने पति पर ।[59] साक्ष्य से ज्ञात है, मंत्रीगण राजा के प्रति स्वामीभक्ति की भावना से कार्य करते थे[59अ]

प्रशासनिक कार्यों में राजा की मदद हेतु मंत्रि परिषद का गठन किया जाता था । जिसमें एक से अधिक मंत्री होते थे ।[60] प्राचीन ग्रन्थों में इनकी संख्या सात-आठ बतायी गई है ।[61] शुक्रनीति नीतिसार में आठ की संख्या प्राय: निश्चित की गई है ।[62] मंत्रियों के चुनाव के सन्दर्भ में शुक्रनीतिमेंउल्लिखित है, मंत्री का चुनाव जाति परिवार के आधार पर नहीं बल्कि योग्यता, चरित्र, कार्य पटुता के आधार पर करना चाहिए ।[63]

कतिपय साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि मंत्रि परिषद को राजा की नियुक्ति का भी अधिकार प्राप्त था । ह्वेनसांग के अनुसार मौखरी प्रशासन में

अंतिम राजा के वंशविहीन मृत्यु के पश्चात मंत्रिपरिषद ने ही प्रशासन हर्षवर्धन को सौपा था।[64] इसी संदर्भ में चाहमानों का एक दृष्टान्त प्रसंगित है, जब द्वितीय पृथ्वीराज पुत्र विहीन मृत्यु को प्राप्त हुआ तत्पश्चात् उसके मंत्रियों ने गुजरात से सोमेश्वर को लाकर अजमेर के सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया था। और उसकी मृत्यु के बाद विधवारानी कर्पूरदेवी को उन्होंने अव्यस्क पुत्र तृतीय पृथ्वीराज की संरक्षिका के पद पर प्रतिष्ठित किया था।[65]

अधीत कालीन विभिन्न राजवंशों के दानपत्रों एवं अभिलेखों में मंत्रियों का उल्लेख मिलता है। अधिकांशतः लेखों में प्रतिपादित राजपदाधिकारियों की तालिका में मन्त्री का स्थान राजा रानी तथा युवराज के उपरान्त प्राप्त होता है जिससे स्पष्ट होता है, राजकीय अधिकारियों में मंत्री का स्थान उच्च एवं महत्वपूर्ण माना जाता था। यथा चन्द्रदेव का चन्द्रावती ताम्रपत्र अभिलेख,[66] गोविन्द का कमौली ताम्रपत्र लेख[67], गोविन्द चन्द्र देव का सेहत मेहत ताम्रपत्र लेख[68], हरिश्चन्द्र का मछलीशहर ताम्रपत्र अभिलेख[69] में राजा रानी युवराज के उपरान्त मंत्री का प्रसंग है। अभिलेखों में महामंत्री का उल्लेख मिलता है जिन्हें मुख्य मंत्री की संज्ञा दी गई है।[70] भवदेव का भुवनेश्वर प्रस्तर अभिलेख में महामंत्री की चर्चा की गई है[71]। चाहमान वंशीय दिल्ली सीवालिक प्रस्तर स्तम्भ अभिलेख में महामंत्री राजकुमार श्री सल्लक्षणपाल का प्रसंग प्राप्त है[72]। चेदि राजाओं के शिलालेखों में महामंत्री का उल्लेख है[73]।

उपरोक्त साहित्यिक एवं अभिलेखीय प्रमाणों से स्पष्ट है कि मंत्री भी राजा की भांति सर्वगुण सम्पन्न होते थे तथा राजकीय कार्यों में उनकी अहम् भूमिका होती थी । मंत्रीगण ■■, राज्य तथा जनहित की भावना से कार्य करते थे । एक प्रकार से मंत्री प्रशासनिक गाड़ी में धुरी की भांति थे ।

अमात्य :- मंत्री की भांति अमात्य की गणना भी राज्य के उच्चपदाधिकारी के रूप में की जाती थी, जो शासन सम्बंधी कार्यों तथा विभिन्न योजनाओं को क्रियान्वित करने का कार्य करते थे । अमात्य शब्द की व्याख्या से स्पष्ट है, अमात्य शब्द अमा से त्यप् प्रत्यय से बना है तथा अमा का अर्थ समीप है जिससे स्पष्ट होता है कि अमात्य सम्भवतः साधारण मंत्री के रूप में कार्य करते थे । डी० सी० सरकार ने भी अमात्य को मंत्री के रूप में माना है ।[74] समराइच्चकहा में अमात्य तथा प्रधान अमात्य का प्रसंग मिलता है जिससे ज्ञात होता है कि इनकी कई श्रेणियाँ थी ।[75]

अभिलेखीय प्रमाणों से अमात्यों की पुष्टि होती है । शशांक कालीन मिदनापुर ताम्रपत्र अभिलेख में अमात्य प्रकीर्णदास का प्रसंग प्राप्त है ।[76] बंगाल से प्राप्त लेखों में उल्लिखित अधिकारियों की सूची में राजामात्य शब्द प्रयुक्त हुआ है ।[77] धर्मपाल के खलीमपुर ताम्रपत्र अभिलेख में राजामात्य का उल्लेख मिलता है ।[78] लक्ष्मणसेन का गोविन्दपुर ताम्रपत्र लेख[79] बल्लालसेन का नैहाटी ताम्रपत्र[80], भोजवर्मन का बीलाव ताम्रपत्र[81] तथा श्रीचन्द्र का रामपाल ताम्रपत्र[82] में राजामात्य का विवरण प्राप्त होता है । देवपालदेव का नालन्दा ताम्रपत्र

लेख में महाकुमार अमात्य का उल्लेख मिलता है ।[83] हर्षकालीन बांसखेड़ा ताम्रपत्र में कुमारामात्य का प्रसंग प्राप्त होता है ।[84] इसी प्रकार का प्रसंग ललितसूर के पांडुकेश्वर ताम्रपत्र में प्रसंगित है ।[85]

उपरोक्त विवरणों से इस तथ्य की पुष्टि होती है, मंत्री की भांति अमात्य भी प्रशासनिक श्रृंखला की महत्वपूर्ण कड़ी थे । इनकी गणना विशिष्ट वर्ग के अन्तर्गत की जाती थी ।[86] राज्य के विभिन्न विभाग उनके अधीन होते थे । उन्हें दी जाने वाली विभिन्न उपाधि सम्मान सूचक उपाधियाँ थी । इसी सन्दर्भ में आर० एस० ने इनकी स्थिति का निरूपण करते हुये मत दिया है, वास्तव में कुमारमात्य एक सम्मान सूचक उपाधी थी, जो उच्च अधिकारियों को यहाँ तक कि महाराजा को भी दी जाती थी ।[87]

पूर्वमध्य युग में प्राप्त प्रशासनिक एवं वित्तीय अधिकार के कारण इनके अधिकार क्षेत्र में वृद्धि के प्रमाण मिलते हैं । अपने क्षेत्र में भौगिग अमात्य के रूप में प्राप्त होते हैं ।[88] कतिपय साक्ष्यों से ज्ञात होता है, अमात्य तथा कुमारामात्य सामन्ती विरूद बन गये थे । हर्षचरित में ऐसे अमात्यों की चर्चा की गई है जिन्हें 'मूर्धाभिषिक्ताश्चामात्यराजान: ' के रूप में अभिषिक्त किया गया है[89], जो अमात्यों के सामन्ती पद को प्रकट करते हैं । कतिपय साक्ष्यों में इनके द्वारा भूमि अनुदान दिये जाने के प्रमाण मिलते हैं । कुमारामात्य महाराजनन्दन द्वारा अपने प्रभु की अनुमति के बिना एक भूमि अनुदान देने का प्रसंग है । ऐसा प्रतीत होता है कि छठी शताब्दी के मध्य तक कुमारामात्य गांवों के

वास्तविक शासक बन बैठे थे और वे किसी से अनुमति लिये बिना दान दे सकते थे ।[90]

राजपुरोहित :- प्रशासनिक संरचना में मंत्री अमात्य की भांति राजपुरोहित का पद भी सम्मान जनक होता था । वह राज्य के धर्म और अर्थ का अनुशासक होता था । भारतीय शासन पद्धति में धर्म विभाग या धार्मिक विषय पुरोहितों के अधीन था । वह राज्यधर्म और नीति का संरक्षक था ।[91] पूर्वकालीन ग्रन्थों तथा कालों में इन्हें पृथक-पृथक नामों से अभिहित किया गया है । इस विभाग के अधिकारी को मौर्यकाल में धर्ममहामात्र, सातवाहन काल में श्रवण महामात्र तथा गुप्त काल में विनयस्थिति स्थापक और राष्ट्रकूट काल में धर्मांकुश कहा जाता था ।[92] मध्यकालीन ग्रन्थ अभिधान चिन्तामणि में पुरोहित को पुरोधा: सौवस्तिक: कहा गया है ।[93] अभिलेखीय साक्ष्यों में राजकीय अधिकारियों की तालिका में पुरोहित का उल्लेख मिलता है । चन्द्रदेव के चन्द्रावती अभिलेख में राजा, राज्ञी, युवराज, मंत्रि, सेनापति के साथ पुरोहित का प्रसंग प्राप्त है ।[94] गहड़वाल के अभिलेख में मन्त्री के बाद दूसरा क्रम पुरोहित का ही मिलता है ।[95] गोविन्दचन्द्र के कमौली ताम्रपत्र अभिलेख में मंत्रि के उपरान्त पुरोहित की चर्चा की गई है ।[96] बंगाल से प्राप्त लेखों में राजपुरोहित को महापुरोहित की संज्ञा दी गई है । लक्ष्मणसेन का मादानगर ताम्रपत्र में राजाधिकारी की सूची में महापुरोहित का उल्लेख है ।[97] लक्ष्मणसेन का गोविन्दपुर ताम्रपत्र लेख में महापुरोहित प्रसंग प्राप्त होता है ।[98]

साक्ष्यों में राजपुरोहित द्वारा विभिन्न धार्मिक कृत्य किये जाने का प्रसंग प्राप्त होता है । पुरोहित राज्य में उपद्रव तथा राजा की व्याधियों की शांति हेतु यज्ञ आदि का अनुष्ठान करता था ।[99] कभी-कभी उसे राज्य हित के लिये दूतकार्य भी करना पड़ता था ।[100] राजा के अभिषेक इत्यादि कार्यों में पुरोहितों की महत्वपूर्ण भूमिका मानी जाती थी । बाण ने लिखा है कि शुभ मुहूर्त में कुल पुरोहित से अभिषेक सम्बंधी सभी मांगलिक कार्य कराये गये और राजा ने स्वयं अपने हाथों मांगलिक जल से परिपूर्ण कलश के मंत्रपूत जल की धार छोड़ते हुये आनन्दपूर्वक चन्द्रापीड का राज्याभिषेक किया ।[101] इस प्रकार का उल्लेख प्राचीन ग्रन्थ रामायण में भी प्राप्त है राम के अभिषेक के अवसर पर कुल पुरोहित एवं वृद्ध मुनि वशिष्ठ ने राम और सीता को रत्न जड़ित सिंहासन पर बैठाया था । निशीथचूर्णि में पुरोहित को धार्मिक कृत्य ﴾यज्ञादि शांति कार्य﴿ करने वाला बताया गया है ।[102] विपाकसूत्र और स्थानांगसूत्र में पुरोहित द्वारा राज्योपद्रव शान्त करने, राज्य और बलका विस्तार करने तथा युद्ध में विजय प्राप्त करने के विशेष तिथियों यथा अष्टमी, चतुर्दशी इत्यादि तिथियों में शांति होम करने का उल्लेख है ।[103] वैदिक ग्रन्थों तथा सूत्र साहित्य में भी मंत्रयोग पूजा इत्यादि के द्वारा विजय प्राप्त करने के लिये राजा के साथ युद्ध क्षेत्र में जाने तथा लम्बे समय तक राजा के यज्ञादि अनुष्ठान में व्यस्त रहने पर पुरोहित द्वारा राज्य कार्य देखने का विवरण प्राप्त होता है ।[104] राजपुरोहित द्वारा सैन्य प्रयाण के अवसर पर

शुभ मुहूर्त का निर्धारण किया जाता है ।[105] पूर्वकालीन तथा पूर्वमध्य कालीन साक्ष्यों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि पुरोहित द्वारा राजकीय कार्यों में हस्तक्षेप करने तथा विजय - अर्थ,धन,यश की प्राप्ति हेतु अनुष्ठान किये जाने की परम्परा कोई नवीन प्रथा न थी अपितु यह क्रम पूर्व काल से मान्य था ।

अधीत कालीन ग्रन्थों में पुरोहितों के विविध गुणों में पारंगत होने के तथ्य मिलते हैं । शुक्रनीतिसार में कहा है कि पुरोहित को युद्ध विद्या का भी ज्ञान होना चाहिए ।[106] मानसोल्लास में राजपुरोहित को त्रयी विद्या दण्डनीति, शक्ति कर्म आदि गुणों का ज्ञाता कहा गया है ।[107] समराइच्च - कहा में उल्लिखित है, पुरोहित को सकलजनों में सम्मानित, धर्मशास्त्र का पण्डित, लोक व्यवहार में कुशल, नीतिवान, वाग्मी, अल्पारम्भ परिग्रह , तंत्र-मंत्र आदि का वेत्ता होना चाहिए ।[108]

सेनापति :- सैनिक अधिकारियों में सेनापति का पद सर्वोच्च माना जाता था । वह सैन्याध्यक्ष होता था । सेनापति को सैन्य अधिकारिन्[109], सर्व - सैन्य अधिकारिन्[110], सैन्यपति[111] इत्यादि नामों से अभिहित किया गया है । आन्तरिक विद्रोह की शांति एवंबाह्य आक्रमण से राज्य की सुरक्षा इत्यादि की व्यवस्था में सेनापति की महत्वपूर्ण भूमिका होती थी । यद्यपि कि सेना का सर्वोच्च अधिकारी राजा होता था उसके नीचे सेनापति[112], महानायक[113], और महायुद्धपति[114] नामक अधिकारी होते थे । बाणभट्ट द्वारा विरचित कादम्बरी तथा हर्षचरित में क्रमशः बलाहक और सिंहनाद जैसे

शूर वीर सेनापतियों का प्रसंग मिलता है ।[115] हर्षचरित में वर्णित है, राज्य वर्धन की मृत्यु के पश्चात हर्षवर्धन ने सेनापति सिंहनाद तथा राजाधिपति स्कन्दगुप्त से परामर्श किया था ।[116] स्पष्ट है कि राजकीय कार्यों में सहयोग के साथ महत्त्वपूर्ण अवसरों पर परामर्श भी देते थे । अधीत कालीन अभिलेखों में सेनापति के अनेक प्रसंग प्राप्त है । धर्मपाल का खलीमपुर ताम्रपत्र में[117], तथा चन्द्रदेव के चन्द्रावती ताम्रपत्र अभिलेख[118], गोविन्द चन्द्र के कामौली ताम्रपत्र अभिलेख[119] उल्लिखित सूची में राजा, राज्ञी, मंत्री के उपरान्त सेनापति का प्रसंग मिलता है, जिससे स्पष्ट होता है कि सेनापति का स्थान उच्च था । बंगाल के पाल राजाओं के शिलालेख में महासेनापति शब्द प्राप्त होता है ।[120] तथा गाहड़वाल अभिलेख में सेनाधिपति पाठ अधिकारियों की सूची में है ।[121]

सेनापति को साक्ष्यों में बलाधिकृत, महाबलाधिकृत, दण्डनायक तथा महादण्ड नायक की संज्ञा भी दी गई है । बाण ने बलाधिकृत के विषय में लिखा है कि इनके आधीन 81 हाथी, 81 रथ, 243 घोड़े तथा 405 पैदल सैनिक होते थे ।[122] उससे उच्च अधिकारी महाबलाधिकृत था ।[123] गुप्त - कालीन अभिलेखों में सेनापति के लिये महाबलाधिकृत, बलाधिकृत तथा महा - दण्ड नायक आदि उपाधियाँ प्रयुक्त की गई हैं ।[124] प्रयाग प्रशस्ति में हरिषेण और तिलभट्ट नामक महादण्डनायकों का उल्लेख किया गया है तथा उच्च कल्पों के लेखों में सेनापति के रूप में शिवगुप्त का नाम प्राप्त होता है ।[125]

जीवितगुप्त का देवबरनार्क लेख में[126] तथा देवपाल के नालन्दा ताम्रपत्र में [127] अभिलेख में सेनापति के स्थान पर महादण्डनायक शब्द प्रयुक्त हुआ है । उपरोक्त प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि आलोचित काल में सेनापति के लिये दण्डनायक तथा महादण्डनायक संज्ञायें प्रयुक्त की गई हैं ।

सान्धिविग्रहिक :- राजनैतिक गतिविधियों में युद्ध और संधि के लिए राजा को सलाह देने वाला यह मंत्री होता था । सामान्य रूप से युद्ध, शांति और संधि विभाग का प्रमुख अधिकारी होता था । साक्ष्यों के अनुशीलन से ज्ञात होता है सांधिविग्रहिक विद्वान, विशिष्ट कूटनीतिज्ञ तथा श्रेष्ठ राज - नीतिज्ञ होता था । यशस्तिलक में वर्णित है कि वे कई भाषाओं को पढ़ लिख ही नहीं सकते थे अपितु कई भाषाओं ज्ञानी भी होते थे ।[128] मानसोल्लास में सोमेश्वर ने सांधिविग्रहिक के गुणों की चर्चा करते हुये बताया है - ये सन्धिविग्रह के तत्व को जानने वाला, सर्वभाषाविद्, लिपिज्ञ, देश-काल विभाग का मर्मज्ञ, आय-व्यय से परिचित तथा बुद्धिमान होते थे ।[129] शुक्र - नीति सार में सांधिविग्रहिक के विषय में महत्वपूर्ण सूचना प्राप्त होती है ।[130] विभिन्न देशों के राजदूतों से सम्पर्क स्थापित कर अपने स्वामी नरेश के समक्ष प्रस्तुत करना, एवं राजकीय पत्र व्यवहार, राजकीय आज्ञा को उत्कीर्ण कराना इत्यादि प्रमुख कर्त्तव्य होता था । सांधिविग्रहिक के विभिन्न कृत्यों का उल्लेख करते हुये याज्ञवल्क्य ने मत दिया है कि प्रबन्ध रचना में वह पटु हुआ करता था,1 उसे शीलपट्ट तथा राजकीय मुद्रा में अंकित ताम्रपट्ट पर राजा

की आज्ञानुसार उसके पूर्वज का परिचय, उसकी अपनी कृतियों का निरूपण आदि सफलतापूर्वक निबद्ध कर उत्कीर्ण कराना रहता था ।[131] प्रस्तुत कथन की पुष्टि मिताक्षरा से भी होती है जिसमें सांधिविग्रहिक का प्रमुख कर्त्तव्य राजाज्ञा को यथावत् संरक्षित करना बताया गया है ।[132] जिनेश्वर सूरी की कृति कथाकोश में वर्णित है, सम्राट ने अपने सांधिविग्रहिक को परिस्थिति के अनुरूप व्यवहार करने का निर्देश देकर भेजा था ।[133] उपरोक्त साक्ष्यों से सान्धिविग्रहिक के कार्यों की पुष्टि होती है ।

साहित्यिक साक्ष्यों के अतिरिक्त पूर्वमध्य कालीन अभिलेखीय प्रमाणों में भी सांधिविग्रहिक के विषय में प्रचुर उल्लेख मिलता है । अर्जुनवर्मन का पिपलिया-नगर ताम्रपत्र अभिलेख में प्रसंगित है, महापंडित विल्हण नरेश अर्जुनवर्मन का सांधि - विग्रहिक सचिव था ।[134] भवदेव का भुवनेश्वर प्रस्तर अभिलेख से ज्ञात होता है, सिद्धान्त, तन्त्र, गणित, अर्थशास्त्र एवं वेदों के ज्ञाता भवदेव राजा हरिवर्मनदेव के सांधिविग्रहिक मंत्री थे । भवदेव ने एक मंदिर और तालाब निर्माण कराया था ।[135] श्री शत्रुभञ्जदेव का केशरी ताम्रपत्र अभिलेख (11वीं शता0) में सांधि - विग्रहिक श्री प्रजापति का उल्लेख मिलता है ।[136] सांधिविग्रहिक द्वारा लेख उत्कीर्ण कराये जाने का अनेक उदाहरण प्राप्त है । महिपाल का हूदला दानपत्र लेख सांधिविग्रहिक महिन्द्र के द्वारा उत्कीर्ण कराया गया था ।[137] परमार कालीन जयवर्मन देव द्वितीय का मान्धाता ताम्रपत्र अभिलेख में जयवर्मन द्वारा नियुक्त सांधिविग्रहिक पंडित श्री मालधर की सम्मति से पंडित गविश के पुत्र

हर्षदेव द्वारा विशुद्ध राजशासन उत्कीर्ण कराये जाने का प्रसंग है ।[138] लक्ष्मणसेन का गोविन्द पुर ताम्रपत्र लेख (12वीं शता०) में सांधिविग्रहिक मंत्री नरायण - दत्त द्वारा लेख उत्कीर्ण कराने जाने का उल्लेख है ।[139] नरेशों के अतिरिक्त उनके अधीन सामन्त भी अपनी राज्यसभा में ऐसे अधिकारियों की नियुक्ति करते थे । कालवन का भोजदेव कालीन यशोवर्मन का ताम्रपत्र से ज्ञात है, भोज - देव के अधीन सामन्त यशोवर्मन का सांधिविग्रहिक ब्राह्मणवंश में उत्पन्न योगेश्वर था जिसने प्रस्तुत लेख उत्कीर्ण कराया था ।[140] इसी प्रकार द्युतिवर्मन का तलेश्वर ताम्रपत्र से ज्ञात है कि दान का दूतक सांधिविग्रहिक प्रमातार सूर्यदत्त था।[141]

साक्ष्यों में महासांधिविग्रहिक का भी उल्लेख मिलता है । परमार वंशीय अर्जुनवर्मन का सिहोरे ताम्रपत्र अभिलेख में महासांधिविग्रहिक राजा सलखण की सम्मति से राजगुरु मदन द्वारा लेख रचे जाने का प्रसंग है ।[142] लक्ष्मणसेन का माधाइनगर ताम्रपत्र लेख (12वीं शता०) में महासांधिविग्रहिक का उल्लेख है ।[143] नारायणपाल देव का भागलपुर ताम्रपत्र अभिलेख[144], वल्लालसेन का नैहाटी ताम्रपत्र अभिलेख[145], मदनपालदेव का मनहली ताम्रपत्र अभिलेख[146], श्रीचन्द्र का रामपाल ताम्रपत्र अभिलेख[147] में राजकीय अधिकारियों की तालिका में महासांधिविग्रहिक का उल्लेख मिलता है । इस प्रकार बंगाल के अन्य लेखों में भी महासांधिविग्रहिक का प्रसंग प्राप्त होता है ।[148] चेदिराजाओं के शिलालेखों में महासांधिविग्रहिक का पाठ है ।[149]

प्रतिहार :- राजकीय कर्मचारियों में प्रतिहार भी एक प्रमुख अधिकारी माना जाता था । समराइच्चकहा में उल्लिखित है कि राजपरिचरों में प्रतिहारी भी एक होता था । सम्भवत: यह पहरा देने वाला कर्मचारी होता था ।[150] इसी ग्रन्थ में महाप्रतिहारी का भी प्रसंग मिलता है ।[151] अभिधानचिन्तामणि में इन्हें अनेक संज्ञाओं से अभिहित किया गया है यथा द्वारस्थ, क्षता, द्वारपालक, दौवारिक, प्रतिहार, उत्सारक, दण्डी ।[152] दशरथ शर्मा ने प्रतिहार का अर्थ द्वारपाल से लगाया है जिसका मुख्य कर्त्तव्य राजा से मिलने वाले लोगों को राजा के सम्मुख प्रस्तुत करना था ।[153] अल्तेकर के अनुसार राजा के सम्मुख दूतों और मिलने वालों को पेश करने का कार्य प्रतिहारी तथा महाप्रतिहारी का होता था ।[154] हर्षचरित में प्रसंगित है, प्रतिहार लोग राजसी ठाट बाट और दरबारी प्रबन्ध की रीढ़ थे ।[155] उक्त कथन से प्रतिहारों की महत्ता की पुष्टि होती है । प्रतिहार के ऊपर महाप्रतिहार[156] तथा महाप्रतिहारी के मुखिया को दौवारिक कहा जाता था ।[157] औपपातिक सूत्र में दौवारिक का उल्लेख मिलता है जो अन्त:पुर के द्वार पर बैठ कर रखवाली का कार्य करता था ।[158]

साहित्यिक साक्ष्यों में प्रतिहारों के विशिष्ट गुणों की चर्चा करते हुये इन्हें विविध गुणों से युक्त बताया गया है । मानसोल्लास में सोमेश्वर ने प्रतिहारी के प्रमुख गुणों की व्याख्या करते हुये लिखा है राजा को उन्नत, रूपवान, दक्ष, मधुभाषी, गर्वरहित सबके चित्त को लुभाने वाले व्यक्ति को

प्रतिहारी नियुक्त करना चाहिए ।[159] अन्य साक्ष्य से ज्ञात है, प्रतिहारी सामंत, महासामंत, मांडलिक, राजा, महाराजा, महाराजाधिराज, चक्रवर्ती सम्राट इत्यादि विभिन्न कोटि के राजाओं के मुकुट और पट्टपहचान कर यथायोग्य सम्मान देने में निपुण होते थे । शुक्रनीतिसार में प्रतिहारी के लक्षणों के विषय में वर्णित है, जो अस्त्र शस्त्र में कुशल, आलसरहित, तथा नम्र होकर सभी का स्वागत और आह्वान करता हो ऐसे व्यक्ति को प्रतिहारी नियुक्त करना चाहिए ।[161]

बहुसंख्यक अभिलेखीय साक्ष्यों में प्रतिहारों की कई श्रेणी यथा प्रतिहार तथा महाप्रतिहार के विषय में साक्ष्य उपलब्ध है । नासिक शिलालेख[162] क्र0 5 वर्मलात के बसंतगढ़ शिलालेख[163], कन्नौज के चन्द्रदेव के चन्द्रावती ताम्रपट्ट[164] में प्रतिहार का उल्लेख है । गोविन्दचन्द्रदेव का कमौली ताम्रपत्र लेख[165] तथा गोविन्दचन्द्रदेव का सेहत मेहत ताम्रपत्र अभिलेख[166] में प्रसंगित सूची में राजा, रानी, मंत्री, पुरोहित के उपरान्त प्रतिहार का क्रम प्राप्त है। जिससे उनकी उच्च स्थिति का संकेत मिलता है । उड़ीसा से प्राप्त शत्रुभंजदेव का केशरी ताम्रपट्ट में प्रतिहार श्री मनोरथ का प्रसंग प्राप्त है ।[167] द्युतिवर्मन के तलेश्वर ताम्रपत्र लेख में प्रतिहार का उल्लेख दान की सूचना प्राप्त करने वाले अधिकारियों में किया गया है ।[168] मदनपाल के काल में जारी गोविन्दचन्द्र देव का बसाही ताम्रपत्र अभिलेख में प्रतिहार श्री गौतम का प्रसंग मिलता है ।[169] जीवित्तगुप्त के द्वितीय के देवबर्नाक प्रस्तर अभिलेख[170], देवपाल का नालन्दा

ताम्रपट्ट[171], ललित्यसूर्य का पंडुकेश्वर ताम्रपत्र अभिलेख[172], शीलादित्य का जैसोर अभिलेख,[173] कल्चुरी वंशीय कर्ण का वाराणसी ताम्रपत्र अभिलेख[174] में महा - प्रतिहार का प्रसंग राजकीय अधिकारियों की तालिका में मिलता है । बंगाल से प्राप्त लेखों यथा मदनपालदेव के मनाहली ताम्रपत्र अभिलेख[175], लक्ष्मणसेन का माधाइ नगर ताम्रपत्र[176], लक्ष्मणसेन का गोविन्दपुर ताम्रपत्र लेख[177] तथा अन्य प्राप्त लेखों में महाप्रतिहार की चर्चा की गई है ।[178] शशांक कालीन मिदनापुर ताम्रपत्र अभिलेख में महाप्रतिहार शुभकीर्ती द्वारा दो द्रोणान् साधारण भूमि क्रय कर भारद्वाज गोत्रीय ब्राह्मण धाम्यस्वामिन को दान दिये जाने का प्रसंग है ।[179] चेदी राजाओं के उत्कीर्ण लेखों में महाप्रतिहार का प्रसंग प्राप्त है ।[180]

<u>भाण्डागारिक :-</u> शासन सत्ता की सुव्यवस्था एवं स्थायित्व हेतु कोष को राज्य के सात आवश्यक तत्वों में एक माना गया है ।[181] कामंदक नीतिसार तथा नीतिवाक्यमृत में कहा गया है कि कोष राज्य की जड़ है, अतः इसकी देख - रेख यत्न पूर्वक करनी चाहिए ।[182] भाण्डागार का अधिकारी भाण्डागारिक कहलाता था ।[183] भाण्डागारिक राजकीय कोषागार और आभूषणों की समुचित देख रेख करता था, तथा उसकी सलाह से भाण्डागार से धन व्यय किया जाता था। यद्यपि भाण्डागार का सर्वोच्च अधिकारी स्वयं राजा ही होता था ।[184] निशीथसूत्र में उल्लिखित है कि भाण्डागार में मणि मुक्ता और रत्नों का संचय किया जाता था ।[185]

भाण्डागारिक अधिकारी की पुष्टि अभिलेखीय साक्ष्यों से भी होती है । अशोक वल्ल कालीन बोधगया अभिलेख में भाण्डागारिक का प्रसंग प्राप्त है ।[186] चन्द्रदेव का चन्द्रावती अभिलेख[187], गोविन्दचन्द्र देव का कमौली ताम्रपत्र[188], गोविन्दचन्द के सेहत मेहत ताम्रपत्र अभिलेख[189] में राज्य के प्रमुख अधिकारियों की कोटि में भाण्डारिक का उल्लेख मिलता है।जिससे स्पष्ट होता है कि भाण्डागारिक भी राजकीय प्रमुख पदाधिकारियों में एक था । उक्त साक्ष्यों के अतिरिक्त अन्य अभिलेखों में इनकी चर्चा की गई है ।[190] नासिक अभिलेख इनका उल्लेख भाण्डागारिक्या के रूप में मिलता है ।[191] करण का वाराणसी ताम्रपत्र अभिलेख में महाभाण्डागारिक का विवरण मिलता है ।[192]

अक्षपटलिक :- प्रशासनिक अधिकारियों में आय व्यय तथा भूमि इत्यादि का ब्योरा रखने वाले अधिकारी को अक्षपटलिक[193], अक्षपटलिक अधिपति[194] की संज्ञा दी गई है । जिन्हें लेखा अधिकारी भी कहा गया है[195] । दशरथ शर्मा का कथन है अक्षपटलिक राज्य का उच्च लेखाधिकारी होता था जिसका मुख्य कर्त्तव्य राज्य की प्रत्येक वस्तु एवं धन के व्यय का हिसाब रखना था[196] । हर्षचरित में ग्राम अक्षपटलिक का उल्लेख मिलता है जिसका प्रयोग सम्भवत: पटवारी के रूप में किया गया है ।[197] राजतरंगिणी में भी अक्षपटलिक का प्रसंग मिलता है ।[198] साक्ष्य से ज्ञात है कि ये अपने कार्य इतने पारंगत होते थे कि राजा के चेहरे के भाव को देखकर उनके विचार को समझ कर तुरन्त अपने बही खाते में लिख लेते थे ।[199]

प्राप्त अभिलेखों में भी इनकी पर्याप्त चर्चा मिलती है जिससे इनकी दो श्रेणियों का ज्ञान होता है यथा अक्षपटलिक तथा महाअक्षपटलिक । चन्द्रदेव के चन्द्रावती ताम्रपत्र अभिलेख[200], गोविन्द चन्द्रदेव के कमौली ताम्रपट्ट[201] गोविन्दचन्द्रदेव का सेहत मेहत ताम्रपट्ट अभिलेख[202], हरिश्चन्द्र का मछलीशहर ताम्रपट्ट अभिलेख[203] में अधिकारियों की तालिका में अक्षपटलिक का प्रसंग मिलता है । नारायणपाल के भागलपुर ताम्रपत्र अभिलेख में महाअक्षपटलिक का उल्लेख मिलता है ।[204] श्रीचन्द्र के पश्चिमबाग ताम्रपत्र अभिलेख[205], लक्ष्मणसेन का माधाइनगर ताम्रपत्र अभिलेख में महाअक्षपटलिक का उल्लेख मिलता है ।[206] दामोदर का मेहार ताम्रपत्र अभिलेख में महाअक्षपटलिक दलएवं का प्रसंग प्राप्त होता है ।[207] हरिश्चन्द्र का मछलीशहर ताम्रपत्र लेख से ज्ञात होता है, महा-अक्षपटलिक ठक्कुर श्री भोगादित्य लेख लिखा था।[208] तथा अन्य लेखों में भी महाअक्षपटलिक का प्रसंग मिलता है ।[209]

<u>विषयपति :-</u> प्रशासनिक वर्ग में विषयपति की भी गणना की जा सकती है । जिन्हें जिला का राज्यपाल कहा गया है ।[210] साक्ष्यों में इन्हें विषयपाल[211], विषयाधिपति[212] की भी संज्ञा दी गई है । गुप्तकालीन एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि विषयपति अपने अधीनस्थ क्षेत्र का उपभोग करता था ।[213] निकट-वर्ती क्षेत्रों में ही विषयपतियों की नियुक्ति स्वयं राजा करता था । इसका उदाहरण अन्तर्वेदी अर्थात गंगा यमुना के दो आब के विषयपति शर्वनाग की नियुक्ति का उल्लेख है ।[214] देवपाल के नालन्दा ताम्रपत्र अभिलेख में विषयपति

की चर्चा की गई है ।[215] धर्मपाल का खलीमपुर ताम्रपत्र अभिलेख में अधिकारियों की सूची में विषयपति का उल्लेख मिलता है ।[216] नारायणपालदेव का भागलपुर ताम्रपत्र लेख में इसी प्रकार का प्रसंग प्राप्त होता है ।[217] पालों के अन्य बहुत से लेखों में भी विषयपति का विवरण उपलब्ध है ।[218] जिससे इनकी प्रशासनिक अस्तित्व का अनुमान लगाया जा सकता है ।

<u>धर्माधिकरणि :-</u> न्यायधीश को धर्माधिकरण[219] कहा गया है । धर्माध्यक्ष, धर्मिक:, धर्माधिकरणी [220]: जो न्याय सम्बन्धी कार्यों का संचालक एवं निरीक्षक होता था ।[221] न्यायिक अधिकारी को धर्मस्थेय भी कहा जाता था ।[222] वह कुलीन ब्राह्मणों में से नियुक्त किया जाता था । इसके अतिरिक्त उसे धर्मशास्त्रज्ञ एवं निष्पक्ष होना अनिवार्य था ।[223] सोमेश्वर ने मानसोल्लास में धर्माधिकारिसभाध्यक्ष के निम्न लक्षण बताए हैं, राग द्वेष से रहित, स्मृति शास्त्रार्थ में कुशल, धर्माधिकारी, लोभरहित, अनिर्भय, सामर्थ्यवान्, विचारशील और दण्डधर ।[224] चण्डेश्वर ठाकुर ने राजनीतिरत्नाकर में इसे प्रड्विवाक की संज्ञा दी है ।[225] बंगाल के अभिलेखों में महाधर्माध्यक्ष का उल्लेख है ।[226] भोजवर्मनदेव का बेलाव ताम्रपत्र अभिलेख[227], वल्लालसेन का नैहाटी अनुदानपत्र,[228] लक्ष्मणसेन का गोविन्दपुर ताम्रपत्र में[229], लक्ष्मणसेन का माधाइनगर ताम्रपत्र में[230] महाधर्माध्यक्ष का उल्लेख है । चेदी राजाओं के शिलालेखों में महाधर्माधिकरणिक उत्कीर्ण है ।[231]

राजवैद्य :- मध्यकालीन साक्ष्यों में राजसभा के अन्तर्गत राजवैद्य की भी चर्चा की गई है । अभिधानचिन्तामणि में वैद्य को कई नामों से अभिहित किया गया है । यथा - दोषज्ञः, भिषक्, आयुर्वेदी, चिकित्सकः, रोगहारी, अगदांगरः[232] सोमेश्वर ने राजवैद्य के राजवैद्य लक्षणों का उल्लेख करते हुये कहा है, मनुष्य, हाथी, घोड़ा, गाय और पक्षियों की चिकित्सा को जाननेवाला, आयुर्वेद के अष्टांगोपचार में निपुण, मन्त्र तन्त्र का सिद्ध तथा रोगों के निदान एवं औषधियों के नामों से पूर्व परिचित पुरूष ही राजवैद्य बनने के योग्य है ।[233] गोविन्दचन्द्र के सेहत मेहत ताम्रपत्र अभिलेख में पदाधिकारियों की सूची में राजवैद्य का प्रसंग प्राप्त होता है ।[234] श्रीचन्द्र के पश्चिम बाग ताम्रपत्र अभिलेख में वैद्य को तीन पाटक भूमि दिये जाने का प्रसंग मिलता है[235] मल्कापुरम प्रस्तर स्तम्भ अभिलेख में वैद्य को दो पुट्टिका भूमि दिये जाने का विवरण है ।[236] स्पष्ट है कि राजा द्वारा अनुदान दिये जाते थे ।

दण्डपाशिक :- राज्य में अपराधिक गतिविधियों को रोक थाम हेतु राज्य की ओरसेअधिकारियों की नियुक्ति की जाती है । जिसमें दण्डपाशिक, दण्डिका का प्रसंग मिलता है।[237] जो पुलिस विभाग का प्रमुख अधिकारी कहलाता था ।[238] इनकी नियुक्ति विभिन्न भागों में की जाती थी । दंडपशिक, देड्योगिक के समान थे जिन्हें पुलिस मजिस्ट्रेड की संज्ञा दी जा सकती है ।[239] वह सतर्कता पूर्वक अपराध का निरीक्षण करता था तत्पश्चात् अपराधी को समुचित दण्ड देता था ।[240] नारायणपालदेव का भागलपुर अभिलेख में दण्डपाशिक को दण्ड

और अपराध का अधिकारी कहा गया है तथा प्रस्तुत लेख में यह भी प्रसंगित है दण्डिका और दण्डपाशिक दोनों ही गृह मंत्रालय से सम्बंधित थे और इनका मुख्य कार्य राजधानी में कानून व्यवस्था स्थापित करना था ।[241] मुकदमे दण्ड - पाशिक के उपरान्त मंत्रिमंडल में पेश किये जाते थे और तत्पश्चात राजा अंतिम निर्णय देता था ।[242] दण्डपाशिक द्वारा चोरों को पकड़ने का फंदाधारण करने की चर्चा पाल, परमार तथा प्रतिहारों के अभिलेखों में मिलती है ।[243] अधीत कालीन बहुसंख्यक लेखों में इन्हें दण्ड और अपराध का अधिकारी स्वीकार करते हुये राज्यकीय अधिकारी के साथ सूचीबद्ध किया गया है ।[244] देवपाल का नालन्दा ताम्रपत्र अभिलेख[245], ललितसूर का पकुकेश्वर ताम्रपत्र लेख[246] में दण्ड - पाशिक का उल्लेख मिलता है । पालों के अन्य लेखों में दशापराधिक, दाण्डिका, दण्डपाशिक का प्रसंग प्राप्त है ।[247]

चौरोद्धरणिक :- साक्ष्यों में चौरोद्धरणिक की चर्चा एक पुलिस अधिकारी के रूप में की गई है, जिसका मुख्य दायित्व चोरी हुई वस्तुओं, सम्पत्ति को खोज बीन करना तथा चोर डाकुओं को पकड़ना था ।[248] याज्ञवल्क्य स्मृति में चौरोद्धारिक का उद्धरण प्राप्त होता है ।[249] आलोच्य कालीन अभिलेखों में चौरोद्धणिक का अनेक प्रसंग मिलता है । बंगाल के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि प्राचीन बंगाल में नागरिकों को चौरोधरण नामक कर देना पड़ता था । चौरोद्धणिक इसी प्रकार के कर ग्रहण विभाग का मुख्य अधिकारी कहलाता था ।[250] उसके द्वारा ग्रहण चौरोद्धरण कर से प्राप्त आय का व्यय चोर-डाकुओं से राज्य की रक्षा करने में

किया जाता था ।[251] जीवित्तगुप्त का देवबरनार्क प्रस्तर अभिलेख में चौरोद्धरणिक, दाण्डिक, दण्डपाशिक का उल्लेख एक साथ प्राप्त होता है ।[252] धर्मपाल के खालीमपुर ताम्रपत्र अभिलेख में चौरोद्धरणिक अधिकारी का प्रसंग प्राप्त है ।[253] देवपाल के नालन्दा ताम्रपत्र[254], नारायणपाल के भागलपुर ताम्रपत्र[255] श्रीचन्द के पश्चिमबाग ताम्रपत्र लेख[256], लक्ष्मणसेन का माधाइनगर ताम्रपत्र अभिलेख[257], सेनसेन के मदनपाड़ा ताम्रपत्र लेख[258] इत्यादि लेखों राजकीय पदाधिकारियों की तालिका में चौरोद्धरणिक का उल्लेख मिलता है । ललितसूर के पंडुकेश्वर ताम्रपत्र में इसी प्रकार का वर्णन प्राप्त है ।[259]

उपरोक्त साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि दण्डपाशिक, दाण्डिका, दशापराधिक, चौरोद्धरणिक, गृहमंत्रालय से सम्बंधित प्रमुख अधिकारी थे । सामान्य रूप से इनकी नियुक्ति राजा द्वारा की जाती थी । इनका मुख्य दायित्व चोर डाकुओं तथा अन्य अपराधिक गतिविधियों से राज्य की सुरक्षा करना था ।

<u>सन्देश वाहक :-</u> राजा के सन्देश वाहक को दूत[260], दूतक[261] प्रणिधि[262] अथवा सन्देश हारक[263] की संज्ञा दी गई है । राजा की वैदेशिक नीति में दूत का महत्त्वपूर्ण स्थान था ।[264] उसका कर्त्तव्य था कि वह शत्रु अथवा मित्र के राज्य में सब बातों की जानकारी रखे तथा राजा का सन्देश पहुँचाना और उसे देश की राजनीति तथा प्रजा के विषय में सभी समाचार देते रहना, इत्यादि उसके मुख्य कार्य थे ।[265] प्राचीन भारतीय शासन पद्धति में दूतकार्य

को बहुत ही महत्वपूर्ण माना गया था । वैदिक काल में अग्नि देवों का दूत और शुक्राचार्य असुरों का दूत था ।[266] रामायण युग में भी दूत द्वारा संदेश भेजे जाते थे ।[267] कौटिल्य के अनुसार वह प्राण संकट में रखकर भी राज्य का हित ही करता था ।[268] वह शत्रु के दोषों को जानता था।अपने राज्य के भेद को नहीं बताता था तथा शत्रु राज्य को दुर्बल देखकर आक्रमण के लिए अपने स्वामी को परामर्श देता था ।[269] मध्यकालीन ग्रन्थों में भी दूत चर्चा की गई है ।[270] तिलकमंजरी में प्रसंगित है कि कमलगुप्त का एक संदेशवाहक हरिवाहन का पत्र लेकर आया था ।[271] खलीमपुर ताम्रपत्र अभिलेख में राजकुमार त्रिभुवन - पाल का उल्लेख दूतक के रूप में प्राप्त होता है ।[272] गोविन्दचन्द्र के सेहत मेहत ताम्रपत्र अभिलेख में दूत का प्रसंग मिलता है ।[273] जीवितगुप्त को देवबर्नाक प्रस्तर अभिलेख[274], ललितसूर के पंडुकेश्वर ताम्रपत्र अभिलेख[275], गोविन्दचन्द्रदेव का चन्दावती ताम्रपट्ट[276], गोविन्दचन्द्र देव के कमौली ताम्रपत्र अभिलेख में दूत की चर्चा की गई है ।[277]

इस प्रकार साम्राज्य के उदय के साथ ही अति प्राचीन काल में दूतों की जो परम्परा चली थी।वह मध्यकाल में भी अबाध रूप से फूलती फलती रही ।

<u>दूत प्रैषणिक :-</u> दूतों को भेजने वाले अधिकारी को दूत प्रैषणिक की संज्ञा दी गई है ।[278] पूर्वमध्य युगीन अभिलेखीय साक्ष्यों में इनकी चर्चा की गई है । देव - पाल के नालन्दा ताम्रपत्र अभिलेख, में दूत प्रैषणिक अधिकारी का प्रसंग प्राप्त है ।[279] नारायणपाल के भागलपुर ताम्रपत्र अभिलेख[280], मदनपाल का मनहली

ताम्रपत्र[281], ईश्वरघोष का रामगंज ताम्रपत्र में दूतप्रैषणिक का प्रसंग मिलता है।[282]
जीवितगुप्त का देवबरनार्क प्रस्तर अभिलेख में दूतप्रैषणिक शब्द प्रयुक्त हुआ है।[283]

लेखवाहक :- प्रशासनिक कार्यों में सुविधा हेतु सन्देश पत्रों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाने के लिये कर्मचारियों की नियुक्ति की जाती थी। जिन्हें लेखवपहक की संज्ञा दी गई है।[284] कतिपय साक्ष्यों में इन्हें लेखहारक भी कहा गया है। हर्षचरित में उल्लिखित है लेखहाकर लेख (पत्र) पहुँचाने का कार्य करता था। इसके सिर पर नीली पट्टी माला की भाँति बँधी रहती थी, जिसके अन्दर लेख रखकर प्रेषित करता था।[285]

अभिलेखीय साक्ष्यों में इन्हें गमागामिक के नाम से अभिहित किया गया है। जिनका कार्य पत्र तथा कागजात ले जाना था जो इस कार्य हेतु प्राय: आते जाते रहते थे।[286] जीवित्तगुप्त द्वितीय का देवबरनार्क प्रस्तर अभिलेख में गमागमिक का उल्लेख है।[287] धर्मपाल के खालीमपुर ताम्रपट्ट लेख में अधिकारी वर्ग में इनकी चर्चा की गई है।[288] देवपाल के नालन्दा ताम्रपत्र[289] नारायणपाल के भागलपुर लेख[290], ईश्वरघोष का रामगंज ताम्रपट्ट में गमागमिक प्रसंग प्राप्त है।[291] उत्तर प्रदेश के गढ़वाल से प्राप्त ललितसूर के पांडुकेश्वर ताम्रपत्र में वर्णित तालिका में गमागमिक का उल्लेख है।[292]

उक्त प्रशासन से सम्बंधित प्रमुख अधिकारियों के अतिरिक्त मध्यम - वर्गी पदाधिकारियों की भी सूचना साक्ष्यों में प्राप्त होती है, जो शासकीय दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण माने जाते थे। प्राप्त साक्ष्यों के आलोक में निम्न

अधिकारी वर्ग का उल्लेख किया जा सकता है -

<u>शौल्किक :-</u> इन्हें राजस्व अधिकारी की संज्ञा दी गई है इनका मुख्य कार्य राजस्व ग्रहण करना था ।[293] याज्ञवल्क्य ने भी शौल्किक के विषय में मत प्रस्तुत किया है ।[294] गुप्त कालीन लेख में इनकी चर्चा मिलती है ।[295] धर्मपाल के खालीमपुर ताम्रपट्ट लेख में शौल्किक अधिकारी का उल्लेख मिलता है ।[296] देवपाल के नालन्दा ताम्रपत्र[297], ललितसूर का पाण्डुकेश्वर ताम्रपत्र[298], श्रीचन्द के पश्चिमबाग ताम्रपत्र लेख में राजाधिकारियों की सूची में शौल्किक का प्रसंग प्राप्त होता है ।[299] बंगाल से प्राप्त लेखों में शौल्किक अधिकारी का विवरण उपलब्ध होता है ।[300] उपरोक्त साक्ष्यों से स्पष्ट है कि वित्त विभाग से सम्बंधित अधिकारी वर्ग में शौल्किक की विशेष भूमिका थी ।

<u>गौल्मिक :-</u> पूर्वमध्य कालीन लेखों में गौल्मिक को काष्ठ और वन विभाग का प्रमुख अधिकारी कहा गया है ।[301] यू० एन० घोषाल ने भी इनकी चर्चा उपरोक्त अर्थानुसार की है ।[302] धर्मपाल के खालीमपुर ताम्रपत्र लेख में शौल्किक गौल्मिक की उल्लेख साथ-साथ मिलता है ।[303] देवपाल के नालन्दा ताम्रपत्र अभिलेख में इसी प्रकार का तथ्य प्राप्त होता है ।[304] इसके अतिरिक्त नारायण पाल के भागलपुर ताम्रपट्ट[305], श्रीचन्द्र के पश्चिमबाग ताम्रपत्र अभिलेख[306], लक्ष्मणसेन का माधाइनगर ताम्रपत्र में गौल्मिक का प्रसंग प्राप्त होता है ।[307]

<u>प्रान्तपाल :-</u> अभिलेखों में प्रयुक्त प्रान्तपाल को राजकीय सीमा रक्षक अधिकारी के रूप में वर्णित किया गया है । जिनका प्रमुख दायित्व सीमा की सुरक्षा

व्यवस्था करना था ।[308] अभिलेखीय साक्ष्यों के अन्तर्गत नारायणपाल के भागल पुर ताम्रपत्र अभिलेख में प्रान्तपाल का उल्लेख है ।[309] ललितसूर के पाण्डुकेश्वर ताम्रपत्र अभिलेख में भी प्रान्तपाल का प्रसंग प्राप्त है ।[310]

<u>कोट्टपाल :-</u> दुर्ग रक्षक अधिकारी को कोट्टपाल की संज्ञा दी गई है ।[311] ललितसूर के पाण्डुकेश्वर ताम्रपत्र अभिलेख में संदर्भित राजकीय पदाधिकारियों की सूची में कोट्टपाल का उल्लेख मिलता है ।[312] श्रीचन्द्र के पश्चिम बाग ताम्रपत्र में भी इसी प्रकार का विवरण प्राप्त होता है ।[313]

उपरोक्त साहित्यिक एवं अभिलेखीय साक्ष्यों के आलोक में विभिन्न राजकीय पदाधिकारियों की विवेचना करने के उपरान्त यह स्पष्ट हो जाता है कि समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग प्रशासनिक कार्यों में संलग्न था । जिनमें कई श्रेणियों के अधिकारी वर्ग सम्मिलित थे । विभिन्न विभागों से सम्बंधित अधिकारियों की पृथक-पृथक भूमिकायें दृष्टिगत होती हैं ।

कतिपय साक्ष्यों से इनकी प्रभाव शक्ति का भी ज्ञान होता है । इस सन्दर्भ में आर० एस० शर्मा का कथन है, सिद्धान्त: सम्राट को राजकीय अधिकारियों को पदच्युत करने का अधिकार प्राप्त था। किन्तु व्यवहारत: ये अधिकारी तथा इनके वंशज अपने अपने क्षेत्रों में इतने शक्तिशाली थे कि अपने-अपने पदों पर सदा बने रहते थे ।[314] इसी ग्रन्थ में उन्होंने यह भी लिखा है कि सातवीं शताब्दी में अधिकारियों को बड़ी-बड़ी सामंतवादी उपाधियाँ दी जाने लगी । इससे उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा और विशेषाधिकार में वृद्धि हुई ।[315] प्रस्तर तथ्य

के सन्दर्भ में उदाहरण भी प्राप्त है । भास्करवर्मन के कोषाध्यक्ष भाण्डागारा - धिकृत दिवाकर प्रभु को महासामंत की उपाधि मिली थी ।[316] हर्षवर्धन के राज्याधिकारी भी इसी उपाधि से विभूषित हुये थे ।[317]

इसके अतिरिक्त विभिन्न पदाधिकारियों के पद सूचक शब्दों में यत्र तत्र महा अथवा वृहद उपसर्ग का प्रयोग इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि पूर्वमध्य कालीन समाज में दफ्तरशाही करण की प्रवृत्ति में पर्याप्त वृद्धि हो रही थी जिसके परिणाम स्वरूप राज्यों की शक्ति क्षीण होती जा रही थी तथा पदाधिकारियों की शक्ति में वृद्धि हो रही थी ।

1- राजतरंगिणी, अध्याय 4, पृ0 140-43, 680, स्टीन का संस्करण, भाग, 1, पृ0 133

2- एपि0 इण्डि0, 4, पृ0 100 - 10

3- सै0 ई0 , 2, पृ0 63-64

4- एपि0 इण्डि0, 17, पृ0 318 एफ. एफ.

5- सै0 ई0, 2, पृ0 273

6- मनु0 7.61

7- अर्थशास्त्र, 1.15

8- हैंडीकी, के0 के0, यशस्तिलक एण्ड इण्डियन कल्चर, पृ0 101

9- समराइच्चकहा, 2, पृ0 140 - 141.

10- सै0 ई0 , 2, पृ0 273, 276, 285, 290, 302, 537.

11- वही, पृ0 107, 342-43, 347, 409-10.

12- वही, पृ0 343, 347, 404.

13- वही, पृ0 26-27, 52 , 112, 127, 136, 165, 173, 217 - 18, 317.

14- वही, पृ0 64, 68, 273, 276, 285, 290, 302.

15- वही, पृ0 83, 124, 128, 136.

16- वही, पृ0 39, 93, 124, 128, 136, 152, 217-18.

17- वही, पृ0 50-51, 72, 75, 83, 253, 268, 270-73.

18- वही, पृ0 36-38, 83, 92, 97, 112-13, 124, 127-28, 132.

19- वही, पृ0 29, 34, 94, 99, 107, 152, 157, 162, 173.

20- वही, पृ0 24-25, 50-51, 75, 83, 92, 97, 124, 128, 288.

21- वही, पृ0 151, 217-18, 279, 281, 285, 290, 302.

22- वही, पृ0 231, 285, 289-90, 302, 524, 534.

23- वही, पृ0 83, 92, 97, 124, 128, 140, 143,299.

24- वही, पृ0 149, 276, 285, 288, 290, 302, 727.

25- वही, पृ0 124, 127, 136.

26- वही, पृ0 343.

27- वही, पृ0 50-51, 68, 73, 75, 83, 93, 97, 124.

28- वही, पृ0 50-51, 64, 68, 72, 75,83, 93, 97, 124, 128.

29- वही, पृ0 51, 72, 75, 84.

30- वही, पृ0 64, 68, 72,75, 83, 93,97, 268, 270, 372-73.

31- वही, पृ0 64, 68, 72, 75, 83, 93, 97, 124, 128, 136.

32- वही, पृ0 83, 268, 270, 426-427.

33- वही, पृ0 217-18, 97, 268-270.

34- वही, पृ0 64, 68, 93, 97, 124-128, 136, 221-22, 224-
अ सी०. बी०. आई. पृष्ठ 305, 273

35- यात्तवल्क्य स्मृति, 1.118, विष्णु स्मृति, 2.12, अत्रि, 14, कृत्यकल्पतरु
गृहस्थकाण्ड, पृ0 253, हेमचन्द्र द्याश्रय महाकाव्य, पृ0 113.

36- एपि0 इण्डि0 , भाग 27, पृ0 278.

37- एपि0 इण्डि0 , भाग 4, पृ0 158.

38- डायनेस्टिक हिस्टी आँफ नादर्न इण्डिया, भाग 2, पृ0 207-17.

39- कादम्बरी, पृ0 26.

40- राजस्थान के अभिलेखों का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 116.

41- कुमारपालचरितसंग्रह काव्य, पृ0 28 (जिन विजय मुनि पुरातत्वाचार्य)

42- एपि0 इण्डि0, भाग 22, पृ0 143.

43- वाटर्स, 2, पृ0 186, 250.

44- वही, 1, पृ0 200, 239, 246.

45- वही, 1, पृ0 300, 343.

46- वही, 1, पृ0 322,. 2, पृ0 252.

47- एपि0 इण्डि0 भाग 9, पृ0 54, "परवल नृपते मुद्रिनः प्रधान ।"

48- जरनल आँफ बाम्बे ब्रांच आँफ रवायल एशियाटिक सोसायटी, 15, पृ0 5.

49- इण्डि0 ऐन्टी0 भाग, 7, पृ0 141.

50- जे0 बी0 आर0एस0, जिल्द 51 , पृ0 136.

51- कामन्दकीय नीतिसार, 4, 414.

52- समराइच्चकहा का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 48.

53- अर्थशास्त्र, 119.

54- मानसोल्लास, 2/2/52-54.

55- व्यवहार भाष्य, 1, पृ0 131; अज्ञातृधर्मकथा, 1, पृ0 3; आदिपुराण 5/7.

56- कथासरित्सागर, 17/46.

57- अर्थशास्त्र, 1.15; देखिए वृहतकल्पभाष्य, 1, पृ0 113.

58- समराइच्चकहा, 2, पृ0 151.

59- महाभारत, उद्योग पर्व, 37-38.

59(अ) समराइच्चकहा का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० 48.

60- इण्डि० एपि० ग्लोस०, पृ० 198; समराइच्चकहा, 2, पृ० 150-51.

61- मनु, 7/54; महाभारत, 12.85.

62- शुक्रनीतिसार, 2, 71-72.

63- शुक्रनीतिसार, 2, 54-55. (कार्ले एडीसन)

64- वार्ट्स, 1, पृ० 343.

65- भारतीय सामंतवाद, हिन्दी अनुवाद, पृ० 199.

66- से० ई०, 2, पृ० 273-74.

67- वही, 2, पृ० 283.

68- वही, 2, पृ० 288-89.

69- वही, पृ० 302.

70- से० ई० 2, पृ० 107, 342-43, 409-10.

71- से० ई०, 2, पृ० 107.

72- से० ई० 2, पृ० 409-10.

73- एपि० इण्डि०, जि० 11, पृ० 41.

74- इण्डि० एपि० ग्लोस०, पृ० 17.

75- समराइच्चकहा का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० 60.

76- से० ई०, 2, पृ० 26.

77- सी० बी० आई०, 100, 179, 202, 215, 224, 238, 261, 280, 291, 297, 305, 325.

78- सै0 ई0 2, पृ0 63-64.

79- सी0 बी0 आई0, पृ0 273.

80- वही, पृ0 261.

81- वही, पृ0 238.

82- वही, पृ0 221.

83- सै0 ई0 2, पृ0 71-72.

84- वही, पृ0 221.

85- सै0 ई0 , 2, पृ0 270.

86- भारतीय सामंतवाद, हिन्दी अनुवाद, पृ0 21.

87- वही, पृ0 21.

88- सी0 आई0 आई0, जिल्द 3, न0 23, पंक्ति 18-20.

89- हर्षचरित का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 112.

90- भारतीय सामंतवाद, पृ0 21-22.

91- प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृ0 152.

92- वही, पृ0 152.

93- अभिधानचिन्तामणि, तृतीय काण्ड, श्लोक पृ0 384.

94- सै0 इं0, 2, पृ0 273-74.

95- एपि0 इण्डि0, जिल्द 4, पृ0 105.

96- सै0 इं0, 2, पृ0 283.

97- सै0 इं0 2, पृ0 125.

98- सी0 बी0 आई0, पृ0 273, 325.

99- समराइच्चकहा का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 62.

120- सी0 बी0 आई0, पृ0 180, 202, 215, 224, 239, 261, 273, 280, 291, 297, 305, 326, 362.

121- एपि0 इण्डि0, जि0 4, पृ0 105; इण्डि0 ऐन्टी0, जि0 18, पृ0 15.

122- हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 143; कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 316, 305.

123- कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 214, 220.

124- सी0 आई0 आई, 3, पृ0 28, 128, 3, पृ0 30, 134, 3.10.10; उपाध्याय वासुदेव, गुप्त अभिलेख, पृ0 140.

125- सी0 असई0 आई0, 3, पृ0 28, 128, 3, पृ0 30, 134.

126- से0 ई0, 2, पृ0 50-51.

127- वही, पृ0 71-72.

128- यशस्तिलक, पृ0 740.

129- मानसोल्लास, विंशति, 2, अध्याय 2, श्लोक 127-130.

130- शुक्रनीतिसार, 4, श्लोक 1066

131- याज्ञवल्क्य स्मृति, 1, 319-20.

132- मिताक्षरा, 1, 319.

133- राजस्थान थ्रू दी ऐजस, पृ0 318.

134- इन्सक्रिप्सन्स आफ इम्पीरियल परमारस, पृ0 318.

135- से0 ई0 2, पृ0 107.

136- वही, पृ0 152.

137- हिस्टोरिकल इन्सक्रिप्सन्स ऑफ बंगाल, 3, 70, 236.

138- एपि0 इण्डि0, 9, पृ0 119.

140- इन्सक्रिप्सन्स आॅफ इम्पीरियल परमारज, पृ0 79.

141- से0 ई0 , 2, पृ0 220.

142- इंस क्रिप्सन्स आॅफ इम्पीरियल परमारज, पृ0 247.

143- कापर्स आॅफ बंगाल इन्सक्रिप्सन्स, पृ0 280.

144- वही, 799.

145- वही, पृ0 262.

146- वही, पृ0 215.

147- वही, पृ0 224.

148- वही, पृ0 238, 261, 264, 270, 273, 280, 291, 294, 297, 301, 305, 325.

149- एपि0 इण्डि0, जि0 11, पृ0 41.

150- समराइच्चकहा का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 70.

151- वही,

152- अभिधानचिन्तामणि, तृतीय काण्ड, श्लोक 10.385.

153- राजस्थान थ्रू दि ऐजस, पृ0 320.

154- प्राचीन भारतीय शासन पद्धति

155- हर्षचरित का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 44.

156- वही, पृ0 44.

157- वही, पृ0 44.

158- औपपातिकसूत्र, 9, पृ0 25.

159- मानसोल्लास, 2/2/126.

161- शुक्रनीतिसार, 2/173, शस्त्रास्त्र कुशलोयस्तु दृढांगश्च निरालसः
यथायोग्यं समाहूयात्प्रनम्र प्रतिहारकः ।।

162- एपि0 इण्डि0, जि0 8, पृ0 73.

163- वही, जि0 11, पृ0 181, 192.

164- सै0 ई0, 2, पृ0 273-74.

165- वही, पृ0 283.

166- वही, पृ0 288-89.

167- सै0 ई0, 2, पृ0 152.

168- वही, पृ0 217.

169- वही, पृ0 279-281.

170- वही, पृ0 50-51.

171- वही, पृ0 72.

172- सै0 ई0 2, पृ0 268.

173- एपि0 इण्डि0, जि0 22, पृ0 117.

174- सै0 ई0, 2, पृ0 343.

175- सी0 बी0 आई0, पृ0 215.

176- वही, पृ0 280.

177- सी0 बी0 आई0, पृ0 273.

178- वही, पृ0 83, 179, 202, 215, 224, 239, 262, 280, 291, 298, 305, 362.

179- सै0 ई0 , 2, पृ0 25

180- एपि0 इण्डि0, 2, पृ0 41.

181- अर्थशास्त्र, 6, 1.

182- कामन्दक नीतिसार, 31/33, नीतिवाक्यामृत, 21/5

183- समराइच्चकहा का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 63; इण्डि0 एपि0 ग्लोस0, पृ0 50.

184- वही,

185- निशीथसूत्र, 9/7

186- से0 ई0, 2, पृ0 149.

187- वही, पृ0 276.

188- वही, पृ0 283.

189- वही, पृ0 288-89.

190- से0 ई0, 2, 302, 727, 728.

191- एपि0 इण्डि0, जि0 8, पृ0 91.

192- से0 ई0, पृ0 343.

193- एपि0 ग्लोस0, पृ0 14.

194- वही, पृ0 14.

195- वही, पृ0 14.

196- राजस्थान थ्रू दि ऐजस, पृ0 319.

197- हर्षचरित , 7,

198- राजतरंगिणी, 5, 301, 397, 98.

199- राजस्थान थ्रू दि ऐजस, पृ0 319; धर्मशास्त्र का इतिहास, जि0 3, पृ0 143.

200- से0 ई0, 2, पृ0 273-74.

201- वही, पृ0 283.

202- वही, पृ0 289.

203- वही, पृ0 302.

204- वही, पृ0 83.

205- वही, पृ0 92-93.

206- वही, पृ0 124.

207- वही, पृ0 140.

208- सै0 ई0, 2, पृ0 304.

209- वही, 343, 378-85.

210- इण्डि0 एपि0 ग्लोस0, पृ0 378.

211- वही, पृ0 372.

212- वही, पृ0 378, इण्डि0 ऐन्टी0 जि0 5, पृ0 114.

213- सी0 आई0 आई0, भाग 3, न0 16, पंक्ति 4-5.
अन्तर्त्वेंधाम भोगाभिवर्द्धये वर्त्तमाने ।

214- वही, पंक्ति, 3-4.

215- सै0 ई0 2, पृ0 71-72.

216- वही, पृ0 63-64.

217- सी0 बी0 आई0, पृ0 167.

218- वही, 202,215, 224, 291, 298, 305, 325, 363.

219- जे0 बी0 आर0 एस0, पृ0 139.

220- अभिधानचिन्तामणि, तृतीय काण्ड 5, 6.388

222- राजस्थान थ्रू दि ऐजस, पृ0 320.

223- जे0 बी0 आर0 एस0, पृ0 139; विष्णुधर्मोत्तरा: 2/24/24-25

224- मानसोल्लास, भाग 2; विंशति 2, अध्याय 2, श्लोक 93-94.

225- राजनीति रत्नाकर, पृ0 16.

226- सी0 बी0 आई0, पृ0 297, 305, 325.

227- वही, पृ0 238.

228- वही, पृ0 261.

229- वही, पृ0 273.

230- वही, पृ0 280.

231- इपि0 इण्डि0, जि0 2, पृ0 41.

232- अभिधानचिन्तामणि, तृतीय काण्ड, श्लोक 2.136

233- मानसोल्लास, 2/2/138-45.

234- सै0 ई0 2, पृ0 289.

235- सै0 ई0, 2, पृ0 93.

236- वही, पृ0 575.

237- इण्डि0 एपि0 ग्लोस0, पृ0 81.

238- वही,

239- एपि0 इण्डि0, 13, पृ0 339

240- समराइच्चकहा का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 85.

241- सी0 बी0 आई0, पृ0 181.

242- समराइच्चकहा का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 85.

243- हिस्ट्री आॅफ बंगाल, भाग 1, पृ0 288; एपि0 इण्डि0 19, पृ0 73, 9, पृ0 6.

244- से0 ई0 2, 50-51, 68, 72, 75, 83, 93, 97, 124, 128, 136, 157, 160, 217.

245- से0 ई0, 2, पृ0 71-72.

246- वही0 पृ0 268.

247- सी0 बी0 आई0 129, 202, 215, 224, 239, 305.

248- इण्डि0 एपि0 ग्लोस0, पृ0 72; सी0 आई0 आई0, जि0 3, पृ0 216.

249- याज्ञवल्क्य स्मृति, 2, पृ0 271.

250- सी0 बी0 आई0 पृ0 180.

251- वही,

252- से0 ई0 2, पृ0 50-51.

253- वही, पृ0 64.

254- वही, पृ0 7.

255- वही, पृ0 80-83

256- वही, पृ0 93.

257- वही, पृ0 124.

258- वही, पृ0 268.

259- से0 ई0 2, पृ0 268.

260- इण्डि0 एपि0 ग्लोस0, पृ0 103; अभिधानचिन्तामणि, तृतीय काण्ड, श्लोक, 5.398.

261- इण्डि0 एपि0 ग्लोस0, पृ0 103; एपि0 इण्डि0 जि0 4, पृ0 250.

262- जे0 बी0 आर0 एस0, जि0 51, पृ0 148.

263- अभिधानचिन्तामणि, तृतीय काण्ड, श्लोक, 5.398.

264- जे0 बी0 आर0 एस0, जि0 51, पृ0 148.

265- वही,

266- तैत्तिरीय संहिता, 2/5/8/7.

267- रामायण, अयोध्या काण्ड, 81/11.

268- अर्थशास्त्र, 1/16.

269- वही,

270- सभाशृंगार, पाँचवा सभा वर्णक, पृ0 58.

271- तिलकमंजरी, सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 31.

272- से0 इ0 2, पृ0 63

273- से0 इ0 2, पृ0 283-289.

274- वही, पृ0 50-51.

275- वही, पृ0 268.

276- वही, पृ0 273.

277- वही, पृ0 285.

278- इण्डि0 एपि0 ग्लोस0, पृ0 104.

279- से0 इ0 2, पृ0 71-72.

280- वही, पृ0 85.

281- सी0 बी0 आई0 पृ0 215.

282- वही, पृ0 363.

283- <u>से0 ई0</u>, 2, पृ0 51.

284- <u>समराइच्चकहा का सांस्कृतिक अध्ययन</u>, पृ0 361-62, 6, पृ0 535, 8, पृ0 814

285- <u>हर्षचरित का सांस्कृतिक अध्ययन</u>, पृ0 89.

286- <u>सी0 बी0 आई0</u>, पृ0 181.

287- <u>से0 ई0</u> 2, पृ0 51.

288- <u>से0 ई0</u> 2, पृ0 65.

289- वही, पृ0 72.

290- वही, पृ0 84.

291- <u>सी0 बी0 आई0</u>,पृ0 363.

292- <u>से0 ई0</u>, 2, पृ0 270.

293- <u>इण्डि0 एपि0 ग्लोस0</u>, पृ0 307.

294- <u>याज्ञवल्क्य स्मृति</u> 2, पृ0 173; <u>हिस्ट्री ऑफ रिवन्यू सिस्टम</u>, पृ0 246.

295- <u>सी0 आई0 आई0</u>, जि0 3, पृ0 50-52.

296- <u>से0 ई0</u> 2, पृ0 64.

297- वही, पृ0 71-72.

298- वही, पृ0 268-70.

299- वही, पृ0 93.

300- <u>सी0 बी0 आई0</u>, पृ0 100, 129, 181, 202, 215, 224, 363.

301- <u>सी0 आई0 आई0</u>, जि0 3, पृ0 50; <u>इण्डि0 एपि0 ग्लोस0</u>, पृ0 113.

302- <u>हिस्ट्री ऑफ रिवन्यू सिस्टम</u>, पृ0 246.

303- से0 ई0 2, पृ0 64-65.

304- वही, पृ0 72.

305- वही, पृ0 83.

306- वही, पृ0 93.

307- वही, पृ0 128.

308- इण्डि0 एपि0 ग्लोस0, पृ0 256.

309- से0 इं0, 2, पृ0 83.

310- से0 ई0, 2, पृ0 270.

311- इण्डि0 एपि0 ग्लोस0, पृ0 161.

312- वही , से0 ई0, 2, पृ0 270.

313- वही, पृ0 93.

314- भारतीय सामंतवाद, हिन्दी अनुवाद, पृ0 22.

315- वही, पृ0 22.

316- पाण्डे, आर0 बी0, हिस्टोरिकल एण्ड लिटरेरी इन्सक्रिप्सन्स, न0 56, पंक्ति, 50.

317- भारतीय सामंतवाद, हिन्दी अनुवाद, पृ0 23.

अष्टम अध्याय

==========

व्यवसायिक संगठन

व्यवसायिक संघटन

प्राचीन भारत के आर्थिक इतिहास में विभिन्न आर्थिक संघठनों एवं वृत्ति संघ व्यवस्था का उदय एक महत्वपूर्ण प्रसंग है । इस व्यवस्था के अन्तर्गत विभिन्न व्यवसायिक, व्यापारिक एवं शिल्पी समुदाय परस्पर संघठित होकर एक संघठित ईकाई के रूप कार्यरत थे । इस प्रकार वृत्तिसंघ व्यवस्था ने केवल व्यापार, व्यवसाय एवं शिल्प के क्रमिक विकास हेतु ही सहयोग नहीं प्रस्तुत किया अपितु एक स्वतन्त्र और क्रियाशील संघठन के रूप में समाज के अन्य पक्षों को भी प्रभावित किया ।

प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर विभिन्न समुदायों की विवेचना के उपरान्त उनके आर्थिक संघठन की चर्चा एक अनिवार्य तथ्य है । आर्थिक संघठन के अध्ययन के बिना व्यवसायिक वर्गों का प्रसंग अधूरा सा प्रतीत होता है ।

पूर्वमध्य कालीन साहित्यिक एवं अभिलेखीय साक्ष्यों में अनेक व्यवसायिक संघठनों का उल्लेख मिलता है, जिन्हें श्रेणी, गण, पूग, देसी, निगम, संघ, समुदाय वर्ग इत्यादि संज्ञायें दी गई हैं । उपरोक्त आर्थिक संघठन के सन्दर्भ में शास्त्रकारों ने अपने - अपने मतों का प्रतिपादन किया है, जिसके आधार पर इनकी व्यवसायिक पृष्ठभूमि का अंकन किया जा सकता है । प्राप्त साक्ष्यों के आलोक में आर्थिक संघठनों की पृथक-पृथक धरातल पर विवेचना प्रस्तुत की जा सकती है ।

<u>श्रेणि :-</u> आर्थिक संघ के रूप में विद्यमान श्रेणि कोई नवीन व्यवस्था नहीं थी। श्रेणि का उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है ।[1] कौटिल्य ने श्रेणि को कर्मकार एवं व्यापारी का समूह कहा है ।[2] अमरकोष में उल्लिखित है कि श्रेणि एक जाति

के शिल्पकारों का समूह है ।[3] मनुस्मृति के भाष्यकार मेधातिथि के अनुसार श्रेणी एक प्रकार का व्यवसाय करने वाले लोगों का समूह था यथा कारू, वणिक, वेदज्ञ, ब्राह्मण इत्यादि ।[4] याज्ञवल्क्य ने भी इस शब्द का प्रयोग विभिन्न स्थानों पर किया है । याज्ञवल्क्य स्मृति के भाष्यकार विज्ञानेश्वर ने श्रेणी का अर्थ स्पष्ट करते हुये कहा है, एक कर्मप्रवृत एक जाति तथा नाना जाति के लोगों का समूह ही श्रेणी है ।[5] वीरमित्रोदय में भी एक शिल्प पर जीवन यापन करने वाले वर्ग के संगठन को श्रेणी की संज्ञा दी गई है ।[6] चण्डेश्वर ने सामान जाति द्वारा एक प्रकार का व्यवसाय करने वाले समूह को श्रेणी कहा है ।[7] कात्यायन ने श्रेणी के सन्दर्भ में मत प्रतिपादित किया है, कारू, शिल्पी इत्यादि का समूह ही श्रेणी कहलाता था ।[8] विश्वरूप का कथन है कि श्रेणी कारू कारों का समुदाय था ।[9] देवन्नभट्ट का कथन है, श्रेणी 18 निम्न जाति का संगठन है यथा रजक ।[10] वैजयन्तीकोष में श्रेणी का तात्पर्य समान जाति और व्यवसाय में निहित व्यक्तियों का संगठन कहा है ।[11] इसी सन्दर्भ में रमेशचन्द्र मजूमदार का कथन है कि श्रेणी वह विशिष्ट शब्द है, जो व्यापारियों एवं शिल्पियों के संगठन का परिचायक है ।[12]

उपरोक्त साहित्यिक साक्ष्यों के साथ-साथ प्राप्त अभिलेखीय प्रमाणों में भी श्रेणी शब्द का प्रयोग समान व्यवसाय करने वाले समुदाय के लिये किया गया है । जिनकी चर्चा आगे प्रस्तुत की जा रही है ।

<u>गण :-</u> गण शब्द का प्राचीनतम् प्रसंग वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है ।[13] कौटिल्य के अर्थशास्त्र में सर्वप्रथम गण शब्द कारू और शिल्पकारों के संगठन के लिये प्रयुक्त हुआ है ।[14] विष्णु स्मृति एवं नारद स्मृति में गण का उल्लेख मिलता है ।[15]

कात्यायन का कथन है, गण ब्राह्मणों का समुदाय था ।[16] मेधातिथि ने गण शब्द की अर्थाभिव्यक्ति करते हुये विचार प्रस्तुत किया है, कि वास्तव में गण,वणिक, कारू और कुशीलव का समूह है ।[17] विज्ञानेश्वर ने मत प्रतिपादित किया है कि गण ऐसे व्यक्तियों का समूह था जो एक प्रकार के व्यवसाय में संलग्न थे यथा सिपाही ।[18] विश्वरूपाचार्य ने गण की व्याख्या करते हुये कहा है कि गण व्यापारियों का एक समूह था ।[19] स्वामीराज के नागर-धान अभिलेख में महा - मात्र गण का उल्लेख मिलता है । प्रस्तुत तथ्य से हस्तिचालक के गण की पुष्टि होती है ।[20] चण्डेश्वर ने भी कात्यायन के मत का समर्थन करते हुये ब्राह्मणों के समूह को गण की संज्ञा दी है ।[21] स्मृतिचन्द्रिका के अनुसार गण परिवारों का एक समूह था ।[22] अभिलेखीय साक्ष्यों में गण का उल्लेख मिलता है । कुमारगुप्त के मन्दसौर[23] अभिलेख में 'मालवगण सति' शब्द प्रयुक्त हुआ है ।[24] बैजनाथ के द्वितीय प्रशस्ति में तौलिक समुदायों के लिये गण शब्द प्रयुक्त हुआ है ।[25]

पूग :- साक्ष्यों में उल्लिखित 'पूग' शब्द की व्याख्या प्राचीन तथा मध्यकालीन शास्त्रकारों ने अपने - अपने मतानुसार प्रस्तुत की है । कौटिल्य के अर्थशास्त्र में पूग शब्द का उल्लेख जनसमुदाय के समूह के रूप में किया गया है ।[26] याज्ञवल्क्य ने भी पूग का उल्लेख किया है, जिसका भाष्य करते हुये मिताक्षरा का कथन है, कि विभिन्न वृत्तियां अपनाकर एक ही नगर अथवा ग्राम में निवास करने वाले विभिन्न जाति के लोगों का वर्ग पूग था ।[27] चण्डेश्वर ने पूग को विभिन्न जाति के लोगों का समूह और जो विभिन्न प्रकार का व्यापार करते थे ।[28] वीर - मित्रोदय में हाथी व अश्व पर चढ़ने वाले लोगों के समूह को पूग कहा गया है ।[29]

कात्यायन के अनुसार वणिकों के समूह को पूग की संज्ञा दी गई थी ।[30] स्मृति - चन्द्रिका में भी अश्व व हाथियों के वाक्क को पूग के उदाहरण के अन्तर्गत माना है ।[31] विश्वरूप ने भिन्न मत प्रस्तुत किया है, उनके अनुसार यह ब्राह्मणों का समूह था ।[32]

वास्तव में पूग एक आर्थिक संगठन था, इस संघठन के अन्तर्गत विभिन्न व्यवसाय से सम्बधित तथा साथ ही साथ विभिन्न जाति के लोग सम्मिलित थे ।

<u>देसी :-</u> पूर्वमध्य कालीन अभिलेखों में प्रसंगित 'देसी ' शब्द श्रेणि के नये पर्याय के रूप में प्राप्त होता है । डी0 सी0 सरकार इस शब्द को स्थानीय व्यापारियों की श्रेणि के रूप में व्याख्या करते हैं ।[33] सर्वप्रथम देसी शब्द नवीं शताब्दी के पेहोवा अभिलेख में प्राप्त होता है । प्रस्तुत लेख 'व्युवहरक देसी ' शब्द अश्व व्यापारियों की श्रेणि के सन्दर्भ में प्रयुक्त हुआ है और इनके द्वारा धार्मिक दान दिये जाने का भी उल्लेख है ।[34] जी0 व्यूहलर ने उपरोक्त शब्द का अनुवाद श्रेणि प्रधान के रूप में किया है ।[35] लेकिन यह अर्थ अधिक प्रभावपूर्ण नहीं है । (973 ई0)के हर्ष प्रस्तर अभिलेख में नमक व्यापारियों की देसी द्वारा शाखम्भारी में प्रत्येक कूटक नमक पर एक विशोपक दिये जाने का वर्णन है ।[36] दूसरे विद्वान द्वारा प्रस्तुत लेख में प्रसंगित देसी को श्रेणि माना गया है ।[37] कल्चुरि लक्ष्मणराज द्वितीय के करितलाई प्रस्तर अभिलेख {10 वीं शता0} में मद्य विक्रेताओं की देसी द्वारा मंदिर को दिये जाने वाले मद्य विक्रय की मात्रा में वृद्धि के संकेत मिलते हैं ।[38] नाडलाई अभिलेख {1202} में उल्लिखित है, अभिनवपुरी, बदारी और नाडलाई के वनजारकों ने एक देसी में मिलकर आदिनाथ मंदिर को दान दिया था ।[39] उपरोक्त साक्ष्यों के अतिरिक्त

दक्षिण भारत से प्राप्त पूर्वमध्य कालीन अभिलेखों में प्रसंगित देसी, परदेसी, नाना - देसी, उभयनाना देसी शब्दों के सन्दर्भ में आर0 नरसिम्भराव ने मत प्रतिपादित किया है कि व्यापारियों की दूसरी संस्था एवं संघठन की भांति देसी भी एक व्यापारिक श्रेणि थी, जो संघीय आधार पर गठित की गई थी ।[40] साहित्यिक ग्रन्थ कुवलयमाला में प्रयुक्त देसी शब्द का साम्य व्यापारियों के संघ से किया है ।[41]

उपरोक्त तथ्यों के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि श्रेणि की भांति देसी भी व्यापारियों का एक संघ था ।

<u>नैगम :-</u> श्रेणि, पूग, गण इत्यादि की भांति नैगम तथा निगम शब्द की कई व्याख्या की गई है । डी0 सी0 सरकार ने नैगम की अर्थाभिव्यक्ति नगर निवासी तथा व्यापारी के रूप में की है ।[42] अमरकोश तथा अभिधानचिन्तामणि जैसे ग्रन्थों में नैगम शब्द व्यापारियों, वणिक् के पर्याय के रूप में प्रयुक्त हुआ है ।[43] स्मृतियों में भी नैगम शब्द का उल्लेख श्रेणि, पूग, गण इत्यादि के साथ किया गया है, जिससे प्रतीत होता है नैगम भी एक आर्थिक संघ के रूप में विद्यमान था ।[44] कात्यायन के मतानुसार नैगम एक शहर में रहने वाले कई प्रकार के निवासियों का समूह था ।[45] वृहत्कल्पसूत्रभाष्य के विश्लेषण के अनुसार मोतीचन्द्र का कथन है कि नैगम महाजनों और धनराशि लेन-देन की एक व्यवस्था थी । ये दो प्रकार के हुआ करते थे, एक महाजनों द्वारा बसाया गया था, दूसरा उन व्यापारियों का था, जो दूसरे व्यापार में संलग्न थे ।[46] विश्वरूपाचार्य ने नैगम शब्द को परिभाषित करते हुये मत प्रस्तुत किया है, यह कारवां व्यापारियों की एक संस्था थी ।[47] अपरार्क के अनुसार नैगम विभिन्न जातियों के व्यापारियों का एक समुदाय

था, जो व्यापार के निमित्त एक साथ विदेशों को जाया करते थे ।[48] स्मृति - चन्द्रिका में भी नैगम शब्द कारवाँ व्यापारी के प्रसंग में प्रयुक्त हुआ है ।[49]

साहित्यिक साक्ष्यों के अतिरिक्त नैगम तथा निगम शब्द का प्रयोग विभिन्न पुरातात्त्विक साक्ष्यों में किया गया है । बसाढ़ ﴾ प्राचीन वैशाली ﴿ से प्राप्त मिट्टी के मुहरों से आर्थिक संघठनों पर प्रकाश पड़ता है । उनमें से कई पर लेख यथा - श्रेणि, सार्थवाह , कुलिक , निगम, श्रेष्ठि कुलिक निगम, श्रेष्ठि निगम कुलिक निगम इत्यादि ।[50] इसके अतिरिक्त विभिन्न अभिलेखों में भी निगम तथा नैगम का उल्लेख हुआ है ।[51]

प्रो० देवदत्त रामकृष्ण भंडारकर का मत है, इस शब्द से उसका साधारण अभिप्राय नगर से लेना चाहिए ।[52] रमेशचन्द्र मजूमदार ने भंडारकर के मत को स्वीकार किया है । तथा अपने मत के समर्थन में ग्वालियर अभिलेख का उद्धरण प्रस्तुत करते हुये कहा है, गुप्त कालीन भारत में अनेक नगरों में श्रेणियों के शक्ति - शाली संघठन थे, जिन्हें शासकीय अधिकार प्राप्त था ।[53]

उपरोक्त साहित्यिक एवं अभिलेखीय प्रमाणों में निगम, नैगम के सन्दर्भ में उल्लिखित तथ्यों की समीक्षा के उपरान्त हम यह कर सकते हैं कि नैगम का प्रयोग कई अर्थों में किया गया है यथा व्यापारी, महाजनों, सार्थवाह, तथा नगर वा शहर के निवासी । परन्तु वास्तव में ऐसा प्रतीत होता है कि नैगम नैगम: तथा निगम एक औद्योगिक एवं व्यापारिक संस्था थी । इसी सन्दर्भ में प्रो० शिवेश भट्टाचार्य ने मतानुसार कि नैगम, निगम: प्रमुख हुआ करते थे ।

या एक निगम के सदस्य होते थे जो कि एक व्यापारिक एवं औद्योगिक संस्था थी ।[54]

संगठित व्यवसायिक वर्ग :- प्राप्त साक्ष्यों के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है, व्यवसायिक पृष्ठभूमि में श्रेणी संगठनों की विशेष भूमिका है । विभिन्न व्यवसायिक समुदाय आर्थिक संगठनों के रूप में संगठित थे । इनकी पुष्टि आधीतकालीन साहित्यिक एवं अभिलेखीय साक्ष्यों से होती है । विज्ञानेश्वर ने अश्व विक्रेता, बुनकर, चर्मकार, तम्बोलिक, इत्यादि की श्रेणी का उल्लेख किया है ।[55] कथाकोशप्रकरण में जिनेश्वर सूरी ने सुवर्णकार, कुम्भहार, रजक तथा अन्य शिल्पियों की श्रेणी को सूचीबद्ध किया है ।[56] त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित[57] तथा जम्बूद्वीप प्रशस्ति [58] में विभिन्न व्यवसायिक समुदायों की श्रेणी का उल्लेख मिलता है । यथा कुम्भहार, पट्टैला (बुनकर) सुवर्णकार, सूपकार (रसोइया) गंधव (गायन), नाई, मालाकार, रस्सी बनाने वाले, तम्बोलि, चर्मकार, तेल निकालने वाले, चिम्पाय (छपाई करने वाले), कास्यकार, दर्जी, गोपाल , भील, धीवर इत्यादि । अलबीरूनी ने भी विभिन्न श्रेणियों का उल्लेख किया है ।[59] मेधा - तिथि ने भी कर्मकारों, व्यापारी, महाजनों इत्यादि की श्रेणी का उल्लेख किया है ।[60] स्मृतिचन्द्रिका में केवल बुनकरों की श्रेणी का प्रसंग मिलता है ।[61] उपरोक्त साहित्यिक साक्ष्यों के साथ अभिलेखों में भी व्यवसायिक समुदायों की श्रेणी का विवरण प्राप्त होता है । (877 ई0)भोजदेव कालीन ग्वालियर अभिलेख में सर्वेश्वर - पुर निवासी तौलिक श्रेणी तथा गोपगिरि के मालाकारों की श्रेणी का उल्लेख मिलता है ।[62] सियादोनी अभिलेख में कास्यकार, तम्बोलिक, कल्लपाल (मद्य -

विक्रेता ॥, सिलाकूट ॥ प्रस्तरकार ॥, कन्दुक इत्यादि समुदायों के आर्थिक संघ ॥श्रेणी ॥ का प्रसंग संदर्भित है ।[63] कमन अभिलेख में कुम्भकारों, मालाकारों तथा कारू की श्रेणी का प्रसंग प्राप्त है ।[64] पेहोवा अभिलेख में अश्व विक्रेताओं की श्रेणी का उद्धरण प्राप्त है ।[65] प्रस्तुत संदर्भ में विजयसेन के देवपाड़ा अभिलेख में वर्णित प्रस्तरकारों की श्रेणी का प्रसंग अधिक उचित प्रतीत होता है ।[66] कलचुरि लक्ष्मणराज द्वितीय का करितलाई प्रस्तर अभिलेख में श्रेणियों का प्रसंग मिलता है ।[67]

उपरोक्त प्रमाणो से स्पष्ट होता है कि विभिन्न व्यवसायिक, व्यापारिक शिल्पी, कारू समुदाय श्रेणियों में संघटित थे ।

श्रेणि प्रधान :- श्रेणियों की कार्यप्रणाली पर ध्यान केन्द्रित करने पर ऐसा ज्ञात होता है कि प्रत्येक श्रेणि संघठन में एक प्रधान होता था; जिसकी श्रेणि संघठन में विशेष भूमिका होती थी तथा वह ही श्रेणि को कार्यान्वित करता था । अधीतकालीन साक्ष्यों में श्रेणिप्रधानों के लिये अनेक शब्दों का प्रयोग हुआ है यथा - प्रमुख, महत्तक, महर, राज, श्रेष्ठि, जेष्ठक, सार्थवाह इत्यादि । स्कन्दगुप्त के इंदौर-ताम्रपत्र अभिलेख में तैलिक श्रेणी के अध्यक्ष जीवंत का प्रसंग मिलता है ।[68] भोजदेव कालीन ग्वालियर अभिलेख श्रेणि प्रधानों के लिये तैलिक, महत्तक तथा मालिक, महर शब्द प्रयुक्त हुआ है ।[69] इस प्रकार तैलिक महत्तक, मालिक महर, तम्बोलिक महर, कल्लपाल महर इत्यादि का प्रसंग प्राप्त है ।[70] शेरगढ़ अभिलेख में तैलिक श्रेणि के प्रधान को तैलिकराज की उपाधि से विभूषित किया गया है ।[71] इसी प्रकार का प्रसंग सोमनाथ मंदिर अभिलेख में प्राप्त होता है। प्रस्तुत लेख में तैलिकराज थाइयाक द्वारा तेल दिये जाने का विवरण है ।[72]

झनारपटन् अभिलेख (1086 ईसवी) में श्रेणि प्रधानों का उल्लेख मिलता है ।[73]

परवर्ती धर्मशास्त्रों, नारद और बृहस्पति आदि की चर्चा पूर्वमध्य कालीन साक्ष्यों के अन्तर्गत की जा सकती है । उक्त धर्मशास्त्रों स्मृतिकारों ने श्रेणि के संविधान, नियम, कानून, कार्यप्रणाली इत्यादि के सन्दर्भ में विस्तृत जानकारी प्रस्तुत की है । जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल में श्रेणि का क्रमिक विकास जारी रहा । श्रेणी को राजा के द्वारा मान्यता प्राप्त करने के विषय में नारद ने स्पष्ट मत प्रस्तुत किया है । राजा को चाहिए कि वह श्रेणियों तथा अन्य निगमों की प्रथाओं को मान्यता दे, उनके जो भी कानून, कर्त्तव्य, उपस्थिति के नियम और जीवन निर्वाह की विशेष परिपाटी हो उन सब को राजा स्वीकार करे ।[74] उपरोक्त कथन की पुष्टि(592 ई0)के गुजरात काठियावाड़ क्षेत्र के एक अभिलेख से भी होती है । प्रस्तुत लेख में व्यापारियों का एक समुदाय राजा के पास उसका आचार स्थिति पत्र प्राप्त करने का अनुरोध लेकर गया, जिसका उपयोग वे अपने लोगों की रक्षा तथा अनुग्रह दान के हेतु कर सके । राजा ने उन्हें एक ऐसा लेखपत्र प्रदान किया जिसमें नियमों की एक विस्तृत सूची थी । उसके अन्त में यह लिखा था कि राजा उन सभी आचारों को भी मान्यता देता है जो प्राचीन काल से चले आ रहे हैं ।[75] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि श्रेणी द्वारा बनाये गये नियमों को राजा द्वारा मान्यता प्राप्त होती थी । यद्यपि कि धर्मशास्त्र स्मृति में राजा को मान्यता देने के पक्ष में विचार मिलते हैं परन्तु अभिलेख में वर्णित भिन्न तथ्य से ऐसा प्रतीत होता है कि व्यापारी समुदाय राजा से मान्यता प्राप्त करते थे । उक्त कथन से यह ज्ञात होता है, यद्यपि इन्हें नियम बनाने का अधिकार

प्राप्त था फिर भी इन्हें राजा द्वारा मान्यता प्राप्त करना आवश्यक रहा होगा ।

श्रेणि द्वारा बनाये गये नियमों का पालन अनिवार्य था । बृहस्पति के उक्त कथन को उद्धृत करते हुये लक्ष्मीधर, अपरार्क एवं देवन्नभट्ट का कथन है, संगठन द्वारा निर्धारित नियमों का पालन सभी सदस्यों द्वारा होना चाहिए ।[76] धर्म - शास्त्र में यह भी उल्लिखित है कि जो लोग किसी संगठन के सदस्यों में फूट डालें। उन्हें विशेष रूप से कठोर दंड दिया जाए, क्योंकि यदि उन्हें बिना दंड दिए छोड़ा जाएगा तो वे संक्रामक रोग के समान अत्यधिक खतरनाक सिद्ध होंगे ।[77]

आर्थिक संगठनों की प्रबन्ध समिति के विषय में प्रमाण उपलब्ध होते हैं । वृहस्पति का मत है कि श्रेणी संगठन की प्रबन्ध समिति होती थी जिसमें पाँच, तीन, या दो सदस्य होते थे । उस समिति का एक प्रधान या अध्यक्ष होता है ।[78] समिति के सदस्य कार्यनिपुण, सत्यनिष्ठ, ज्ञाता, योग्य और उच्चकुल के होते थे ।[79] वृहस्पति, याज्ञवल्क्य की भाँति लक्ष्मीधर ने प्रबन्ध समिति तथा प्रबन्ध अधिकारियों की नियुक्ति का समर्थन किया है ।[80] इस सन्दर्भ में ग्वालियर अभिलेख में प्रसंगित है।प्रस्तुत लेख में अनेक श्रेणियों के प्रबन्ध अधिकारियों की चर्चा की गई है । उदाहरण स्वरूप तैलियों की श्रेणी का उल्लेख करते समय सर्वप्रथम श्रेणि के मुखिया { तैलिक महत्तक } का उल्लेख है । तत्पश्चात् तेलियों की समस्त श्रेणि के अन्य सदस्यों तेलियों की तीन श्रेणियों की संख्या क्रमशः 4 और 5 दी है ।[81] इस प्रकार का अन्य उदाहरण नागपुर जिले के नगरधन स्थान से प्राप्त सातवीं शताब्दी के लेख में गजारोहियों { महामात्रों } के संघटन {गण} का उल्लेख है । उसमें उसके सभापति तथा उसकी कार्यकारिणी समिति के 12 सदस्यों के नाम दिये है ।[82] स्मृतिचन्द्रिका में सदस्यों के विषय भिन्न विचार

उपरोक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि प्रत्येक संगठन में दो, चार, पाँच से अधिक सदस्य भी होते होंगे। वृहस्पति का कथन है कि केवल वही व्यक्ति प्रबन्ध अधिकारी नियुक्त किया जाय, जो ईमानदार वेदों तथा अपने कर्त्तव्यों का ज्ञाता, योग्य, आत्म संयमी उच्चकुल वाला हो और प्रत्येक कार्य में निपुण हो।[84] प्रबन्ध अधिकारी को अनेक अधिकार प्राप्त थे। वृहस्पति के अनुसार यदि कोई व्यक्ति अपने क्रियोचित कर्त्तव्य को समर्थ होते हुए भी पूर्ण न करता तो उसकी सम्पूर्ण जायदाद छीन ली जाती और उसे नगर से बहिस्कृत कर दिया जाता था। यदि कोई अपने सहायकों सहित कर्त्तव्यच्युत होता या अपने काम में लापरवाही करता तो सहायकों सहित प्रत्येक पर 6 निष्क या 4 सुवर्ण का जुर्माना करनोका इन्हें अधिकार था।[85] प्रबन्ध अधिकारियों को यह भी अधिकार प्राप्त था कि वे गलत आचरण करने वालों को उचित दंड दें। साधारण प्रताड़ना या डाँट - डपट से लेकर निष्कासन तक, किसी भी दंड का प्रयोग वे कर सकते थे। दंडों को देने में वे स्वतंत्र थे।[86] वृहस्पति ने साथही साथ यह भी स्पष्ट कहा है कि परिषद के प्रमुखों द्वारा दूसरे लोगों के प्रति कड़ा या मृदुल जो भी व्यवहार नियमानुसार किया जाए।[87] उसे राजा भी अनुमोदित करे, क्योंकि ये लोग विधानों के अधिकारी रूप में प्रख्यात होते थे।[88] यद्यपि कि प्रबन्ध अधिकारी को दंड, निष्कासन का अधिकार था। फिर भी यदि किसी संस्था के प्रधान द्वेष के कारण संगठन के किसी एक सदस्य को हानि पहुँचाए तो राजा उन्हें रोके और यदि वे तब भी न मानें तो उन्हें दण्डित किया जाए।[89] उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट होता है कि अध्यक्ष द्वारा नियमानुसार व्यवहार न होने पर राजा द्वारा उनपर अंकुश लगाने की क्रिया से इस तथ्य की पुष्टि होती

कि प्रधानों पर राजा का अधिकार था ।

परिषद का एक कार्यालय होता था जहाँ श्रेणी के सदस्य समय - समय पर इकट्ठा होकर सार्वजनिक कार्य संपादित करते थे । नारद के अनुसार सदस्यों की उपस्थिति के लिए साधारण नियम निश्चित थे ।[90] मित्र मिश्र की व्याख्या से प्रतीत होता है, ढोल या अन्य वाद्य यन्त्रों को बजाकर सदस्यों को यह सूचित किया जाता था कि वे श्रेणि भवन में उपस्थित होकर जन समुदाय पर विचार करें ।[91] स्मृतिचन्द्रिका में भी वाद्य की ध्वनि पर श्रेणी के मामलों पर विचार हेतु सदस्यों द्वारा सभागृह में एकत्र होने का उल्लेख है ।[92] सभा में सभी सदस्यों के नियमित भाषण होते थे । चण्डेश्वर की विवादरत्नाकर में कात्यायन को उद्धृत करते हुये लिखा है कि प्रबन्ध अधिकारी यदि किसी अन्य वक्ता को युक्ति संगत कथन के लिए हानि पहुँचाता, वक्ता के बोलने में रूकावट डालता, या अनुचित बात कहता तो वह पूर्व साहस दंड का भागी होता था ।[93] मित्र मिश्र की टीकाओं से ज्ञात होता है कि किसी श्रेणी के नये सदस्यों का लिया जाना तथा उसके पुराने सदस्यों का हटाया जाना श्रेणि की साधारण सभा के ऊपर निर्भर रहता था ।[94] कात्यायन का मत भी उद्धृत करता है कि नवागन्तुक सदस्य तत्काल ही अन्य पुराने सदस्यों के समान श्रेणी के विद्यमान धन और ऋण का समान भागी हो जाता है तथा श्रेणि द्वारा किए हुये दान धर्म कार्यों के फल का उपभोग करता था । इसके विपरीत हटाये गये सदस्य के सभी अधिकार तत्काल समाप्त हो जाते थे ।[95] विवादरत्नाकर में चण्डेश्वर ने कात्यायन को उद्धृत करते हुये मत प्रतिपादित किया, किसी श्रेणी का सदस्य बनने के लिए उसके पुराने सदस्यों की सर्वसम्मति अपेक्षित थी, किन्तु

कोई स्वेच्छा से अपनी सदस्यता का त्याग करने के लिए स्वतन्त्र था ।[96]

आर्थिक संगठनों की कार्यप्रणाली परिषद द्वारा प्रत्येक सदस्य से राशि ग्रहण करने के विषय में प्रमाण उपलब्ध होते हैं। जिससे इनकी कार्यप्रणाली का अनुमान लगाया जा सकता है । प्राचीन भरतपुर रियासत में काभा से प्राप्त लगभग 8वीं शती के एक अभिलेख से प्राप्त तथ्य से ऐसा प्रतीत होता है कि जिन प्रयोजनों के लिए श्रेणियों को दान स्वरूप धन राशियाँ मिलती थीं, उन्हें पूर्ण करते समय वे साधारण संचित कोष से व्यय नहीं करती थी, अपितु सदस्यों पर छोटा कर लगा देती थी । इसके अतिरिक्त इस अभिलेख से यह भी ज्ञात होता है कि एक श्रेणि विशेष में समान व्यवसाय वाले सभी सदस्य सम्मिलित थे और प्रत्येक सदस्य को एक निश्चित धनराशि देनी पड़ती थी ।[97] श्रेणियों की कार्य - प्रणाली का यह स्वरूप मन्दसौर अभिलेख में भी दृष्टिगत होता है । प्रस्तुत लेख में रेशम बुनकरों की श्रेणि द्वारा राशि जमा कर सूर्य के एक भव्य मंदिर का निर्माण किया गया था ।[98]

संघठन के अन्तर्गत प्रत्येक सदस्य की सुरक्षा की व्यवस्था थी।यदि किन्हीं कारणों वश कोई सदस्य दुखत: स्थिति को प्राप्त होता था तो श्रेणी उसकी सहायता करती थी । दशकुमारचरित में वर्णित एक कथा से स्पष्ट है कि बलभधर जो व्यापारियों की श्रेणी का एक सदस्य था, व्यापारी की पुत्री को चुराने के अपराध में दंड स्वरूप उसकी समस्त सम्पत्ति जब्त कर ली गई । इस अवसर पर जिस श्रेणि का वह सदस्य था/उसे श्रेणि ने जमानत पर छुड़ाया था। जब तक कि उसका अपराध सिद्ध न हो जाये ।[99]

श्रेणी सदस्यों को प्राप्त अधिकारों की चर्चा भी साक्ष्यों में की गई है। सदस्यों को यह अधिकार प्राप्त था कि वे संगठन के मुख्य को पदच्युत कर सकते थे। याज्ञवल्क्य स्मृति में उल्लिखित "मुख्यदण्डने समूहस्यैवाधिकार " से स्पष्ट है कि मुख्यों को दंडित करने का अधिकार केवल समूह को है।[100] इसी सन्दर्भ में कात्यायन का विचार है कि समूह ऐसे किसी भी प्रबन्ध अधिकारी को हटा सकता था जो किसी बड़े अपराध के प्रति उत्तरदायी होता, जो फूट डालता अथवा गण की सम्पत्ति नष्ट करता।[101] राजा को उसके निष्कासन की सूचना मात्र देना आवश्यक था। उसकी अनुमति प्राप्त करना नहीं। यदि प्रबन्ध अधिकारी शक्ति का प्रयोग करता और उसे पद से हटाना कठिन होता ऐसी दशा में विवाद राजा के समक्ष प्रस्तुत किया जाता था।[102] प्रस्तुत मत का समर्थन करते हुये वृहस्पति ने कहा है, राजा दोनों पक्षों की बात सुनता और ऐसे प्रश्नों पर निबटारा श्रेणियों के विशिष्ट नियमों के अनुसार करता था।[103] इस विषय पर मित्र मिश्र के कथन पूर्णतः स्पष्ट है। वह कहता है कि मुख्यों का निष्कासन वस्तुतः समूह का कार्य है और उन्हें दण्ड देने के लिये राजा को तभी हस्तक्षेप करना चाहिए जब समूह ऐसा करने में अपने आपको असमर्थ पाता हो यथा "समूहाशक्तो . तस्य दण्डो राज्ञा विधेयः "।[104]

संगठन में सम्पत्ति का विभाजन का अधिकार सभी सदस्यों के लिये समान था। श्रेणी द्वारा जो कुछ बचाया जाता, उधार लिया जाता या राजकीय पक्ष से प्राप्त किया जाता था उसमें सभी को बराबर का भाग प्राप्त होता था।[105]

इस प्रकार श्रेणी की कार्य-प्रणाली संविधान नियमों एवं अधिकारों की व्याख्या करने के उपरान्त यह स्पष्ट होता है कि श्रेणि का संघठन कार्य लोक - तान्त्रिक आधार पर किया गया था। यद्यपि कि श्रेणी के प्रधान मुख्यों एवं कार्यकारिणी परिषद को अनेकाधिकार प्राप्त थे जिसके फलस्वरूप वे अपने सदस्यों पर अंकुश स्थापित करते थे। प्राप्त अधिकारों के बावजूद यदि प्रबन्ध समिति या मुख्य किसी पर अत्याचार करता या अनुचित दण्ड देता तो उसे भी दण्ड देने का अधिकार सदस्यों को प्राप्त था। वे राजा के सम्मुख विवाद प्रस्तुत करने के लिये स्वतन्त्र थे।

श्रेणि के कार्य :- आर्थिक धरातल पर संघटित श्रेणि का मुख्य कार्य विभिन्न व्यवसाय, व्यापार तथा शिल्पियों की सुरक्षा, हित तथा व्यवसाय की प्रगति के लिये कार्य करना था। वृहस्पतिनेश्रेणि के स्थितिपत्र की चर्चा की है।[106] स्मृतिचन्द्रिका में भी श्रेणि धर्म का उल्लेख मिलता है जिसके अर्न्तगत अनेक नियम सम्मिलित थे। प्रस्तुत ग्रन्थ के अनुसार श्रेणि यह निश्चित करती थी, यह वस्तु इस दिन विक्रय की जायेगी तथा केवल अमुक श्रेणि इसे बेचेगी।[107] परन्तु साक्ष्यों से ज्ञात होता है श्रेणि अन्य विविध कार्यों में भी रत थी। यथा प्रशासनिक क्षेत्र धार्मिक क्षेत्र, सार्वजनिक क्षेत्र तथा बैंकों के रूप भी कार्य करती थी।

साक्ष्यों से विदित है कि प्रशासनिक गतिविधियों में भी श्रेणि एवं श्रेणि - प्रधानों की भूमिका होती थी। कुमारगुप्त प्रथम के दामोदरपुर ताम्रपत्र अभिलेख में उल्लिखित है कुमारामात्य वेत्रवर्म्मा नगर श्रेष्ठि धृतिपाल, सार्थवाह बन्धुमित्र, प्रथमकुलिक, धृतिमित्र तथा प्रथम कायस्थ साम्बपाल के साथ स्थानीय शासन की

देखभाल कर रहा था ।[108] कुमारगुप्त तृतीय के दामोदरपुर ताम्रपत्र लेख में भी नगर की प्रशासनिक समिति के सदस्य के रूप में नगर श्रेष्ठि सार्थवाह स्थानुदत्त का प्रसंग मिलता है ।[109] दामोदरपुर से ही प्राप्त बुधगुप्त कालीन एक अन्य लेख में शहर की प्रशासनिक समिति में श्रेष्ठि रिबहुपाल, सार्थवाह वासुमित्र, प्रथम कुलिक वरदत्त का उल्लेख है ।[110] विलासपुर से प्राप्त अमोद प्रशस्ति में सान्धि - विग्रहिक धोधक का प्रसंग प्राप्त होता है । उक्त कथन से स्पष्ट है कि मंत्री के रूप में भी ये कार्य करते थे ।[111]

इस काल के अभिलेखों में श्रेणि द्वारा विभिन्न धार्मिक दान तथा कृत्य किये जाने के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं । स्कन्दगुप्त के राजत्वकाल के इन्दौर ताम्रपत्र लेख में इन्द्रपुर की तैलिक श्रेष्ठि द्वारा दान में प्राप्त राशि के ब्याज से एक सूर्य मंदिर में एक दीपक तेल की स्थायी व्यवस्था किये जाने का प्रसंग है ।[112] ग्वालियर अभिलेख में सर्वेश्वरपुर तैलिको श्रेणि के प्रमुखों तथा अन्य सदस्यों द्वारा मिलकर मंदिर को प्रतिमास एक पालिका तेल दिये जाने का उल्लेख मिलता है । इस प्रकार दूसरा दान मालियों की श्रेणि के सात प्रमुखों तथा अन्य सदस्यों द्वारा प्रतिदिन पचास मालायें दिये जाने का प्रसंग है ।[113] इसी काल का अन्य लेख पेहोवा अभिलेख में अश्व व्यापारियों की एक प्रमुख श्रेणि का उल्लेख है, जिसने घोड़ों तथा अन्य पशुओं को खरीदने वालों पर, दशांश कर लगाया था और कर से प्राप्त धन विभिन्न मन्दिरों के बीच बाँट दिया जाता था ।[114] स्यादोनी अभिलेख में ताम्बोलिक, तैलिक तथा पत्थर काटने वालों की श्रेणियों के दान का वर्णन मिलता है ।[115] कृष्ण द्वितीय के 902 - 903 के मूलगुण्ड अभिलेख में तीन

सौ साठ नगरों की श्रेणियों के चार मुखियों द्वारा दिए गए दान का उल्लेख मिलता है ।[116] छठवें विक्रमादित्य के काल के एक लेख ‖ 1110 ‖ में अनेक श्रेणियों के संयुक्त दानों का उल्लेख मिलता है । इसमें कहा गया है कि श्रेणियों के 120 सदस्यों ने एहूर के भगवान कम्मटेश्वर को दान दिया पत्थर काटने वालों की श्रेणि ने स्वर्ण-खण्ड का एक चौथाई भाग दिया, तांबे तथा कांसे का काम करने वालों की श्रेणियों ने देवमूर्तियों के निर्माण के लिए आवश्यक चूना दिया ।[117] उपरोक्त साक्ष्यों से स्पष्ट है उत्तरभारत के साथ-साथ दक्षिण भारत के अभिलेख में श्रेणि द्वारा दान की चर्चा की गई ।

श्रेणि संगठन एवं प्रमुखों द्वारा जन हित कार्य सम्पादित किये जाने के प्रसंग प्राप्त होते हैं । बृहस्पति का कथन है विश्रामगृह, पथशाला, सभागृह आदि विभिन्न प्रकार के जन कल्याणकारी कार्य श्रेणी संघठन द्वारा देश के विभिन्न स्थानों पर सम्पन्न कराए जाते थे ।[118] इसके अतिरिक्त इनके द्वारा दीन दुखियों और निर्धनों को सहायता भी प्रदान की जाती थी । दुर्भिक्ष में पीड़ितों की रक्षा करना भी इनका कर्त्तव्य था ।[119] काठियावाड़ से प्राप्त महुव अभिलेख में गोहिल सरंग की भूमि पर श्रेष्ठि मोखल द्वारा तालाब निर्माण कराये जाने का प्रसंग है ।[120]

आधीत कालीन साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि ये श्रेणि संघठन बैंकों के रूप में भी कार्य करती थी । गुप्त कालीन लेखों में ऐसे संघ एवं श्रेणियों का उल्लेख मिलता है जो जमा राशि के ब्याज से दाता के इच्छानुसार कार्य सम्पन्न करती थी । स्कन्दगुप्त का इंदौर ताम्रपत्र अभिलेख इस प्रथा केउदाहरण के रूप में प्राप्त

होता है जिसमें ब्राह्मण द्वारा दिये गये धन के ब्याज से मंदिर में एक दीपक तेल देने की व्यवस्था की गई थी ।[121] मन्दसौर अभिलेख में भी इसी प्रकार का विवरण प्राप्त था । प्रस्तुत लेख में बुनकरों द्वारा जमा राशि से सूर्य मन्दिर के निर्माण एवं मरम्मत कराने जाने का प्रसंग है ।[122] कल्चुरि राजा सोढ्देव के कहलापत्र अभिलेख में महाश्रेष्ठिन नामक पदाधिकारी का भी उल्लेख हुआ है । इसे मिराशी ने मुख्य जमाकर्त्ता या एक बड़े सेठ के रूप में कहा है। जिसके पास बहुत से लोगों का धन एकत्र रहता था ।[123] (725 ई0)के नासमगेश्वर अभिलेख में ताँबे या कांसे का काम करने वालों की श्रेणी का उल्लेख है । प्रस्तुत लेख से ज्ञात होता है कि सभी वर्गों के लोग कार्तिक मास में अपना कर इस श्रेणी के पास जमा करते थे ।[124] (1077 ई0)के मेवूर अभिलेख से ज्ञात होता है कि शिवपुर के व्यापारियों के संघठन ने कुछ धन राशि 25 प्रतिशत ब्याज पर जमा की ।[125]

श्रेणियाँ सैनिक कार्य के रूप में कार्य करती थीं तथा श्रेणियों के पास सैनिक हुआ करते थे जैसा कि प्राचीन ग्रन्थो, स्मृतियों में श्रेणि बल का प्रसंग मिलता है ।[126] वृहस्पति और याज्ञवल्क्य जैसे धर्मशास्त्रकारों ने श्रेणियों की सैनिक शक्ति का सन्दर्भ दिया है ।[127] इसी सन्दर्भ में अधीत कालीन ग्रन्थ मान--सोल्लास में श्रेणि बल का उल्लेख मिलता है ।[128] कुमार गुप्त और बन्धुवर्मा के मन्दसौर प्रस्तर अभिलेख श्रेणि के विषय महत्वपूर्ण तथ्य प्राप्त होता है।उसमें बताया गया है कि किस प्रकार लाट में बसे हुये पट्टवायों की एक श्रेणि दशपुर नगर के राजा के गुणों से आकर्षित होकर वहाँ जा कर बस गई । वहाँ जाकर उनमें से

अनेक भिन्न-भिन्न व्यवसाय में लग गये । कुछ धर्नुविद्या सीखकर अच्छे योद्धा बन गए ।[129] कोल्हापुर अभिलेख में व्यापारियों की श्रेणि का वर्णन ऐसे साहसी वीर शूर वीरों के रूप में किया गया है जो परम यशस्वी थे, जिनके हृदय में अपने बाहु - बल से विजयश्री के वरण के लिए उमंग थी, जिनका पराक्रम त्रिश्वविश्रुत था ।[130] चालुक्यों के राज्य की एक ऐसी ही श्रेणि का वर्णन करते हुए कहा गया है कि इसके सदस्यों के हृदय में प्रचंडता और शूरता की देवी वास करती हैं ।[131] उपरोक्त प्रमाणों से प्रकट होता है कि श्रेणियों के पास अपने सैनिक होते थे और वे शायद अपने-अपने प्रभुओं की सामरिक सहायता भी करते थे ।[132] श्रेणि के सैनिक शक्ति सन्दर्भ में आर० एस० शर्मा का कथन है जिस प्रकार सामन्तों को अपने प्रभु को सैनिक देने पड़ते थे, उसी प्रकार इन श्रेणियों के लिए भी अपने प्रभु को सैनिक देना आवश्यक था ।[133] इस प्रकार ये अपनी तथा राज्य की सुरक्षा में सहायता करती थी ।

वैधानिक और न्यायिक कार्यों में भी इनका अस्तित्व दृष्टिगत होता है । श्रेणियों के ऐसे संघठनात्मक स्वरूप की चर्चा वृहस्पति ने भी किया है । उनका कथन है कि सम्बन्धियों की बैठकों में किसी विवाद की जाँच न की गई हो तो श्रेणियों को समुचित विचार के पश्चात उनका निर्णय करना चाहिए । यदि श्रेणियों ने भी उसकी भली-भांति परीक्षा न की हो तो सभाओं द्वारा उसका निश्चय किया जाना चाहिए । और यदि इन सभाओं में भी उसका निर्णय न हो सके तो नियुक्त न्यायाधीशों को उसका निर्णय करना चाहिए ।[134] नारद के अनुसार श्रेणी को चार सामान्य न्यायालयों में दूसरा स्थान प्राप्त था ये अपने संघ के अपराधों एवं मुकदमों का निर्णय स्वयं करते थे ।[135] एक अभिलेख में वर्णित है,

वह गृहस्थों की आर्थिक स्थिति के अनुसार उन पर कर लगा सकती थी । चोरी छोटे मोटे दुराचारों और दसों अपराधों के लिए जुर्माना लगा सकती थी, निसन्तान व्यक्ति की सम्पत्ति को स्वयत्त कर सकती थी ।[136] अपरार्क के कथन से स्पष्ट है कि श्रेणियों के अध्यक्ष को अपराधी सदस्यों को फटकारने निन्दा करने और श्रेणि से निकालने का पूर्ण अधिकार था ।[137]

उपरोक्त साक्ष्यों के आधार पर श्रेणि के विविध पक्षों एवं कार्यों की समीक्षा के उपरान्त यह स्पष्ट होता है, अधीत काल में विविध आर्थिक संघठन का आर्थिक क्षेत्रों में सहयोग के साथ-साथ अन्य विविध क्षेत्रों में भी उनकी भूमिका दृष्टिगत होती है ।

<u>श्रेणियों की स्थिति :-</u> आलोच्ित कालीन साक्ष्यों में उदधृत तथ्यों के आधार पर आर्थिक संघठनों की कार्य प्रणाली, संविधान नियम, कानून तथा अधिकारों इत्यादि विषयों की समीक्षा से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस काल में श्रेणियों का अस्तित्व विद्यमान था । विभिन्न व्यवसायिक, व्यापारी तथा शिल्प समुदाय संघठित प्रणाली के रूप में कार्य करते थे ।

जहाँ तक श्रेणियों की स्थिति का प्रश्न है ऐसा प्रतीत होता है कि अधीतकाल में श्रेणियाँ कई कारणों से प्रभावित हुई यथा राजाओं, सामन्तों के आपसी झगड़ों एवं विभिन्न आक्रमण और राजनैतिक शिथिलता श्रेणियों के प्रभावकारी कारक प्रतीत होते हैं । दूसरा व्यापारियों का भूमि स्वामी होना, करों की अधिकता उपरोक्त कारणों के फलस्वरूप श्रेणियों की स्थिति शिथिल हो रही थी । मेधातिथि का भी कथन है कि इस काल में श्रेणियों का कार्य क्षेत्र सीमित हो गया

था ।[138] मेधातिथि, [illegible], शुक्रनीतिसार के अनुसार चोरी, डकैती के मुकदमों का निर्णय करने का अधिकार केवल राजा को था । श्रेणियाँ इसका निर्णय नहीं कर सकती थी ।[139] स्मृतिचन्द्रिका में भी कहा गया है कि जब श्रेणियाँ एक मत होकर अपना निर्णय न कर सकें तो उन्हें उपसमिति को सौंप देना चाहिए ।[140] लल्लन जी गोपाल का मत है कि पूर्वमध्यकालीन साक्ष्यों से श्रेणि के कार्यों, सदस्यता संस्था का संघठन, लाभ-हानि की राशि का वितरण इत्यादि में कोई भिन्नता एवं सुधार का संकेत नहीं मिलता है ।[141] परन्तु वहीं कुछ विद्वानों का मत है कि श्रेणि की संख्या में वृद्धि हुई । व्यवसायिक उपजातियों का श्रेणि के रूप में संघठित होने की प्रवृत्ति 12वीं शताब्दी में श्रेणि के क्रमिक विकास का एक नया स्वरूप प्रतीत होता है ।[142] इस सन्दर्भ में भट्टोत्पल, यादव प्रकाश, विज्ञानेश्वर इत्यादि शास्त्रकारों ने साक्ष्य प्रस्तुत किये हैं ।[143] विज्ञानेश्वर का मत है कि श्रेणि विभिन्न जाति के लोगों का समूह है ।[144] वैजयन्ती के अनुसार श्रेणि एक जाति और व्यवसाय वाले लोगों का समूह है ।[145] ब्रह्मवृत तथा वृहद धर्म पुराण में 36 मिश्रित जातियों की सूची प्राप्त होती है ।[146] हेमचन्द्र ने 18 प्रकार की श्रेणि का उल्लेख किया है यथा हीन जाति ।[147] कथाकोश प्रकरण में जिनेश्वर सूरी ने सुवर्णकार, कुम्भहार, रजक, लोहार, शिल्पी, काष्ठकार की श्रेणि का उल्लेख करते हुये उन्हें अधम जाति का कहा है ।[148] लल्लन जी के अनुसार निम्न जाति के मिश्रण के फलस्वरूप इनकी सामाजिक स्थिति निम्नतम हुई थी ।[149]

अभिलेखीय साक्ष्यों से भी श्रेणि के संख्या में वृद्धि के संकेत मिलते हैं । गोपगिरि में 20 तैलिक प्रधान ﴾ तैलिक महत्तक ﴿ और 14 से अधिक मालाकारों

के प्रधान (माल्कि महर) का प्रसंग मिलता है ।[150] बी0 डी0 चट्टोपाध्याय ने भी इस विषय पर मत दिया है कि गोपगिरि में इतने अधिक श्रेणि प्रधान द्वारा पारिवारिक स्तर पर तथा व्यक्तिगत रूप में धार्मिक कार्य विधि किये जाने का प्रसंग है और उनके पारिवारिक सदस्यों से यह अर्थ हो सकता है कि श्रेणी परिवार के रूप में अधिक संघठित थे न कि जातीय स्तर और व्यवसायिक स्तर पर ।[151] इसी प्रकार सियादोनी में कुम्भकार:, शिल्पकूटानाम्, तैलिकानाम्, कांस्यारकान्, कल्लपालानाम् इत्यादि शब्दों से अधिक संख्या का संकेत मिलता है ।[152] श्रेणियों की संख्या वृद्धि के सन्दर्भ में बी0 पी0 मजूमदार ने दो तथ्य माने हैं, प्रथम बड़ी श्रेणियों का छोटी श्रेणि के रूप में संघठित होने के कारण, औद्योगिक एवं शिल्प श्रेणि की संख्या में वृद्धि हुई । दूसरा नवीं से 12वी शताब्दी के मध्य नगरों की संख्या में वृद्धि के फलस्वरूप श्रेणि की संख्या में वृद्धि हुई ।[153]

साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि इस काल में व्यापारियों का भू-स्वामित्व होना भी श्रेणियों की शिथिलता का एक कारण प्रतीत होता है । दुहापानी शिलालेख (8 वीं शताब्दी) से ज्ञात होता है, मगध के हजारीबाग जिला में तीन गाँवों के स्वामी तीन व्यापारी थे ।[154] पृथ्वीराज तृतीय के (1138 ईसवी) के एक लेख से ज्ञात है ठाकुर पालहुक व्यवसाय से व्यापारी था ।[155] साक्ष्य से ज्ञात होता है कास्यकार श्रेष्ठि सव्यम्भु और खनदीमल्ल सामंत के पद का भोग कर रहा था ।[156] उपरोक्त साक्ष्यों से स्पष्ट है भू-सम्पत्ति युक्त व्यापारी ग्राम की व्यवस्था इत्यादि से जुड़े होते थे । अत: उनका व्यापार एवं वाणिज्य के प्रति सजग न होना एक स्वाभाविक क्रिया प्रतीत होती है ।

इस काल में व्यापारी-वणिक अधिक करों के भार से दबे थे । रायपाल के शासनकाल में उसके सामंतपुत्र ने प्रत्येक तेल मिल से कर के रूप में एक पालिका तेल ग्रहण करने का आदेश जारी किया था ।[157] एक दूसरे अभिलेख (1143 ईसवी) से इसी राजा के दूसरे सामंत ने प्रत्येक तेल मिल से 2 पालिका तेल कर के रूप में ग्रहण करने का आदेश जारी किया था ।[158] इसी प्रकार सामान्य व्यापारियों को भी माल से लदे प्रत्येक बैलगाड़ी पर कर देना पड़ता था ।[159] परमारों के अपूर्ण अभिलेख में विभिन्न प्रकार के व्यापार और शिल्प पर लिये जाने वाले करों की सूची प्राप्त होती है ।[160]

उपरोक्त साक्ष्यों के आधार पर पूर्वमध्यकाल में श्रेणियों की स्थिति का अवलोकन कर यह कहा जा सकता है इस काल में श्रेणियों की स्थिति में शिथिलता का संकेत मिलता है ।

1- ऋग्वेद 1·163·10, हसाइवश्रेणिशो यतन्ते; महाभारत वनपर्व 249·16,

अष्टाध्यायी 2·1·59, श्रेणय: कृतादिभि: ।

2- अर्थशास्त्र, 2, 4; 4· ।

3- अमरकोष, 2, 10·5, सहतैस्तैदव्योः श्रेणिसजातिभि:

4- मेधातिथि मनु 8·41

5- याज्ञवल्क्य जिल्द 2, 30·192

- मिताक्षरा 2·192 , एक पण्यं शिल्पो जीविन: श्रेणय: नानाजातिनामेक जातिभक कर्मोपजीविनां संघात: ।।

6- वीरमित्रोदय, 7·333, श्रेणयत एक शिल्पोजीविन:

7- विवादरत्नाकर, पृ0 177·

8-कात्यायन, श्लोक 683, कारुशिल्पप्रभृतीनां निवहश्रेणिरुच्यते ।

9- धर्मशास्त्र का इतिहास, काणे, जिल्द 1, भाग 1, पृ0 384· श्रेणय: कारुक समुदा

10- स्मृतिचन्द्रिका 3, भाग 1, पृ0 38, श्रेणयो रजकादयष्टहीन जातय: ।

11- वैजयन्ति, पृ0 237, 1·79·

12- प्राचीन भारत का संघटि जीवन, पृ0 18·

13- ऋग्वेद 2, 23, 1, 4, 10·11; 52·2 ; 8, 6·31; 10, 34, 12;

14- अर्थशास्त्र, 2, 6 कारुशिल्पगणों ।

15- विष्णु, 167, नारद, 1·7, गणद्रव्यस्यापहर्त्ता विवास्य ।

16- ब्राह्मणानां हि समहस्तु गण: सम्परिकीर्तित: कात्यायन, 680,

17- मेधातिथि मनु, 1, पृ0 50, गणसङ्घातो वणिककारुकुशलिवदीनाम्

18- विज्ञानेश्वर मिताक्षरा, पृ0 948, गणोव्रात: आयधीयादीनामेक कर्मोपि जीविनां

19- *धर्मशास्त्र का इतिहास*, काणे, जिल्द 1, भाग 1, पृष्ठ 896.

20- *सी0 आई0 आई0*, जिल्द 4, नं0 120, पृष्ठ 612.

21- *धर्मशास्त्र का इतिहास*, काणे, जिल्द 1, भाग, पृ0 26, 42.

22- *स्मृतिचन्द्रिका* , जिल्द 3, भाग 1, पृष्ठ 39, गणकुलानां समेह

23- *इण्डि0 एपि0 ग्लोस0*, पृ0 110.

24- *सी0 आई0 आई0*, जिल्द 3, नं0 18, पृ0 79.

25- *एपि0 इण्डि0*, जिल्द 1, नं0 16, पृष्ठ 196.

26- *अर्थशास्त्र*. 1, 13, सभापूगजनसमवायेषु ।

27- *मिताक्षरा*, पृ0 944, पूगाः समूहाः भिन्नजातीनां भिन्न वृत्तिनामेक स्थाननि वासिनां ग्राम नगरादि स्थानाम् ।

28- *विवादरत्नाकर*, पृ0 117.

29- *वीरमित्रोदय*, 7.333, पूगाःहस्त्यश्वारोहेनदयः ।

30- *कात्यायन*, 84, समूहाँ वणिजादीनां पूगः संपरिकीर्तितः

31- *स्मृतिचन्द्रिका*, जिल्द 3, भाग 2, पृ0 521. पूगाः हस्त्यश्वारोहकादयः

32- *धर्मशास्त्र का इतिहास*, जिल्द 1, भाग 1, पृ0 40. ब्रह्माणि समूहाः पूगा ।

33- इण्डि0 एपि0 ग्लोस0, पृ 87.

34- एपि0 इण्डि 0, जिल्द 1, पृ0 159.

35- वही,

36- वही, 2, 124, पंक्ति 38

37- वही,

38- सी0 आई0 आई0, 4, पृ0 191.

39- एपि0 इण्डि0 11, पृ0 43, पंक्ति 2 - 3.

40- इण्डिया हिस्ट्री कांग्रेस अहमदाबाद, 1954, पृ0 218, 225 - 226
तुलनार्थ देखिए, मजूमदार, बी पी 'गिल्ड इन अर्ली मीडिवल नार्थ इण्डिया
आस्पेक्टस आफ इण्डियन आर्ट एण्ड कल्चर, एस0 के0 सरस्वती, पृ0 48-55.

41- कुवलयमाला, पृ0 65, सरिस सत्थवाहं देसिय वणियमेलीए ।

42- इण्डि0 एपि0 ग्लोस, पृ0 210.

43- अमरकोष, 2, 9, 78, अभिधान चिन्तामणि, तृतीय काण्ड, श्लोक 3, 867

44- याज्ञवल्क्य स्मृति, 2, 192, नारद 10, 2

45- कात्यायन , पृ0 678, नानापौरसमूहस्तु नैगमः परिकीर्तितः ।

46- मोतीचन्द्र सार्थवाह, पृ0 163

47- धर्मशास्त्र का इतिहास, काणे, जिल्द 1, भाग 2, पृ0 869
सहदेशान्तर वाणिज्यार्थं ये नानाजातीया अधिगच्छन्ति ते नैगमः ।

48- वही, सार्थवाहादि समूहो नैगमः ।

49- स्मृतिचन्द्रिका, 3, भाग 1, पृ0 9

50- प्राचीन भारत का संघटित जीवन, पृ0 42

51- लूडर्स लिस्ट, नं0 978, 995, 998, 1000, 1001, 1024

52- प्राचीन भारत का संघटित जीवन, पृ0 42

53- वही,

54- सम आस्पेक्ट्स आफ इण्डियन सोसायटी, पृ0 135.

73- जे0 ए0 एस0 बी0 , 1914, पृ0 241-43 , देखिए लल्लन , पृ0 86.

74- नारद , 10, 2, 3

75- एपि0 इण्डि0, 30 पृ0 169

76- अपरार्क, पृ0 792 - 93 , स्मृतिचन्द्रिका, 2, 222 - 23, देवन्नभट्ट, 2, कल्पतरू, मजूमदार सोसोइको हिस्ट्री आफ नार्थ इण्डिया, पृ0 214.

77- नारद स्मृति, 10, 6.

78- वृहस्पति स्मृति , 11, 8-10

79- वही

80- लक्ष्मीधर, व्यवहारकाण्ड, पृ0 420-21 , बृहस्पति 17, 8, 10, याज्ञवल्क्य 2, 188.

81- एपि0 इण्डि0, 1, पृ0 10

82- इपि0 इण्डि0, जिल्द 28, पृ0 10.

83- लल्लन जी गोपाल, इकोनामिक नार्दन इण्डिया, पृ0 87.

84- वृहस्पति 17, 8, विवेषिणो व्यसनिमः शालीनालसमीरवः लुब्धातिवृद्ध वालाश्च न कार्याः कार्यचिन्तकः ।

85- प्राचीन भारत का संघटित जीवन, पृ0 52

86- वृहस्पति, 17, 17, वही

87- प्राचीन भारत का संघटित जीवन, पृ0 32, वीरमित्रोदय, पृ0 430

88- वही,

90- नारद, 10, 3

91- वीरमित्रोदय, पृ0 430

92- स्मृतिचन्द्रिका समुदायिकायार्थ पटहादिध्वनिमाकर्ण्य मण्डपादौ , जिल्द भाग 2, पृ0 528, मेजनम ।

93- प्राचीन भारत का संघटित जीवन, पृ0 54

94- रमेशचन्द्र, प्राचीन भारत में संघटित जीवन, पृ0 55,
ये त समुदायानुगहातदन्तभार्व प्राप्ता: ये वे समुदाय क्षोभादिना ततो वहिभूतास्तान प्रत्याह स ।

95- वही

96- वही, पृ0 55, वीरमित्रोदय ,0 432.

97- एपि0 इण्डि0, 24, पृ0 333

98- फ्लीट, सी0 आई0 आई0 संख्या 18.

99- दशकुमारचरित, पृ0 358 - 365.

100- याज्ञवल्क्य, 2, 187.

101- कात्यायन, 672, साहसीभेदकारी च गणद्रव्यविनाशक:
उच्छेद्या सर्व एवेते विख्यात्यैव नृपे भृगु: ।

102- प्राचीन भारत का संघटित जीवन, पृ0 57

103- नारद , 10.3, तथा जगन्नाथ की टीका नारद, पृ0 184.

104- वीरमित्रोदय, पृ0 429

105- वृहस्पति, 17, 22, कत्यायन, 5, 677.

106- प्राचीन भारत का संघटित जीवन, पृ0 48 - 49.

107- स्मृतिचन्द्रिका, 3 भाग 1, पृ0 66.

108- एपि0 इण्डि0 , जिल्द 15, पृ0 130.

109- भंडारकरलिस्ट , पृ0 178 ; एपि0 इण्डि0, जिल्द 15, पृ0 142.

110- एपि0 इण्डि0, जिल्द 15, पृ0 138.

111- भंडारकरलिस्ट, पृ0 282.

112- फ्लीट, सी0 आई0 आई0, संख्या 16.

113- एपि0 इण्डि0, जिल्द 19, पृ0 78.1.1

114- एपि0 इण्डि0, जिल्द, 1, पृ0 184.

115- एपि0 इण्डि0, जिल्द 1, पृ0 167 और आगे ।

116- एपि0 इण्डि0, जिल्द 13, पृ0 193.

117- एपि0 इण्डि0, जिल्द 12, पृ0 333.

118- वृहस्पति, 17.11.12.

119- वीरमित्रोदय, पृ0 423.

120- भंडारकरलिस्ट, पृ0 110.

121- सी0 आई0 आई0, भाग 3, पृ0 681.

122- सी0 आई0 आई0, भाग 3, पृ0 79.

123- का0 ई0 ई0 4 क्रमांक 74, पृ0 390.

124- एपि0 इण्डि0, जिल्द, 14, पृ0 188.

125- एपि0 इण्डि0, जिल्द 12, पृ0 273.

126- अर्थशास्त्र, पृ0 240, रामायण, 2.123.5.

127- वृहस्पति, 1·28·30; याज्ञवल्क्य 2·30·

128- मानसोल्लास, 1, पृ0 79, 559·

129- फ्लीट सी0 आई0 आई0, संख्या 18·

130- एपि0 इण्डि0 319, पृ0 34

132- एपि0 इण्डि0 4 न0 34·

133- भारतीय सामंतवाद, हि0 अनुवाद, पृ0 109·

134- मजूमदार, रमेशचन्द्र, प्राचीन भारत का संघटित जीवन, पृ0 61·

135- नारदस्मृति , 1·7·

136- एपि0 इण्डि0, 14, 190·

137- अपरार्क, पृ0 794·

138- मेधातिथि मनु 8·2·42, 219·

139- स्मृतिचन्द्रिका 2, पृ0 224·

140- शुक्रनीति, 4·5·30·

141- लल्लन जी गोपाल, इकोनामिक लाइफ आफ नार्दन इण्डिया, पृ0 87·

142- मजूमदार, बी0 पी0, गिल्ड वे इन अर्ली मीडिवल नार्थ इण्डिया ; सरस्वती, एस0 के0, आस्पेक्ट आफ इण्डियन आर्ट एण्ड कल्चर, पृ0 48-50·

143- लल्लन जी गोपाल, पृ0 82-83, यादव सोसायटी एवं कल्चर, पृ0 268, 285·

144- याज्ञवल्क्य 2, 30·

145- वैजयन्ति, पृ0 237, पंक्ति 179·

146- वृहत पुराण, भाग 3, 13·

147- अभिधानचिन्तामणि 3, 714.

148- कथाकोश प्रकरण, पृ0 116.

149- लल्लन जी गोपाल, इकोनामिक लाइफ आँफ नार्दन इण्डिया, पृ0 83.

150- एपि0 इण्डि0 1, 154.

151- इण्डियन हिस्टोरिकल रिव्यू, जिल्द, 1, न0 2, भाग 21।

152- एपि0 इण्डि0 1, पृ0 174 - 177.

153- वी0 पी0 मजूमदार, गिल्ड वे इन अर्ली मिडिवल नार्थ इण्डिया, सरस्वती, एस0 के0, आस्पेक्टस आँफ इण्डियन आर्ट एण्ड कल्चर पृ0 50-51.

154- एपि0 इण्डि0 जिल्द, 23, पृ0 228-229.

155- वही, 33, पृ0 299 एफ0 एफ0

156- बीना जैन, गिल्ड आर्गेनाइजेशन इन नार्दन इण्डिया, पृ0 58.

157- एपि0 इण्डि0, जिल्द 11, पृ0 32.

158- एपि0 इण्डि0, जिल्द 11, पृ0 41.

159- वही, पृ0 35.

160- वही, जिल्द0 14, पृ0 309 - 10.

परिशिष्ट प्रथम

अभिलेखों में उल्लिखित व्यवसायिक समुदायों की सूची

अभिलेख में उल्लिखित प्रमुख व्यवसायिक समुदायों की सूची

1- तन्तुवाय : सै0 ई0 2, पृ0 191; एपि0 इण्डि0 जि0 6,पृ0 163.

2- रंगरेज : सै0 ई 2, पृ0 375.

3- तुन्नवाय : इण्डि0 एपि0 ग्लो0, पृ0 337.

4- रजक : सै0 ई0 2, पृ0 93, 98, 171, 191;
एपि इण्डि0, 3, पृ0 397, 302.

5- सुवर्णकार : सै0 ई0 2, पृ0 190, 222, 575; एपि0 इण्डि0
28, पृ0 191, 95, 23, पृ0 143, 7, पृ0 95,
29, पृ0 92.

6- मणिकार : इण्डि0 एपि0 ग्लो0 पृ0 197.

7- लोहकार : एपि0 इण्डि0 4, पृ0 126, 1, पृ0 333;.
: सै0 ई0 2, पृ0 93, 97, 98, 375;
: का0 ई0 ई0 4, क्रमांक 64, पृ0 343.

8- ताम्रकार : सै0 ई0 2, पृ0 192.
: एपि0 इण्डि0 4, पृ0 157, 28, पृ0 189, 1,
पृ0 333.

9- कांस्यकार : सै0 ई0 2, पृ0 742, 743, 191,
: एपि0 इण्डि0 1, पृ0 165, 14, न0 49, पंक्ति
29-51

10- रजतकार : एपि0 इण्डि0 21, पृ0 93.

11- वर्धकि : सै0 ई0 2, पृ0 619 एन

12- वंशकार	:	इण्डि0 एपि0 ग्लो0 , पृ0 361·
13- रथकार	:	एपि0 इण्डि0 2, पृ0 47·
	:	सै0 ई0 2, पृ0 375·
14- कुम्भकार	:	सै0 ई0 2, पृ0 191, 175, 27, 25, 97,
	:	एपि इण्डि0 3, पृ0 297, 302, 28, पृ0 191, 24, पृ0 337·
15- मालाकार	:	सै0 ई0 2, पृ0 93, 97, 98, 191·
	:	एपि0 इण्डि0 1, पृ0 160, 24, पृ0 331, 1, 271
16- ताम्बोलिक	:	सै0 ई0 1, पृ0 191·
	:	एपि0 इण्डि0 1, पृ0 166, 279, 28, पृ0 26·
17- गंधिक	:	एपि0 इण्डि0 1, पृ0 67·
18- सुराकार	:	एपि0 इण्डि0 1, पृ0 67·
	:	भंडारकरलिस्ट, पृ0 192,
	:	का0 ई0 4, पृ0 197·
19- चर्मकार	:	सै0 ई0 1, पृ0 93·
20- नापित	:	सै0 ई0 2, पृ0 93, 98, 191, 375, 575, 585·
21- मत्स्यकार	:	सै0 ई0 2, पृ0 191·
22- शाखिक	:	सै0 ई0 1, पृ0 191, 192·
	:	एपि0 इण्डि0 28, पृ0 190-91, 24, पृ0 331, 22, पृ0 139, 140, 141·
23- दंतकार	:	एपि0 इण्डि0 19, पृ0 279·

24- तैत्तिक	:	से0 ई0 1, पृ0 93, 97, 98, 191·
	:	एपि0 इण्डि0 22, पृ0 139·
25- पित्तलहार	:	एपि0 इण्डि0 32, पृ0 121, 124, एफ एफ
26- दूत	:	एपि0 इण्डि0 4, 27, 41, 32, पृ0 121·
	:	भंडारकरलिस्ट न0 318, पृ0 48, न0 1625, पृ0
27- पंडित	:	से0 ई0 2, पृ0 142-43·
	:	भंडारकरलिस्ट न0 1884, पृ0 264, न0 1887, पृ0 264, 190·
28- पुजारी	:	भंडारकर लिस्ट न0 294, पृ0 45, 249·
29- आचार्य	:	से0 ई0 2, पृ0 191, 92, 538, 546, 47, 589, 703-4·
	:	भंडारकरलिस्ट न0 2034, पृ0 282, न0 863, पृ0 118·
30- सूत्रधार	:	भंडारकरलिस्ट, न0 1526, पृ0 210, 169, 211,
	:	से0 ई0 2, पृ0 333, 363, 405, 413, 418·
	:	का0 ई0 ई0, भाग 4, क्रमांक 65, पृ0 336, क्रमांक 66, पृ0 317, क्रमांक 62, 324, क्रमांक 107 पृ0 573·
31- ज्योतिष	:	से0 ई0 2, पृ0 410, 276, 285, 290, 302·
	:	एपि0 इण्डि0 11, पृ0 36 एफ एफ, 2, पृ0 116, 24, पृ0 329, एफ, 30 210, पृ0 32-34·
	:	भंडारकरलिस्ट नं0 2033, पृ0 282-83·

32- पुरोहित : एपि0 इण्डि0, जि0 9, पृ0 305, जि0 62, पृ0 6-9, जि0 14, पृ0 160, जि0 4, पृ0 105, 13, पृ0 213,
: सें0 ई0 2, पृ0 165, 173, 249, 252, 273, 276 279, 281, 285, 290, 302.

33- धर्मलिखिन : एपि0 इण्डि0 जि0 36, पृ0 47, जि0 14, पृ0 176 जि0 9, पृ0 11, जि0 46, 225.

34- विद्वानवर्ग : सें0 ई0 2, पृ0 31, 252,
: इन्सक्रिप्शंस आँव परमारज, पृ0 42, 280, 59, 151

35- महत्तर : सें0 ई0 2, पृ0 279, 318, 51, 64, 360-61,
: एपि0 इण्डि0 न0 18, पृ0 257.

36- कृषक : सें0 ई0 2, पृ0 51, 173, 217,
: सी0 बी0 आई0 पृ0 273, 225, 239, 281,
: एपि0 इण्डि0 जि0 15, पृ0 297, 24, पृ0 336.

37- वैद्य : सें0 ई0 2, 93, 575, 98, 585, 641, 645.

38- श्रेष्ठी : सें0 ई0 2, पृ0 270, 217, 504, 508

39- ग्वाला : एपि0 इण्डि0 23, पृ0 190-91.
: सें0 ई0 2, पृ0 191, 373, 269.

40- व्यापारी : एपि0 इण्डि0 21, पृ0 48, 20 पृ0 54-55, 23, पृ0 101, 27, पृ0 26.

41- सार्थवाह : एपि0 इण्डि0 11, पृ0 40-43, 60, 14, पृ0 138, 142, 1, पृ0 159.

42- महावत्त : इण्डि0 एपि0 ग्लोस0, पृ0 192.

43- नट	:	से0 ई0 पृ0 93, 97.
44- मृदंगवादक	:	से0 ई0 2, पृ0 93, 97.
45- चूर्णकार	:	से0 ई0 2, पृ0 403-406.
46- देवदासी	:	से0 ई0 2, पृ0 156, 719, 161,
	:	एपि0 इण्डि0 33, पृ0 240.
47- रूपकार	:	एपि0 इण्डि0 31, पृ0 166,
	:	का0 ई0 ई0 1, पृ0 557, 4, पृ0 466, क्रमांक 97, पृ0 515
48- शिल्पी	:	से0 ई0 2, 89, 191, 298, 575, 585,
	:	एपि0 इण्डि0 24, पृ0 331, 1, पृ0 160, 277.
49- सूपकार	:	से0 ई0 2, पृ0 575.
	:	एपि0 इण्डि0, जि0 13, पृ0 109, 115.
50- गणिकाएँ	:	एपि0 इण्डि0 9, पृ0 12-15, 158-162, जि0 2, पृ0 122.

प्रशासन से सम्बन्धित पद और पदाधिकारियों का उल्लेख प्रचुर मात्रा में अभिलेखों में प्राप्त होता है परन्तु इन पदों तथा पदाधिकारियों को पेशेवर समुदाय की संज्ञा देना सम्भवतः उचित नहीं प्रतीत होता है । इसी कारण इस सूची में इनका उल्लेख नहीं किया गया है ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

संदर्भ ग्रन्थ सूची

अभिलेखीय साक्ष्य

आयंगर, के0 वी0 एस0 : साउथ इण्डियन इंस्क्रिप्शंस, दो जिल्दों में, मद्रास, 1928, 1933.

आचार्य जी0 वी0 : हिस्टोरिकल इंस्क्रिप्शंस आँव गुजरात

उपाध्याय, वासुदेव : गुप्त अभिलेख, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना 1974.

गोयल, श्रीराम : मौखरि पुष्यभूति चालुक्य युगीन अभिलेख, मेरठ, 1987

चौधुरी, आर0 के0 : इंस्क्रिप्शंस आँव बिहार, पटना 1958.

थपलियाल, के0 के0 : इंस्क्रिप्शंस आँव द मौखरीज, लेटर, गुप्ताज, पुष्यभूति एण्ड यशोवर्मन आँव कनौज, दिल्ली, 1985.

प्लीट, जे0 एफ0 : कार्पस इंस्क्रिप्शंस इण्डिकेरम्, जिल्द 3, इंस्क्रिप्शंस आँव द अर्ली गुप्ता किंग्स एण्ड देयर सक्सेसर्स,(तृतीय संशोधित संस्करण) वाराणसी, 1970.

पाण्डेय, आर0 बी0 : हिस्टोरिकल एण्ड लिटरेरी इंस्क्रिप्शंस, वाराणसी, 1962.

पेटर्सन, पी0 : अ कलक्शंस आँव प्राकृत एण्ड संस्कृत, इंस्क्रिप्शंस, भावनगर, आर्कलाजिकल डिपार्टमेन्ट, भावनगर, 1905.

मजूमदार, एन0 जी0 : इंस्क्रिप्शंस आँव बंगाल, जिल्द 3, नरेन्द्र रिसर्च सोसायटी बंगाल, 1954.

मित्तल, ए0 सी0 : इंस्क्रिप्शंस आँव इम्पीरियल परमार , एल0 डी0 सीरिज 3, इन्स्टीच्यूट आँव इण्डोलाजी, अहमदाबाद

मिराशी, वी0 वी0 : कार्पस इंस्क्रिप्शनम इण्डिकेरम, जिल्द 4, इंस्क्रिप्शंस आँव दि कल्चुरि चेदि एरा, ओटकमण्ड, 1955, जिल्द 5.

मुखर्जी, आर0 आर0 : (संपा0) कार्पस आँव बंगाल इंस्क्रिप्शंस, कलकत्ता, 1967

सरकार, डी0 सी0 : सेलेक्ट इंस्क्रिप्शंस बियरिंग आन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड सिविलिजेशन, जिल्द 2, दिल्ली, 1983.

सहाय, भगवत : इस्क्रिप्शंस आँव बिहार
पटना, 1983

मुद्राएं
====

अल्तेकर, ए० स० : कैटलाग आव द गुप्ता, गोल्ड क्वायन्स इन द बयाना होर्ड बम्बई, 1954, गुप्तकालीन मुद्राएं, पटना 1954, द क्वायनेज आँव द गुप्ता इम्पायर, बनारस, 1957.

एलन, जे० : कैटलाग आँव द क्वायन्स आँव द गुप्ता डायनेस्टीज ऐण्ड आँव शशांक द किंग आँव गौड़, लंदन, 1914, कैटलाग आँव द क्वायन्स आँव ऐन्शिएण्ट इण्डिया, लन्दन, 1936.

कनिंघम, ए० : क्वायन्स आँव ऐन्शिएण्ट इण्डिया फ्राम द अर्लिएस्ट टाइम्स डाउन टु द सेवेन्थ सेन्चुरी ए० डी० लन्दन, 1891.

ब्राउन, सी० जे० : कैटलाग आँव द क्वायन्स आँव गुप्ताज, मौखरीज, इटसेटरा इन द प्राविन्शियल म्यूजियम, लखनऊ, इलाहाबाद, 1920, क्वायन्स आँव इण्डिया, कलकत्ता, 1922.

रेप्सन, ई० जे० : इण्डियन क्वायन्स, स्ट्रासबर्ग, 1897.

मूलग्रन्थ
======

अर्थशास्त्र : कौटिल्य कृत {सम्पा० एवं अनु०} आर० पी० कांगले, तीन जिल्दों में, बम्बई, 1969, 1972, 1965.

अपराजितपृच्छा : भुवनदेवकृत – बड़ौदा 1950.

अत्रि स्मृति : स्मृतीनां समुच्चय: में संकलित {सम्पा०} वी० जी० आप्टे, आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली, ग्रन्थांक 48, पूना, 1920.

अभिज्ञानशाकुन्तलम : कालिदास कृत {सम्पा०} शारदा रंजन रे, कलकत्ता, 1908; एम० आर० काले, दिल्ली, 1977 {पुर्नमुद्रण}

अमरकोश : अमरसिंह कृत, भट्टक्षीरस्वामिन भाष्य सहित, [सम्पा0] ए0 डी0 शर्मा तथा एन0 जी0 सरदेसाई, पूना, 1941.

अभिधानचिन्तमणि : हेमचन्द्र, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 1964.

अद्भुत सागर : बलालसेन, प्रभाकरी एण्ड कम्पनी, वाराणसी, 1905.

अग्निपुराण : आर0 एल0 मित्र, भाग 3, बी0 आई, 1876

उपमितिभवप्रपंच कथा : सिद्धर्षि [सम्पा0] पी0 पेटर्सन कलकत्ता, 1899.

आचारांग सूत्र : आगमोदय, समिति , सूरत, 1935.

कादम्बरी : बाणभट्टकृत, निर्णयसागर प्रेस संस्करण, 1948.

कात्यायन स्मृति : व्यवहार पर [सम्पा0] पी0 वी0 काणे, बम्बई, 1933.

कामसूत्र : वात्स्यायन कृत, यशोधर कृत जयमंगलभाष्य सहित [सम्पा0] गोस्वामी दामोदर शास्त्री, बनारस, 1929.

कृत्यकल्पतरु : लक्ष्मीधर, 11 खंड, बड़ौदा 1941.

कर्पूरमंजरी : राजशेखर, कलकत्ता, 1948.

कीर्तिकौमुदी : सोमेश्वर, गवर्मेन्ट सेन्ट्रल बुक डिपो, बाम्बे, 1883.

कामन्दकीय नीतिसार : कामन्दक कृत [सम्पा0] टी गणपति शास्त्री, त्रिवेन्द्रम् 1921

कथासरित्सागर : सोमदेव, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, 1960 .

काव्यमीमांसा : राजशेखर गायकवाड़ ओरियंटल सीरीज,
कृषि पराशय : जी0 पी0 मजूमदार, और एस0 सी0 बनर्जी, एशियाटिक
: सोसायटी, कलकत्ता, 1960.

कुमारसम्भव : कालिदास कृत, मल्लिनाथकृत भाष्य सहित, [सम्पा0] प्रद्युम्न पाण्डेय, वाराणसी, 1977.

कुमारपाल चरित : हेमचन्द्र, पूना, 1926.

कुट्टनीतम् : दामोदर कृत, अनारस, 1924.

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, : टीका, शांतिचन्द्र कृत, बम्बई, 1920.

तिलकमंजरी : धनपाल कृत, काव्यमाला 85, निर्णय सागर प्रेस, बम्ब
1903.

त्रिषष्टिशलाका पुरूषचरित : हेमचन्द्र, गायकवाड़, ओरियण्टल सीरिज, बड़ौदा ,
1931.

दशकुमारचरित : दण्डिनकृत §सम्पा0§ एम0 आर0 काले, बम्बई, 1917.

देशीनाममाला : हेमचन्द्र §सम्पा0§ आर0 पिच्छल, बम्बई संस्कृत सीरिज
1938.

देशोपदेश : क्षमेन्द्र , काश्मीर सीरिज आँव टेक्स एण्ड स्टीड न0 4
1923.

दशावतारचरित : क्षेमेन्द्र §सम्पा0§ दुर्गाप्रसाद निर्णय सागर प्रेस, बम्बई,
1891.

द्वयाश्रयमहाकाव्य : हेमचन्द्र, जिल्द 2, बम्बई, संस्कृत सीरिज, 1915, एण्ड
1921.

नारदस्मृति : असहायकृत भाष्य सहित §सम्पा0§ जूलियस याली,
कलकत्ता 1988, अनु0, सैक्रेड बुक आँव द ईस्ट जिल्द 33
आक्सफोर्ड, 1889, पुर्नमुद्रण दिल्ली, 1977.

नैषधीयचरित : श्रीहर्ष, निर्णय सागर प्रेस, 1933.

नीतवाक्यामृतम् : सोमदेव, माणिक्यचन्द्र ग्रन्थमाला सीरिज, न0 22।
§प्रका0§ सुखलाल शास्त्री, दिल्ली, 1929.

पराशर स्मृति : §सम्पा0§ श्रीवासुदेव, वाराणसी, 1968, रामचन्द्र शर्मा
मुरादाबाद, 1925.

प्रबन्धचिन्तामणि : मेरूतुंग [सम्पा0] एच0 पी0 द्विवेदी, सिंधी जैन ग्रन्थमाला शान्ति निकेतन, 1333.

पृथ्वीराजरासो : नागरिणी प्रचारिणी ग्रन्थमाला सीरिज

पृथ्वीराजविजय : जयानक [सम्पा0] जी0 एच0 ओझा, सी0 गुलेरी, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर, 1941.

पुरातनप्रबन्ध संग्रह : सिंधी जैन ग्रन्थावली, न0 2, 1936.

वृहत्कथाश्लोक संग्रह : बुधस्वामिन कृत वी0 एस0 अग्रवाल द्वारा अध्ययन तथा पी0 के0 अग्रवाल द्वारा मूलपाठ सहित सम्पादित, वाराण 1974.

वीरमित्रोदय : मित्र मिश्र, चौखम्भा संस्कृत सीरिज वाराणसी, 1913.

विवादरत्नाकर : चण्डेश्वर, बी0 आई0 कलकत्ता, 1887.

वृहस्पतिस्मृति : [सम्पा0] के0 वी0 आर आयंगर,गायकवाड़ ओरियण्टल सीरिज, बड़ौदा, 1941.

वृहत्संहिता : वराहमिहिर कृत, भट्टोत्पल कृत भाष्य सहित [सम्पा0] सुधाकर द्विवेदी, बनारस, 1859-97.

वैजयन्ती : यादव प्रकाश, गवर्मेन्ट प्रेस, मद्रास, 1893.

वर्णरत्नाकर : ज्योतेश्वर कविशेखराचार्य, [सम्पा0] एस0 के0 चटर्जी,. एण्ड बी0 मिश्र, एशियाटिक सोसाइटी आँफ बंगाल, 1940

वृहत्कथामंजरी : क्षेमेन्द्र काव्यमाला, 69, 1901.

भोजप्रबन्ध : विलेवेन्द्र प्रेस संस्कृत सीरिज, न0 5.

मनुस्मृति : कुल्लूककृत भाष्य सहित, [सम्पा0] पं0 गोपालशास्त्रीनेने, वाराणसी, 1970.

महाभारत : हिन्दी अनुवाद सहित, गीताप्रेस गोरखपुर, तृतीय संस्करण, संवत् 2026•

मालविकाग्निमित्रम् : कालिदास कृत {सम्पा0} कृष्णराय, मद्रास, 1930, सी0 आर देवधर, पुर्नमुद्रण, दिल्ली, 1980•

मुद्राराक्षस : विशाखदत्त कृत {सम्पा0 } आर0 के0 ध्रुव , पूना, 1930•

मेघदूत : कालिदास कृत {सम्पा0} जे0 बी0 चौधरी, कलकत्ता, 1950•

मृच्छकटिक : शूद्रककृत {सम्पा0} एम0 आर0 काले, तृतीय संस्करण, दिल्ली, 1972•

मानसोल्लास : गायकवाड़ ओरिएन्टल सीरिज, भाग 3, बड़ौदा, 1939•

मानसार : {सम्पा0} पी0 के0 आचार्य, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, 1933•

मिताक्षरा : विज्ञानेश्वर, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1909

याज्ञवल्क्यस्मृति : मिताक्षरा भाष्य सहित {सम्पा0} नारायण शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत सीरिज , वाराणसी, 1977•

यशस्तिलक : सोमदेव, शिवदत्त निर्णय सागर प्रेस

युक्तिकल्पतरु : भोज, {सम्पा0} ईश्वरचन्द्र शास्त्री, कलकत्ता, 1917•

रघुवंश : कालिदासकृत {सम्पा0} के0 पी0 परब , बम्बई, 1882•

राजतरंगिणी : कल्हणकृत {सम्पा0} विश्वबन्धु, होशियारपुर, 1963, 1965•

रामचरित : संध्याकरनन्दी {सम्पा0} एच0 बी0 शास्त्री, कलकत्ता, 1910•

लघुवराहनीतिसार : हेमचन्द्र अहमदाबाद, 1906•

विष्णुस्मृति : नन्दपण्डित कृत भाष्य सहित {सम्पा0} जूलियसयाली बिब्लियोथेका इण्डिका, कलकत्ता, 1981•

शंखस्मृति : स्मृतीनां समुच्चय: मे संकलित {सम्पा0} वी0 जी0 आप्टे, आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली, ग्रन्थांक, 48, पूना, 1929•

समराइच्चकहा : हरिभद्र सूरी §सम्पा0§ एच0 जैकोबी, कलकत्ता, 1926.

स्मृतिचन्द्रिका : देवेन्द्रभट्ट §सम्पा0§ एल0 श्रीवत्साचार्य मैसूर, 1914.

शुक्रनीति : §अनु0§ बी0 के0 सरकार, इलाहाबाद, 1914.

हम्मीरमदमर्दन : जयसिंह सूरी, गायकवाड़ ओरिएन्टल सीरिज न0 10.

हर्षचरित : बाणभट्टकृत, §सम्पा0§ पी0 वी0 काणे, बम्बई, 1918.

विदेशी साक्ष्य
===========

एस0 : लाइफ आँव ह्वेनसांग, लंदन, 1911, प्रथम संस्करण, दिल्ली, 1973.

: बुद्धिस्ट रेकार्ड्स आँव द वेस्टर्न वर्ल्ड, दो जिल्द में लंदन, 1906, नई दिल्ली, 1969.

वार्टर्स, टी0 : आन युवान च्वांग्स ट्रेवेल्स इन इण्डिया §सम्पा0§ टी0 डब्लू0 राइस डेविड्स एवं एस0 डब्ल्यू , बुशेल, दो जिल्द, लंदन, 1904, 1905

इलियट, एच0 एम0

डाउसन : हिस्ट्री आँव इण्डिया ऐज टोल्ड बाय इटस ओन हिस्ट्रोरियन भाग 8, लंदन, 1966 - 77.

साचाऊ, ई0 सी0 : अलबीरूनीस इण्डिया, भाग 2, लंदन, 1888.

सहायक ग्रन्थ
=========

अग्रवाल, वी0 एस0 : कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन द्वितीय संस्करण, वाराणसी, 1970.

: वृहत्कथाश्लोकसंग्रह - ए स्टडी, वाराणसी, 1974,

अप्पादुराई ए0 : इकोनामिक कन्डीशन इन साउथ इण्डिया, जिल्द 1, §1000 - 1500 ए0 डी0§ मद्रास 1936.

अल्तेकर, ए0 एस0 : स्टेट एण्ड गवर्मिन्ट इन एंश्यण्ट इण्डिया, बनारस, 1958. प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, भारतीय भंडार, लीडर प्रेस इलाहाबाद, 1959.

उपाध्याय, बी0 : सोशो रिलिजस कंडीशन आव नार्दन इण्डिया § 700-1200 वाराणसी, 1964.

काणे, पी0 बी0 : हिस्ट्री आँव धर्मशास्त्र , 5 भाग , पूना 1930,
: धर्मशास्त्र का इतिहास हिन्दी अनु0 अर्जुन चौबे कश्यप हिन्दी समिति , लखनऊ ।

केतकर, एस0 बी0 : द हिस्ट्री आँव कास्ट इन इण्डिया, न्यूयार्क 1909.

गुप्ता, पुष्पा : तिलकमंजरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, राजपार्क, जयपुर, 1988

गांगुली, डी0 सी0 : हिस्ट्री आव परमार डायनेस्ट्री, ढाका, 1933.

गोपाल, एल0 : द इकोनामिक लाइफ आँव नार्दन इण्डिया, वाराणसी, 1965.
: आस्पेक्टस आँव हिस्ट्री आँव एग्रीकल्चर इन ऐन्शियण्ट इण्डिया, वाराणसी, 1980.
: द शुक्रनीति - ए नाइन्टीथ सेन्चुरी टैक्स्ट, वाराणसी, 1977.

घुर्ये, जी0 एस0 : कास्ट ऐण्ड रेस इन उण्डिया, बम्बई, 1969.
: कास्ट ऐण्ड क्लास इन इण्डिया, बम्बई, 1957.
: कास्ट क्लासेस एण्ड ओक्यूपेशन, बम्बई, 1961.

घोषाल, यू0 एन0 : द एग्रेरियन सिस्टम इन ऐंशियण्ट इण्डिया, कलकत्ता, 1930.

: कन्ट्रीब्यूशन आॅव दि हिस्ट्री आॅव हिन्दू रिवन्यू सिस्टम, कलकत्ता, 1929.

चट्टोपाध्याय, बी0 डी0 : आस्पेक्टस आॅव रूरल सेटेलमेन्टस् एण्ड रूरल सोसाइटी इन अर्ली मिडिवल इण्डिया, कलकत्ता, 1990.

: क्वायन्स ऐण्ड करेंसी सिस्टम्स इन साउथ इण्डिया, दिल्ली, 1977.

चौधरी0 आर0 के0 : द इकोनामिक हिस्ट्री आॅव ऐंशिएण्ट इण्डिया, जानकी प्रकाशन, पटना .

जैन, गोकुलचन्द्र : यशस्तिलक का सांस्कृतिक अध्ययन, वाराणसी, 1967.

जैन, वीना : गिल्ड आर्गनाइजेशन इन नार्दन इण्डिया (अर्ली - 1200 एडी दिल्ली, 1990.

जैन0 पी0 सी0 : लेबर इन ऐंशिएण्ट इण्डिया, नई दिल्ली, 1971.

तिवारी, गौरीशंकर : उत्तर भारत के ब्राह्मणों का सामाजिक अध्ययन, फैजाबाद, 1982.

थापर, रोमिला : ऐन्शिएण्ट इण्डियन सोशल हिस्ट्री, नई दिल्ली, 1978.

दत्त, एन0 के0 : ओरिजन ऐण्ड ग्रोथ आॅव कास्ट इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, जिल्द 1-2, कलकत्ता, 1965.

दुबे, लालमणि : अपराजितपृच्छा ए क्रिटिकल स्टडी, इलाहाबाद, 1987

नियोगी पुष्पा : कन्ट्रीब्यूशन आॅव इकोनामिक हिस्ट्री आॅव नार्दन इण्डिया, कलकत्ता, 1962.

नियोगी, पुष्पा : ब्राह्मणिकल सेटलमेंट इन डिफरेन्ट सब डिविजन आॅव एन्शिएण्ट बंगाल, कलकत्ता, 1967.

न्योगी रोमा : हिस्ट्री ऑव गढ़वाल डायनेस्ट्री, कलकत्ता, 1959.

प्रभु, पी0 एच0 : हिन्दू सोशल आर्गनाइजेशन (पंचम पुनर्मुद्रण) बम्बई, 1961.

प्रकाश ओ : प्राचीन भारत का सामाजिक आर्थिक इतिहास, 1975.दि

बन्धोपाध्याय, एन0 सी0 : इकनामिक लाइफ ऐण्ड प्रोग्रेस इन ऐन्शियंट इण्डिया, कलकत्ता, 1925.

वैद्य, सी0 वी0 : हिस्ट्री ऑव मिडिवल हिन्दू इण्डिया, भाग 2, पूना, 1924, भाग 3, 1926.

बाजपेयी, के0 डी0 : भारतीय व्यापार का इतिहास, मथुरा, 1981

व्यास, श्याम प्रसाद : राजस्थान के अभिलेखों का सांस्कृतिक अध्ययन (700-1200ई) राजस्थान ग्रन्थसागर, जोधपुर ।

बलन्ट : कास्ट सिस्टम इननार्दन इण्डिया, एस0 चन्द्रा एण्ड कम्पनी, दिल्ली, 1969.

बोस, एन0 न 0 : सोशल एण्ड रूरल इकोनामिक ऑव नार्दन इण्डिया, जि0 2, 1945.

बोस, एन0 एस0 : हिस्ट्री ऑव चन्देल, कलकत्ता, 1956.

बूच, एम0 ए0 : इकनामिक लाइफ इन ऐन्शियंट इण्डिया, बड़ौदा, 1924.

भट्टाचार्य, एस0 सी0 : सम आस्पेक्टस ऑव इण्डियन सोसाइटी, कलकत्ता, 1978

मैती, एस0 के0 : इकनामिक लाइफ इन नार्दन इण्डिया इन द गुप्ता पीरियड (द्वितीय संस्करण) दिल्ली, 1970.

मजूमदार, बी0 पी0 : द सोशियो इकनामिक हिस्ट्री ऑव नार्दन इण्डिया, कलकत्ता, 1960.

मजूमदार, आर0 सी0 : प्राचीन भारत का संघटित जीवन (हि0 अनु0) के0 डी0 बाजपेयी, सागर, 1966.

मजूमदार, एस0 के0 : चालुक्याज ऑव गुजरात भारतीय विद्या भवन, बम्बई, 1956

मोतीचन्द्र : सार्थवाह, पटना, 1953.

मिश्र, जयशंकर : ग्यारहवीं शती का भारत, भारतीय विधा प्रकाशन, वाराणसी
: प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रन्थ एकेडमी, 1986.

मुकर्जी, संध्या : सम आस्पेक्टस ऑव सोशल लाइफ इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, इलाहाबाद, 1955.

मिश्र, आर0 एन0 : आर्ट एण्ड आर्ट ऐक्टिविटीस इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया। शिमला, 197

मिश्र, शिव शेकर : मानसोल्लास एक सांस्कृतिक अध्ययन, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 1966.

यादव, बी0 एन0 एस0: सोसाइटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इण्डिया इन द टेवेल्थ सेन्चुरी , इलाहाबाद, 1973.

यादव, झिनकू : समराइच्चकहा का सांस्कृतिक अध्ययन, भारतीय प्रकाशन, वाराणसी, 1977.

राय, यू0 एन0 : स्टडीज इन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर , इलाहाबाद, 1969.

राय जयमल : द रूरल अरबन इकानमी एण्ड सोशल चेंजेज इन ऐन्शिएण्ट इन्डिया {300 ई0 पूर्व 600 ई0} वाराणसी, 1974.

राय सिद्धेश्वरी नारायण : पौराणिक धर्म एवं समाज, इलाहाबाद, 1968; हिस्टोरिकल एण्ड कल्चर स्टडीज इन द पुराणाज, इलाहाबाद, 1978.

रे, एच0 सी0 : डायनिस्टिक हिस्ट्री ऑव नार्दन इण्डिया, कलकत्ता, 1921 , 1936.

राघवेन्द्र पाथरी : प्राचीन भारत में सामाजिक परिवर्तन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,

शर्मा, बी0 एन0 : सोशल लाइफ इन नार्दन इण्डिया, दिल्ली, 1966.
: सोशल एण्ड कल्चर हिस्ट्री ऑव नार्दन इण्डिया {1000 से

शर्मा, आर० एस० : भारतीय सामंतवाद (हिन्दी अनु०) प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1973.

: सम इकोनमिक आस्पेक्ट आँव दि कास्ट पटना ।

: शूद्राज इन एन्शिएण्ट इण्डिया, मोतीलाल बनारसीदास, 1952.

शर्मा, डी० : अर्ली चौहान डायनेस्ट्री, दिल्ली, 1959.

: राजस्थान थ्रू द ऐजेस जि० 1, बीकानेर, 1966.

शास्त्री, अजयमित्र : इण्डिया ऐज सीन इन द वृहत्संहिता आँव वराहमिहिर, दिल्ली, 1969.

सरकार, डी० सी० : इण्डियन इपिग्राफिकल ग्लोसरी, बनारस, 1966.

सिंह, आर० बी० : हिस्ट्री आँव चाहमाण, वाराणसी, 1964.

हटन, जे० एच० : कास्ट इन इण्डिया, बम्बई, 1963.

हजारा, आर० सी० : स्टडीज इन द पुराणिक रेकार्ड्स आन हिन्दू राइटस एण्ड कस्टम्स, दिल्ली, 1975.

शोध पत्रिकाएँ

- इण्डियन आर्क्योलाँजी - ए रिव्यू
- इण्डियन ऐन्टिक्वेरी
- इण्डियन कल्चर
- इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली
- द इण्डियन हिस्टारिकल रिव्यू
- एपिग्राफिका इण्डिका
- जर्नल आँव द आन्ध्र हिस्टोरिकल रिसर्च सोसाइटी
- जर्नल आँव इण्डियन हिस्ट्री

- जर्नल आॅव द इकनामिक एण्ड सोशल हिस्ट्री आॅव द ओरिएण्ट
- जर्नल आॅव ऐन्शिएण्ट इण्डियन हिस्ट्री
- जर्नल आॅव द एशियाटिक सोसाइटी आॅव बंगाल
- जर्नल आॅव द न्यूनिस्मैटिक सोसाइटी आॅव इण्डिया
- जर्नल आॅव द बाम्बे ब्रान्च आॅव द रायल एशियाटिक सोसाइटी
- जर्नल आॅव द बिहार रिसर्च सोसाइटी
- जर्नल आॅव द बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी
- जर्नल आॅव द यू0 पी0 हिस्टोरिकल सोसाइटी
- प्रोसीडिंग्स आॅव द इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस
- मोम्वार्यस आॅव द आर्क्योलाजिकल सर्वे आॅव इण्डिया

कोश
===

- संस्कृत हिन्दी कोश : आप्टे वामन शिवराम, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पटना, वाराणसी ।
- संस्कृत इंगलिश कोश : आप्टे, वी0 एस0, पूना, 1967
- हलायुध कोष्ठ : (सं0) जयशंकर जोशी, पब्लिकेशन ब्यूरो, लखनऊ